सत्साहित्य-प्रकाशन

बंगला साहित्य-दर्शन

—बगला के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का विशद अध्ययन—

मन्मथनाथ गुप्त

●

१९६०
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य कितना समृद्ध है, इसकी जानकारी हिन्दी के पाठको को वहुत कम है । इसका मुख्य कारण सभवत यह है कि इन भाषाओ का परिचय देनेवाले साहित्य के विधिवत् प्रकाशन का प्रयत्न हिंदी मे अभी तक नही हुआ है । जव-तव कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते रहते हैं, लेकिन इतना ही पर्याप्त नही है । यह निश्चय ही वडी विचित्र-सी वात है कि हिन्दी के पाठक विदेशी साहित्य तथा उसके ग्रन्थकारो से तो सुपरिचित हो, लेकिन अपने ही देश के साहित्य तथा साहित्यकारो से अनभिज्ञ रहे ।

इस कमी को ध्यान मे रखकर हमने अपने देश की विभिन्न भाषाओ के परिचायत्मक ग्रन्थ निकालने की योजना वनाई है । प्रारभ दक्षिण की भाषाओ से किया है । सवसे पहली पुस्तक 'कैरली साहित्य-दर्शन' मे मलयाली साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है । दूसरी 'तमिल साहित्य और सस्कृति' मे दक्षिण की दूसरी समृद्ध भाषा तमिल के साहित्य तथा सस्कृति पर प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तुत पुस्तक मे वगला भाषा के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

हमे आशा है, पाठको के लिए इस माला की अन्य पुस्तको की भाति यह पुस्तक भी ज्ञानवर्द्धक तथा उपयोगी सिद्ध होगी ।

—मंत्री

दो शब्द

वगला-साहित्य पर इस पुस्तक को हिन्दी-जगत के सामने प्रस्तुत करते हुए हमे प्रसन्नता होती है, विशेपकर इसलिए कि यह एक आदर्श लेकर चलनेवाली सस्था 'सस्ता साहित्य मडल' जैसे माध्यम से पाठको को सुलभ हो रही है। यदि भारत को एक रखना है, जैसा कि हमे हर मूल्य पर करना है, तो उसके लिए सवसे आवश्यक यह है कि प्रत्येक भाषा के लोग अपनी भाषा और परम्पराओ को कायम रखते हुए देश की दूसरी भाषाओ और उनके साहित्य से परिचित हो। इस कर्तव्य को सुगम बनाने के लिए सव तरह के प्रयास अभीष्ट है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' ने इस' दिशा मे विधिवत् कदम उठाया है। अवतक वह केरल और तामिलनाड की भाषाओ और साहित्य पर दो परिचयात्मक पुस्तके प्रकाशित कर चुका है। यह तीसरी पुस्तक वगला साहित्य के वारे मे हैं। वगला भाषा के सबध मे हिन्दी के पाठक काफी जानकारी रखते हैं। इस पुस्तक मे व्यवस्थित रूप से वगला-साहित्य का परिचय दिया गया है। व्यक्तियो के परिचय को हमने उतना महत्व नही दिया, जितना कि उनके साहित्य को। साहित्य के विकास की जानकारी की दृष्टि से यही हमे अधिक ठीक लगा।

—मन्मथनाथ गुप्त

विषय-सूची

बंगला साहित्य-दर्शन

. १

बंगला भाषा का विकास

जिस भूखड को हम इस समय वगाल कहते हे और जिसमे भारत का पश्चिमी वगाल ओर पाकिस्तान का पूर्वी वगाल हे वह सदा न तो एक देश ही था और न उसमे एक जाति ही बसती थी। हम विल्कुल प्रागैतिहासिक युग की बात नही कहते, ज्ञात ऐतिहासिक युग मे भी वगाल एक देश नही था। वगाल तीन नदियो वल्कि एक नदी की दो शाखाओ याने पद्मा और भागीरथी, तथा ब्रह्मपुत्र से चार भागो मे वटा हुआ था। ईसा के कई सौ वर्ष पहले उत्तर-मध्य वगाल मे पुड्र, ब्रह्मपुत्र के पूर्व तथा पद्मा के उत्तर मे वग और राढ और उनके दक्षिण मे भागीरथी के पश्चिम मे सुह्म नामक कवीले रहते थे। इनके अतिरिक्त और भी कई कवीले थे जैसे कैवर्त या केवट जो सारे भूखड मे फैले हुए थे, दूसरी तरफ चडाल या चाडाल, डोम, हाडी, वागदी, वाउरी, चूहाड आदि कई कवीले थे।

वाद को जव वगाल का आर्यीकरण हुआ तो इन कवीलो मे से कई वर्ण-मूलक हिन्दू समाज मे जातियो के रूप मे प्रस्तरीभूत हो गये।

जो चार मुख्य कवीले पहले गिनाये गए है, उनका किसी-न-किसी रूप मे महाभारत मे उल्लेख मिलता है। महाभारत मे यह वताया गया है कि अग, वग, कलिग, पुड्र और सुह्म भाई-भाई थे, और वे राजा वलि की स्त्री के गर्भ मे दीर्घतमा ऋषि के औरस से उत्पन्न थे। पार्जिटर तथा श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय का ऐसा अनुमान है कि इस अनुश्रुति की तह मे शायद यह बात है कि ये कवीले एक ही शाखा से उत्पन्न थे या उनमे निकट सम्बन्ध था। यह सवध किसी भी हालत मे पडोसियो का सवध तो था ही, सभव है उससे अधिक भी हो।

सुनीतिवावू ने लिखा है कि वगाल के ये प्राचीन कवीले द्राविड भाषा-भाषी थे और वे सुसगठित होने के अतिरिक्त सुसस्कृत भी थे। उनका कहना है, "वर्मा और स्याम के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय तिब्बती चीनी कवीले (वर्मी और ताई) रगमच पर नही आये थे, उस समय इन

भू-भागो मे केवल मोनखमेर लोग बसे हुए थे और बगाल तथा कलिग से द्राविड लोग आकर स्याम तथा बर्मा मे शासक बन रहे थे। बाद मे जब भारत के इन अनार्यो ने ब्राह्मण्य धर्म को अपना लिया, तब उनके राजाओ ने उत्तर भारत के प्राचीन आर्य राजघरानो से सबध होने का दावा किया (ऐसा ही बाद मे नये राजपूत वशो के सबध मे भी हुआ), और उन्होने ईसा-जन्म के बाद सस्कृत भाषा और साथ-ही-साथ हस्तिनापुर और अयोध्या की परम्पराओ को ग्रहण किया।"

आगे चलकर बगाल मे तिब्बती-चीनी कबीले भी आये। तिब्बती-चीनी की तिब्बती-बर्मी शाखा से बोडो नामक कबीला आसाम और पूर्वी बगाल मे और इसके बाद उत्तरी बगाल मे फैल गया। यह अनुमान है कि आसाम और पूर्वी बगाल मे तिब्बती-बर्मी लोग ईसा-जन्म के कुछ पहले ही फैले होगे, पर यह तारीख और बाद की भी हो सकती है।

यह तो सुनिश्चित है कि आधुनिक बगाल मे ईसा-पूर्व सहस्र वर्ष तक आर्य भाषाओ का प्रचार नही था। पर जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इसका अर्थ यह कदापि नही है कि उस समय इस भूखड मे बसे हुए लोग किसी भी प्रकार आर्यो के मुकाबले मे असभ्य थे। ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के अन्त मे लिखित कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे तुड्र, सुवर्णकुड्य और बग मे उत्पन्न रेशम तथा अन्य वस्तुओ की प्रशसा की गई है। इसमे से पुड्र की स्थिति तो हम पहले ही बता चुके है। सुवर्णकुड्य को मुर्शिदाबाद या कर्ण सुवर्ण के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है। हमे बगला भाषा की उत्पत्ति के सक्षिप्त इतिहास मे इस विषय मे अधिक ब्योरे मे जाने की न तो आवश्यकता है, और न गुजाइश ही है।

हम बाकी ब्यौरो को छोडकर यह कह सकते है कि मोर्य-विजय के पहले बगाल आर्य भाषा के प्रभाव मे नही आया और उसके पहले बगाल मे विभिन्न अनार्यभाषाओ का प्रचलन था। पर इन भाषाओ का कोई साहित्य सुरक्षित नही है, और शायद सुरक्षित रहने लायक उनमे कोई विशेष सामग्री रही भी न हो।

हम केवल बगाल के सदर्भ मे सारी बात कह रहे है, इससे किसी साधारण पाठक को यह गलतफहमी न हो कि बगाल ही मे यह प्रक्रिया हुई, इसलिए हम श्री सुनीतिकुमार की पुस्तक से ही उद्धरण देकर इस सबध मे कुछ स्पष्टीकरण

करेगे । वह अपनी पुस्तक 'जाति, सस्कृति और साहित्य' मे लिखते है—

"भारत के सुसभ्य, अर्द्धसभ्य और असभ्य सब तरह के अनार्य आदिम निवासियो के साथ आर्यो का प्रथम सम्पर्क शायद सघर्षमूलक था । पर अनार्य भारत मे आर्यो का उपनिवेश स्थापित हो जाने के वाद आर्य और अनार्य दोनो परस्परिक सबधो से प्रभावित हुए। आर्य विदेश से आये हुए थे और पार्थिव सभ्यता मे वे वहुत ऊचाई पर नही थे । आर्यो की भाषा ने आकर द्राविड और अस्ट्रिक भाषाओ को निष्प्रभ बना दिया । उत्तर भारत के कोल और द्राविड अनार्यो मे एका लानेवाली भाषा का अभाव था, आर्य जाति ने अपनी विजेता की मर्यादा को काम मे लगाकर अपनी भाषा को यह गौरव दिया । धीरे-धीरे ई० पू० १५०० से ई० पू० ५०० तक गाधार से विदेह और चपा—बगाल की पश्चिम सीमा तक प्राय समस्त उत्तर भारत मे आर्य भाषा की जय का डका बज गया, और आर्य तथा अनार्य यानी द्राविड और अस्ट्रिक मिलकर उत्तर भारत अर्थात् पजाब और बिहार तक गगा घाटी के सब लोग हिन्दू जाति मे परिणत हुए । अनार्यो ने आर्यो की भाषा और आर्यो के धर्म यानी वेदिक धर्म और वैदिक याग-यज्ञादि अनुष्ठानो को अपना लिया। अनार्यो ने आर्यो के पुरोहित ब्राह्मणो की शिक्षा को मान ली । पर अनार्यो का न तो धर्म ही मरा और न इतिहास-पुराण ही मरा । उत्तर भारत के गगा के किनारे की आर्य सभ्यता का प्रवर्तन इसी तरह से हुआ । इसमे आर्यो की तुलना मे अनार्यो का दान अधिक हे, पर आर्यो की भाषा ही इस नई सभ्यता की वाहन बनी ।"

उत्तर भारत मे आर्य भाषा की विजय हो जाने के वाद बगाल मे आर्यभाषा की विजय का समय आया । ऐसा अनुमान किया जाता है कि बगाल मे गुप्त-साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ बगाल अन्तिम रूप से उत्तर भारत या आर्य भारत के साथ सयुक्त हो गया । मौर्य-विजय मे यह प्रक्रिया आरभ हुई थी। इसका अर्थ यह हे कि ई० पू० ३०० से ५०० ई०,तक यानी ८०० वर्ष तक यह प्रक्रिया जारी रही, और वगाल का आर्यीकरण, सुनीतिवावू के अनुसार, अस्ट्रिक और द्राविड भाषी जनता ने इन ८०० वर्षो मे अपनी अनार्य भाषाओ को त्यागकर धीरे-धीरे आर्य भाषा अर्थात् मगध के प्राकृत को ग्रहण करके किया । वह लिखते है "उत्तर भारत का ब्राह्मण्य धर्म और सभ्यता या उसके साथ ब्राह्मण्य परम्पराओ को याने सस्कृत भाषा मे ग्रथित आर्यो और अनार्यो के इतिहास और

पुराण को वगाल के लोगो ने भी ग्रहण किया। वौद्ध और जैन मतवाद भी इसी प्रकार से वगाल मे आये और प्रचारित हुए।"

हम आगे भी सुनीतिबावू का उद्धरण देगे, क्योकि उन्होने ही इस सवध मे सब से अधिक खोज की है, और उन्होने बगला भाषा की उत्पत्ति और विकास के सवध मे जो विराट ग्र थ लिखा है, वह किसी भी भारतीय भाषा पर लिखित सबसे अच्छी पुस्तक है। वह लिखते है कि समुद्रगुप्त के एक शिला-लेख से यह पता लगता है कि शायद कामरूप के साथ-साथ पूर्वी बगाल भी उनके अधीन था। ऐसा ज्ञात होता है कि जो ब्राह्मण उत्तर भारत से जाकर इन नये उपनिवेशो मे वसते थे, वे मध्यदेशविनिर्गत रूप मे उल्लिखित है, और उन्हे धर्म-प्रचार तथा यज्ञादि करने के लिए जागीरे दी जाती थी। ये लोग एक तरह से ब्राह्मण्य धर्म के पादरी थे और इनके कारण राजशक्ति को बल मिलता था। ये लोग धर्म-प्रचार के अतिरिक्त भाषा-प्रचार भी करते थे, और चू कि उनकी भाषा अधीनस्थ लोगो की भाषा के मुकावले मे अधिक उन्नत थी, और उसमे साहित्य उत्पन्न हो चुका था, इसलिए कालान्तर मे उनकी भाषा ने अनार्य भाषाओ को परास्त कर दिया, इसमे कोई आश्चर्य की वात नही है।

जिस समय चीनी पर्यटक फाहियान पाचवी शताब्दी मे वगाल मे आये, उस समय वगाल के कम-से-कम पश्चिम और उत्तर मे आर्य सस्कृति और भाषा का प्रचार हो चुका था। फाहियान ताम्रलिप्ति मे दो वर्ष तक रहे और वहा वह हस्तलिखित पुस्तको की नकले तैयार करते रहे। इससे यह प्रमाणित है कि वगाल मे आर्य भाषा के प्रचार का कार्य पचम शताव्दी के आरभ मे ही वहुत आगे वढ चुका था, तभी तो फाहियान ने अपने पर्यटन के दो वर्ष यहा व्यतीत किये।

इसके वाद जिस समय सप्तम शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे दूसरे प्रसिद्ध चीनी पर्यटक ह्य नसाग भारत मे पधारे, उस समय वह वगाल मे भी गये थे। सौभाग्य से उन्होने अपने पर्यटन का विस्तृत विवरण लिखा है, और उस विवरण मे उन्होने प्रचलित भाषाओ के सवध मे भी कुछ लिखा है। उन्होने अग और काजगल से गगा पारकर पुड्रवर्द्धन या उत्तरी मध्य वगाल मे पदार्पण किया। वहा उन्होने देखा कि न केवल महायान और हीनयान वौद्ध धर्म का प्रचार है, अपितु साथ-ही-साथ ब्राह्मण्य धर्म और जैन धर्म का भी प्रचार है। यहा यह

स्मरण रखा जाय कि धर्मो के साथ-साथ भाषाओ का भी प्रसार होता रहा। इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि यदि इन धर्मो का प्रचार था तो साथ ही सस्कृत-प्राकृत का प्रचार रहा होगा।

पुड्रवर्द्धन का भ्रमण समाप्त कर ह्यूनसाग कामरूप या पश्चिमी आसाम और उत्तर-पूर्व वगाल मे गये। वहा की भाषा के सवध मे उन्होने यह लिखा है कि मध्य देश की भाषा से कुछ भिन्न है। कामरूप के वाद वह पूर्वी बगाल मे गये। वहा भी ब्राह्मण्य धर्म और दूसरे धर्मो का प्रचार था। वहा से वह कर्ण सुवर्ण या मुर्शिदावाद जिले मे गये। इस स्थान के सवध मे उन्होने लिखा है कि यहा के लोगो मे अभी ऐसे लोग भी थे, जो इतर धर्म मानते थे। वहा से ह्यूनसाग ताम्रलिप्ति गये, वहा बौद्ध और ब्राह्मण्य धर्म का प्रचार था। इसके वाद ह्यूनसाग आजकल के दक्षिण-पूर्व मेदिनीपुर जिले मे गये, और इसके पश्चात वह उडीसा मे गये। उनके अनुसार मेदिनीपुर से लेकर इन सारे स्थानो मे ऐसी भाषा बोली जाती थी, जो मध्य देश की भाषा से स्वरूप तथा उच्चारण मे भिन्न थी। इसपर यह अनुमान किया गया है कि इन स्थानो मे अभी तक द्राविड भाषाए बोली जाती थी।

ह्यूनसाग के सारे विवरण का विश्लेषण करते हुए डा० चटर्जी ने लिखा है—"ह्यूनसाग के यात्रा-विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सप्तम् शताब्दी ईस्वी तक सारे वगाल मे आर्य भाषा का प्रचार हो चुका था, और पश्चिमी आसाम मे भी इसका प्रवेश हो चुका था, पर अभी तक उत्तरी उडीसा की जनता मे इसका प्रचार नही हुआ था। साथ ही यह बडी कौतूहल-जनक वात है कि उनकी भाषा मध्य देश की भाषा से कुछ भिन्न थी। ह्यूनसाग पुड्रवर्द्धन या कर्ण सुवर्ण की भाषा के सबध मे कुछ नही कहते, इससे यह मान लिया जा सकता है कि इन इलाको की भाषा और मगध की भाषा एक ही थी, और मगध ही उस युग के चीनी पर्यटक द्वारा लिखित मध्य देश था। अब कोई भी यह आशा कर सकता है कि सप्तम शताब्दी मे उत्तरी मध्य बगाल यानी उस युग के पुड्रवर्द्धन और उत्तरी वगाल और पश्चिमी आसाम यानी उस युग के कामरूप मे एक ही भाषा प्रचलित होगी, क्योकि इन इलाको मे, साथ ही वगाल के अन्य इलाको मे, पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी मे शब्दरूप-विचार-शास्त्र की दृष्टि से करीव-करीव वही भाषा प्रचलित थी, जैसा कि वगला और आसामी के उस

समय के प्राप्त रूपो मे देखा जा सकता है। ह्यूनसाग ने जिस कुछ भिन्नता की बात कही है और जिसके अनुसार कामरूप की भाषा मे और मध्यदेश की भापा मे कुछ भिन्नता थी, उसका शायद मतलब यह है कि आर्य उच्चारणो को एक हद तक परिवर्तित कर दिया गया था, जैसा कि आसामी और साथ ही उत्तर और पूर्व बगाल की चलित भाषाओ मे पाया जाता है। शायद इस प्रकार कामरूप की भाषा का मध्य देश की भापा के साथ जो कुछ प्रभेद बताया गया है और ऐसा ज्ञात होता है कि यह प्रभेद पुड्रवर्द्धन तथा बगाल के अन्य भागो की भाषा से भी था, उससे मतलब आर्य उच्चारणो के उन परिवर्तनो से है, जो इस समय आसाम तथा उत्तरी और पूर्वी बगाल की बोलियो की विशेषता है।"[1]

इसके बाद सुनीतिबाबू ने उन उच्चारण-सबधी प्रमाणो को पेश किया है, जिनके व्यौरे मे जाना यहा उचित न होगा। भापा की दृष्टि से देखने पर आर्यीकरण के बाद बगाल मागधी भाषा के दायरे मे आ गया। मागधी से उत्पन्न भाषाओ को तीन भागो मे बाटा गया है—(१) पूर्वी मागधी—बगला, आसामी, उडिया, (२) मध्य मागधी—मैथिली, मगही (३) पश्चिमी मागधी—भोजपुरी, नागपुरी।

ग्रियर्सन ने इस सबध मे एक दूसरे ही वर्गीकरण को अपनाया है। वे द्वितीय तथा तृतीय वर्ग के अतर्गत बोलियो को बिहारी नाम देते है, और उन्हे एक ही बोली के मामूली रूप से परिवर्तित रूप मानते है, पर डा० चटर्जी का यह विचार है कि भोजपुरी ओर मैथिली-मगही के रूपो मे जो अत्यधिक भेद है, उसे देखते हुए कम-से-कम आधुनिक सोपान मे उन्हे अलग भाषा मानना उचित होगा।

कैसे यह मागधी परिवार बल्कि मागधी अपभ्रश का परिवार धीरे-धीरे अलग हो गया और उसमे से बगला, आसामी, उडिया, मैथिली चार स्वतत्र भाषाओ और मगही तथा भोजपुरी की उत्पत्ति हुई, जिन्होने कम-से-कम साहित्यिक दृष्टि से अपनेको खडी बोली मे निमज्जित कर लिया, यह भाषाशास्त्र का एक गहन विषय है। यहापर हम इतना ही बता सकते है कि ऐसा समझने का कारण हे कि सातवी शताब्दी के मध्य मे यानी ह्यूनसाग के समय मे आधुनिक

---

[1] देखिये, 'जाति, सस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ७६

विहार, वगाल और पश्चिमी आसाम मे एक ही भाषा बोली जाती थी। आसामी और वगला इस समय भी वहुत-कुछ एक है, इसी प्रकार उडिया, आसामी और वगला से मिलती-जुलती भाषा है। रही मैथिली, सो वह भी वगला, आसामी और उडिया से कई वातो मे समता रखती है।[1] इस प्रसग मे यह एक बहुत दिलचस्प वात है कि भाषा की दृष्टि से आधुनिक विहार, जिसमे मिथिला भी आता है, उस युग मे वगाल, आसाम यहातक कि उडीसा के अधिक निकट था, पर अब खडी वोली को साहित्यिक भाषा के रूप मे अपनाने के वाद उसकी भाषा की दिशा पूर्वाभिमुखी न रहकर पश्चिम की ओर हो गई है।

सच तो यह है कि सातवी शताब्दी मे अग और मिथिला से ही आर्यीकरण के प्रभाव, जिसमे भाषा भी थी, आधुनिक वगाल, आसाम और उडीसा मे फैले और उन्हीसे आर्यीकृत वगाल, आसाम और उडीसा का जन्म हुआ।

यहापर यह वताना सभव नही है कि कैसे आगामी तीन-चार शताब्दियो मे वगला भाषा का एक पृथक् ढाचा वना। यह न समझा जाय कि इस सवध मे कुछ अधिक उपकरण प्राप्त है। जो उपकरण प्राप्त भी है, वह मुख्यत भाषा-शास्त्र-सवधी है, और इस प्रकार की पुस्तक के लिए उपयुक्त नही है। ऐसा मालूम होता है कि आठवी से लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक सारे आर्य भारत मे भाषा-सवधी परिवर्तन हो रहे थे। हम जिस भूखण्ड के सवध मे आलोचना कर रहे है, उसमे इन तीन शताब्दियो मे प्राकवगला, प्राकमैथिली, प्राकउडिया का युग कहा जा सकता है। उस युग मे वगला, मैथिली, उडिया की विशेषताए सामने आती जा रही थी, पर वे अभी तक पृथक् नही हुई थी।

भाषाशास्त्र की गवाही के अनुसार यह अनुमान सत्य मालूम होता है कि पहले तो मागधी अपभ्रश की उपर्युक्त प्रकार से शाखाए वनी और फिर उन्ही मे जैसे पूर्व मागधी मे वगला, आसामी और उडिया रूपी शाखाए फूटी। मेदिनीपुर मे इस समय जो वोली प्रचलित है, उसके अध्ययन के वाद यह कहा जा सकता है कि यह वगला और उडिया के वीच की अथवा दोनो को सयुक्त करने वाली एक बोली है।

अभी तक जो प्रमाण उपलब्ध है, उनसे यह कहना सभव नही है कि ठीक

---

[1] देखिये, 'जाति, सस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ६१

किस समय बगला, आसामी और उड़िया मे भेद उत्पन्न हुआ, पर जैसा कि बताया जा चुका है तीन शताब्दियो मे यानी आठवी से लेकर ग्यारहवी तक पृथक्करण की यह प्रक्रिया इतनी दूर तक पहुच गई कि इनका अलग-अलग रूप स्पष्ट हो गया। यद्यपि यह कहा गया है कि इस समय इन भाषाओ के अलगाव-सबधी प्रमाण उपलब्ध नही है, पर वास्तविकता यह है कि भविष्य मे अधिक प्रमाण उपलब्ध होने पर भी यह कहना सभव नही होगा कि अमुक साल मे यह अलगाव हुआ। सच तो यह है कि ऐसी प्रतिक्रियाए सैकडो वर्षो मे सपूर्ण होती है, इस कारण इस सबध मे शताब्दियो मे ही बातचीत की जा सकती है।

२

प्राक मुस्लिम बंगला और उसका साहित्य

ग्यारहवी शताब्दी मे बगला का निजी अस्तित्व स्थापित हो चुका था। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का यह कथन है कि ग्यारहवी शताब्दी मे भी बगला के साथ उडिया का पृथक्करण अभी असपूर्ण था। कुछ प्रमाण ऐसे है। कि "प्राचीन बगला के युग मे अर्थात् दसवी, ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दियो मे पश्चिमी बगला की ओर झुकाव हुआ, जिससे आधुनिक स्टैंडर्ड बगला को अपना निर्दिष्ट चरित्र प्राप्त हुआ और पडोस की उडिया तथा अन्य बोलियो से उसका पृथक्करण हुआ।[1]

बगला के जो सबसे प्राचीन नमूने प्राप्त है, वे ये है—

(१) प्राचीन पुस्तको तथा अभिलेखो मे कुछ स्थानो के नाम आते है। इन नामो मे जिस ढग से बाद को चलकर परिवर्तन हुए है, उससे यह पता लगता है कि उच्चारण आदि मे परिवर्तन कौन-सी दिशा मे जा रहा था। इस सबध मे जो-जो उपकरण प्राप्त है, वह इतना थोडा है कि वह दूसरे उपकरणो के साथ-साथ ही कुछ काम दे सकता है। शिलालेखो तथा प्राचीन पुस्तको मे कुछ स्थानो

[1] देखिये, 'जाति, सस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ६८

के नाम पाचवी शताब्दी से पाये जाते है बाद को ग्यारहवी शताब्दी की रचना 'रामचरित' मे उनसे मिलते-जुलते नाम पाये जाते है। 'रामचरित' सध्याकर नन्दीकी रचना है।

(२) सर्वानन्द नामक एक वगाली पडित ने लगभग ११५९ ई० मे अमरकोष पर एक टीका लिखी थी। इसमे पडितप्रवर ने अपने भाष्य को सुबोध्य बनाने के लिए कोई तीनसौ ऐसे शब्द डाल दिये, जो सस्कृत नही थे और वगला मालूम होते हे। इस टीका का नाम 'टीका सर्वस्व' था। मजे की बात यह है कि यह टीका वगाल से लुप्त हो गई, पर यह सुदूर मालाबार मे सुरक्षित रही और वही से यह सपादित होकर प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को वगला भाषा के इतिहास की दृष्टि से वहुत अधिक महत्व दिया गया है और इसमे जो असस्कृत शब्द आते है, वे प्राचीन वगला के शब्द है। इस विशेष उपकरण का ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्रीय मूल्य वहुत अधिक होने पर भी हमे इससे केवल शब्दो का ही ज्ञान होता है, पर किसी भाषा को जानने के लिए उसकी वाक्यविन्यासपद्धति से परिचय वहुत जरूरी है, जिसका इसमे अभाव है।

(३) चर्यापद या चर्या-साहित्य। इस सबध मे ४७ गीत प्राप्त है। यद्यपि पुस्तक मे ५० गीत थे, तथापि वीच के कुछ पृष्ठ उड जाने के कारण केवल ४७ गीत ही प्राप्त हुए। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इन गीतो का आविष्कार नेपाल मे किया। उनके अनुसार ये बारहवी शताब्दी के प्रारम्भ के हे, पर श्री राखालदास वनर्जी ने इन्हे चौदहवी शताब्दी के अन्त की रचना वताया है।

भाषा ओर साहित्य दोनो के इतिहास की दृष्टि से इन गीतो का वहुत महत्व हे। इसके अतिरिक्त उनसे उस समय की परिस्थिति का भी पता चलता है। सहजिया-पथ के सिद्धो ने इनकी रचना की। यहा इस पथ के सबध मे कुछ बताने की आवश्यकता नही है, क्योकि सहजियापथ के गुरु गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ आदि के सबध मे हिदी-साहित्य के इतिहासो मे भी वहुत-कुछ आता हे। यहा पर इतना ही वताना यथेप्ट होगा कि यद्यपि इन गीतो को वगला भाषा के कुछ इतिहासकारो ने वगला वताया है, तथापि उन्हे समान रूप से हिदी की रचना भी कहा जा सकता हे, और ऐसा कहा भी गया है। हम पहले ही वता चुके है कि भाषा की दृष्टि से ह्य ूनसाग के समय मे ही वगाल और विहार एक हो चुके थे। फिर प्राकवगला रचनाओ को या वगला की आदिम रचनाओ को हिदी कहना

या हिंदी की उस समय की रचनाओ को बगला समझना कोई आश्चर्य की बात नही है।

दोहाकोष नामक दो रचनाए भी बगला भाषा के इतिहास की दृष्टि से बडे महत्व की है, पर उनका महत्व चर्यापदो से कही कम इस कारण है कि वे अपभ्र श मे है और उनमे अभी बगला की विशेषताए दृष्टिगोचर नही है, जैसी कि चर्यापदो मे दिखाई देती है। इनका भी विषय वही है जो चर्यापदो का है।

'चर्याचर्यविनिश्चय' नाम से एक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, जिसमे प्राकृत भाषा मे कविताए है और सस्कृत मे उनकी टीका है। टीका के अन्दर यत्र-तत्र प्राचीन बगला तथा पश्चिमी अपभ्र श मे कुछ उदाहरण दिये गए है। इनमे भी रहस्यमय विषयो का वर्णन है। सुनीतिबाबू के अनुसार चर्यापदो और दोहाकोष-मे दो विभिन्न बोलिया है। चर्यापदो मे सबधकारक का एर और अर, सप्रदान का रे, अधिकरण का त, सबध स्थापित करनेवाले शब्द माझ, अन्तर, साग हे, साथ ही बिहारी अल और अब के बदले क्रमश भूत और भविष्य के लिए क्रियापद के बाद इल और इब इत्यादि है। दोहाकोषो मे बोली तो वही है, जिसे एक तरह का पश्चिमी या सौरसेनी अपभ्र श बताया गया है।

चर्यापदो की भाषा के सबध मे सुनीतिबाबू का यह सुनिश्चित मत है कि वे प्राचीन बगला मे है। वे इस मत के समर्थन मे भाषाशास्त्र-सबधी बहुत लबे प्रमाण देते है, जिनका वर्णन यहापर सभव नही। उनका यह भी कहना है कि चर्यापदो की भाषा पश्चिमी बगाल की किसी बोली पर आधारित है। भाषा-गत प्रमाण के अतिरिक्त पूर्वी बगाल के लोगो पर भी दो जगह पर मन्तव्य है, जो किसी भी प्रकार प्रशसात्मक नही है। इस बात का भी प्रमाण है कि उस युग मे पश्चिमी बगाल के साहित्यकार पूर्वी बगाल के लोगो के विरुद्ध कटाक्ष करते थे, जैसे कि बारहवी सदी के विद्वान सर्वानन्द ने अमरकोष पर टीका लिखते हुए किया था। उसमे उन्होने सूखी मछली खानेवाले इतर बगालियो पर कटाक्ष किया था।

चर्यापदो मे मात्रावृत्त का प्रयोग है, पयार छन्द का नही, जो बगाल का विशेष छन्द है। उस समय तक पयार का विकास नही हुआ था, या ऐसा हो सकता है कि देहातो मे पयार का प्रचलन हुआ हो, पर साहित्य मे तबतक उसका प्रवेश न हुआ हो।

रहा यह कि चर्यापदो का समय क्या है, इस सबध मे डा० चटर्जी का मत यह है कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह लगभग १२०० ई० की रचना होगी। एक बात यह भी स्मरण रहे कि चर्यापद विभिन्न व्यक्तियो की रचनाए है। इनके रचयिताओ की सख्या २२ है, और ये २२ रचयिता उन ८४ सिद्धो मे आ जाते है, जो तिब्बत और नेपाल के महायान बौद्धो मे पूजित है। नेपाल मे अब भी ये पद गाये जाते है। तिब्बती भाषा मे भी इनका अनुवाद है। इन सिद्धो मे से एक लुईपा या लुईपाद दीपकर श्रीज्ञान के समसामयिक थे, और उनके सबध मे यह ज्ञात है कि वह ५८ साल की उम्र मे १०३८ ई० मे तिब्बत गये। इस कारण लुईपा के साहित्यिक जीवन के समय को दशम शताब्दी का उत्तरार्द्ध बताया गया है। अभी तक चर्यापदो मे उन्हीकी रचनाओ को सबसे प्राचीन माना गया है। जो हो, चर्यापदो को १२०० ई० के मानने मे किसी गलती की सभावना नही है।

प्राकबगला के अन्य अवशेषो मे 'प्राकृत पैगल' की रचनाए और कविताए उल्लेखनीय है। इस सग्रह मे ९०० ई० से लेकर १४०० ई० तक की प्रचलित कविताए सग्रहीत है। यह सग्रह अपभ्र श तथा प्राक बगला रचनाओ का है। इस सग्रह को अतिम रूप चौदहवी शताब्दी मे प्राप्त हुआ। इसमे से कुछ ही कविताओ के सबध मे यह दावा किया गया है कि वे प्राक बगला मे हैं, पर ऐसा मालूम होता है कि भले ही ये कविताए बगला मे रही हो, इनको जिस रूप मे इस सग्रह मे स्थान दिया गया है, वह कुछ बदला हुआ है। स्मरण रहे कि अभी तक भाषाओ के विकास का वह सोपान था, जब कुछ विभक्ति, प्रत्यय बदल देने पर ही एक भाषा की रचना दूसरी भाषा की रचना बन सकती थी।

बगला भाषा के विकास के सबध मे जयदेव के 'गीत गोविद' का भी उल्लेख किया गया है। 'गीत गोविन्द' सस्कृत मे प्राप्त है और यह बारहवी सदी के उत्तरार्द्ध की रचना है। भला एक इतने सुप्रसिद्ध सस्कृत ग्र थ का बगला भाषा से क्या सबध हो सकता है, यह पूछा जा सकता है। पर सबध यो निकल आता है कि कुछ विद्वान् जैसे जर्मन विद्वान् पिशल और मजुमदार यह सन्देह करते है कि 'गीत गोविन्द' पूर्व मे प्रचलित पश्चिमी अपभ्र श मे या प्राचीन बगला मे लिखा गया था, और उसे बडी जनप्रियता प्राप्त हुई थी। पूर्वोल्लिखित 'प्राकृत-पैगल' मे जयदेव से मिलती-जुलती कुछ अवहट्ट कविताए पाई गई है। इससे इस

अनुमान को बल मिलता है

ऐसा अनुमान किया जाता है कि जयदेव का लिखी हुई कविताए पडित-समाज को इतनी पसद आई कि उन्होने उन्हे थोडा-बहुत परिवर्तित करके सस्कृत बना दिया। यह याद रखने की बात है कि उस समय की लौकिक भाषा सस्कृत से बहुत दूर नही थी, और उसमे मामूली परिवर्तन करने पर वह सस्कृत बन सकती थी। इस सबध मे उदाहरण के तौर पर यह बताया गया है कि जैसे प्राचीन इटालियन को थोडा बदलने पर ही वह लैटिन बन सकती थी, उसी प्रकार से उस समय की लौकिक भाषा की रचना स्वल्प आयास से सस्कृत बन सकती थी।

जयदेव की ये सस्कृतीकृत कविताए सारे भारत मे 'गीत गोविन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुई और वे सस्कृत-साहित्य मे अनूठी मानी जाती है। जब बाद मे सोलहवी शताब्दी मे वैष्णव धर्म का जोर हुआ तो 'गीत गोविन्द' को धार्मिक महत्व प्राप्त हुआ। यह रचना उन दिनो की हालत को देखते हुए बहुत जल्दी प्रसिद्ध हुई और १४९९ तक उसे इतनी मर्यादा प्राप्त हो गई कि एक अभिलेख मे यह उल्लेख मिलता है कि पुरी मे जगन्नाथ की मूर्ति के आगे इसका गायन जरूरी बताया गया है।

यह बताया जाता है कि जयदेव की शैली का बगला गीति-कविता पर बहुत अधिक असर पडा, साथ ही यह भी माना गया है कि जयदेव ने जिस भाषा मे मौलिक रूप से इसकी रचना की थी, उस रूप मे वह हम तक पहुच नही सकती थी। सस्कृत मे हो जाने के कारण ही उसकी रक्षा हुई है। जो हो, 'गीत गोविद' को बगला भाषा के इतिहास मे ऊपर बताये हुए कारणो से बहुत महत्व प्राप्त है। यह भी बताया जाता है कि यदि 'गीत गोविद' अपने मौलिक लौकिक रूप मे होता और हम तक पहुचता तो बहुत परिवर्तित होकर पहुचता, जैसा कि बाद के कई ग्रन्थो की दशा हुई। जो भी नकल करता गया, वही समयानुसार उसकी भाषा मे 'सुधार' करता गया। नतीजा यह हुआ कि प्राचीन बगला की रचनाए इतनी परिवर्तित होकर हमारे सामने आई कि उन्हे प्राचीन करके पहचानना असभव है।

चर्यापदो के सबध मे यह बात नही हो सकी या 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' का इस प्रकार आधुनिकीकरण नही हो सका, इसका कारण, जैसा कि सुनीतिबाबू ने बताया है, ह है कि ये रचनाए पुरानी पोथियो मे दबी पडी रही और वे नकल करनेवाले

सुधारकों के प्रकोप से वचे रहे। इस प्रकार 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' हमे मौलिक रूप मे प्राप्त है। इसके रचयिता चडीदास है। यही से हम वगला साहित्य के ऐसे सोपान मे प्रवेश करते है, जहा मे उसका वगला होना किसी प्रकार सदिग्ध नही है। पर आगे के इतिहास का वर्णन करने के पहले हम एक वार फिर पीछे की ओर लौटेगे।

'डाकार्णव' नाम का एक ग्रन्थ इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। डाक नाम के किसी व्यक्ति ने, या सभव है वहुत-से व्यक्तियो ने, इसकी रचना की। डा०दिनेश सेन के अनुसार इसमे दसवी शताब्दी के वगला का उदाहरण मिलता है। ऐसा मालूम होता है कि इसी ग्रथ के कई रूप प्राप्त है। कुछ पक्तिया ऐसी है, जिनका कोई अर्थ ही पल्ले नही पडता। शायद इसके रचयिता बौद्ध थे। मज़े की वात यह है कि इसमे बौद्ध पुट के साथ-साथ चार्वाक की प्रसिद्ध उक्तियो के ढग की वाणी भी मौजूद है। धार्मिक ढग के वचन इस प्रकार है—

धर्म करिते जबे जानि, पाखरि दिया राखिब पानि।
गाछ रुइले वडो धर्म
जे देइ भात शाला पानि शालि, शे न जाई यमेर पुरी।

—जो धर्म करना चाहता है, वह पोखरा खुदावे। पेड लगाना वहुत वडा धर्म है। जो क्षेत्र या पौशाला स्थापित करता है, वह यमपुरी नही जाता।

यह स्पष्ट है कि यहा यमपुरी से मतलव नरक से है। ऊपर जो वचन उद्धृत किये गए है, वे धार्मिक ढग के है, पर इन्हे देखिये—

भालो द्रव्य जखोन पावो, कालिकारे तुलिया ना थोवो।
दधि दुग्ध करिया भोग, औषध दिया खडावो रोग।
वले डाक एई ससार, आपन मइले किसेर आर ?

—जव अच्छा माल मिलेगा तो उसे कल के लिए रख नही देना है। दही-दूध-भोग करके यदि कोई रोग हो गया तो दवा से उसे मारेगे। डाक कहता है कि यही तो ससार है। जव आप ही मर गये तो फिर और कौन-सी वात है !

यह स्पष्ट है कि डाक के वचनो मे हर तरह का सग्रह है और वह किसी

एक मतवाद की पुस्तक नही हे। डाक के वचनो की तरह खना के वचन भी प्राचीन वगला साहित्य की एक अमर निधि इस अर्थ मे हे कि अव इतनी शताब्दियो के वाद भी उनके वचन लोगो मे कहावतो के रूप मे अनायास प्रचलित हैं। अवश्य वे अपने प्राचीन रूप मे प्रचलित न होकर सुधरे हुए रूप मे प्रचलित हैं। खना के वचन मुख्यत खेती-सवधी हैं। कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

दिने रोद राते जल, ताते धानेर बाडे वल।

—यदि दिन को धूप रहे और रात को पानी वरसे तो धान जोर करता है।

यदि वरे आगने, राजा नामेन मागने

—यदि अगहन मे वरसे तो राजा रोटी को तरसे।

ऊपर के उदाहरणो से यह ज्ञात होगा कि खना के वचन क्यो जनप्रिय थे। मकान बनाने के सवध मे भी खना अपनी राय वता गये हैं—

पूवे हास, पश्चिमे वास
उत्तरे वाग दक्षिणे फाक

—पूरव की तरफ तो हम हो याने तालाव रहे, पश्चिम की तरफ वासो की झाड रहे, उत्तर मे वाग हो और दक्षिण मे खुला रहे।

उस युग की सामाजिक धारणाए भी डाक के वचना मे पढी जा सकती है, जैसे एक स्थान मे लिखा है कि "जव पति घर मे वैठता है और स्त्री वाहर वैठकर मुस्कराती रहती है, ऐसी स्त्री के साथ जिसका वास है, उसके जीवन को कोई आशा नही है। जो स्त्री घर के अदर चूल्हा होने पर भी वाहर खाना पकाती है, वालो को कुछ फुलाकर वाधती है, वार-वार मुड-मुडकर पीछे की ओर देखती है, राहगीर को तिरछी निगाह से देखती है, इत्यादि, उस स्त्री को घर मे नही रखना चाहिए।"

डाक के वचनो मे दवा-दारू, पथ्य-कुपथ्य का भी वर्णन है, जैसे एक वारहमासी है जिसमे कहा गया है कि कातिक मे जिमीकद और अगहन मे वेल, पूस मे काजी, माघ मे तेल, फागुन मे अदरक, चैत मे कडवी चीज, वैशाख मे नीम और नालिता नाम की एक वस्तु, जेठ मे मट्ठा और आषाढ मे दही, सावन मे खील, भादो मे ताड और आश्विन में खीरा लाभदायक होता है।

यह द्रष्टव्य है कि साहित्य उस समय लोगो की किसी-न-किसी प्रकार की

आवश्यकता की पूर्ति करता रहा। खना और डाक के वचन इतने अधिक प्रचलित है कि इनके साथ किसी और रचना की इस सबध मे तुलना करना उचित नही ज्ञात होता।

खना को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के दरबार के वराहमिहिर की स्त्री बतलाया गया है, पर यह बात सही नही मालूम देती। इसी प्रकार डाक एक ग्वाला माना गया है, जो सभव है सही हो। असल बात यह है कि इनका पूर्ण परिचय तो क्या, कुछ भी परिचय उपलब्ध नही है।

बगाल मे हिंदू धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म का भी बहुत दिनो तक जोर रहा। पर धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रचार घटने लगा और उसके स्थान पर हिंदू धर्म का प्रचार होने लगा। साहित्य मे इसका एक प्रभाव यह हुआ कि कई बौद्ध ग्रथ हिंदू धर्म-ग्रथो के रूप मे बदल गये। बुद्ध को शिव के रूप मे बदल दिया गया, और धर्म के स्थान पर धर्मठाकुर की पूजा होने लगी। सघ को शख मे बदल दिया गया। पर इतना बदलने पर भी, जैसा कि श्री दिनेशसेन ने बताया है, इस प्रकार के साहित्य मे कई ऐसे अश रह गये, जिनसे प्रमाणित होता है कि ये ग्रथ मौलिक रूप से बौद्ध ग्रथ थे। फिर भी इन असगतियो के बावजूद धर्मठाकुर की पूजा प्रचलित हुई और धर्ममगल आदि कई ग्रथ प्रचलित रहे, जिनमे धर्मठाकुर की पूजा का प्रचार किया गया।

धर्मठाकुर की पूजा के सबध मे शून्य पुराण मे एक पक्ति ऐसी आती है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्मराज यज्ञ की निंदा करते है। इसके अलावा और भी अन्य उल्लेख ऐसे है, जिनमे इस पुराण पर चढे हुए बौद्ध रग का पता लगता है। एक स्थान पर कहा गया है—'सिहले श्री धर्मराज बहुत सम्मान।' यानी सिहल मे श्री धर्मराज का बहुत सम्मान है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस धर्म से इस पुराण का पहले सबध था।

शून्यवाद बौद्ध धर्म मे उत्पन्न बल्कि वाद के दिनो मे उसीके अतर्गत एक मतवाद था, जिसमे सब चीजो की उत्पत्ति शून्य से बतलाई गई है। धर्ममगल मे इसी मतवाद का प्रचार मिलता है। धर्मठाकुर के मदिरो मे हाडी, डोम आदि कथित नीच जाति के लोग पुरोहित थे और हम पहले ही बतला चुके है कि ये कथित नीच जाति के लोग प्राक आर्य युग के है। इससे हम समझते हैं कि धर्मठाकुर की पूजा मे केवल बौद्ध ही नही, कुछ प्राक आर्य या आर्येतर प्रभाव भी होगे।

एक बहुत मजे की बात यह है कि यद्यपि धर्मठाकुर की पूजा को संपूर्ण रूप से हिंदू साँचे में ढाल दिया गया है, फिर भी डा० दिनेशसेन ने बतलाया है कि कम-से-कम १६४० ई० तक ब्राह्मणों को यह हिम्मत नहीं हुई कि धर्मठाकुर के उपासकों के साथ अधिक हेल-मेल बढ़ावें। बात यह है कि उस समय तक धर्मठाकुर की पूजा हिंदू धर्म के बाहर समझी जाती थी। मैं समझता हूँ कि इस बात की व्याख्या की जरूरत है कि धर्मठाकुर की पूजा को प्रायः संपूर्ण रूप से हिंदू बना लेने पर भी ब्राह्मण उससे अलग क्यों रहे तथा वे ऐसा क्यों समझते रहे कि इन उपासकों के साथ मिलने से धर्म नष्ट हो जायगा या जाति चली जायगी। हमारी समझ में इसकी व्याख्या यही हो सकती है कि सिद्धांत रूप में धर्मठाकुर की पूजा बहुत-कुछ हिंदू हो जाने पर भी इसके पुरोहित-वर्ग, साथ ही इसका वातावरण, एक बड़ी हद तक अहिंदू रहा, इसी कारण ब्राह्मण इससे अलग रहते रहे।

बंगाल में धर्म-पूजा के सबसे बड़े प्रतिपादक रामाई पंडित माने गये, जो शून्य पुराण के रचयिता थे। रामाई पंडित का जन्म वैशाख शुक्ल के दिन हुआ था, पर वर्ष का ठीक पता नहीं है। कुछ प्रमाण ऐसे मिले हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि वह दशवीं शताब्दी ई० के अन्त की ओर पैदा हुए। रामाई पंडित के वंशधर यह दावा करते हैं कि रामाई ब्राह्मण थे, पर यह बात विश्वसनीय नहीं है। रामाई पंडित के वंशधर अब भी मैना नामक स्थान के एक मंदिर में पुरोहिती करते हैं और वे डोम पंडित कहलाते हैं। यद्यपि उनकी इज्जत किसी ब्राह्मण से कम नहीं है, तथापि वे ब्राह्मण नहीं माने जाते। कई बार ऐसा हुआ है कि किसी संत की मर्यादा बढ़ाने के लिए उन्हें ब्राह्मण बता दिया गया, पर वस्तुस्थिति कुछ और ही थी।

रामाई पंडित ब्राह्मण थे, फिर भी उनके वंशधर डोम कैसे हो गये, इसकी व्याख्या करने के लिए धर्मठाकुर के उपासकों में कई प्रकार की अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक तो यह है कि स्वयं धर्मठाकुर ने रामाई पंडित को यह शाप दिया था कि ऊँची जाति का कोई व्यक्ति तुम्हारा पानी नहीं पियेगा। दूसरी अनुश्रुति यह है कि रामाई पंडित ने अपने पुत्र धर्मदास को यह शाप दिया था कि तुम जातिच्युत होकर डोम हो जाओ। यह कहीं नहीं बताया गया कि आखिर यह शाप किस अपराध के कारण दिया गया। इन बातों से यह स्पष्ट है कि रामाई

पडित के ब्राह्मण होनेवाली बात मनगढत और बाद का क्षेपक है । शून्य पुराण मे जो कही-कहीं रामाई पडित के साथ द्विज शब्द आता है, वह क्षेपक है ।

रामाई पडित का कोई प्रामाणिक जीवन-चरित नही मिलता । यह कहा जाता है कि उन्होने ८० साल की उम्र मे शादी की और उनका धर्मदास नाम से एक पुत्र हुआ, जिसके चार पुत्र हुए । शून्य पुराण मे आदिम शून्य का वर्णन यो किया गया है—

> **नहीं रेख, नही रूप, नही छिल वन्न, चिन**
> **रवि, शशि नहि छिल, नहीं छिल राति दिन ।**
> **नहि छिल जल, थल, नहि छिल आकाश,**
> **मेरु मदार ना छिल, ना छिल कैलाश ।**
> **नहि छिष्टि छिल, आर नहिं सुर, नर,**
> **ब्रह्मा, विष्णु ना छिल, न छिल अबर ।**

जो उद्धरण दिया गया, उसमे यदि यह बता दिया जाय कि छिल शब्द का अर्थ 'था' है, तो उसे समझने मे कोई विशेष कठिनाई न होगी ।

शून्य पुराण मे शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि पौराणिक देवताओ के नाम आते है, पर उनका चेहरा बदला हुआ है और उनके काम भी भिन्न है । इस पुस्तक मे कुछ गद्य अश भी आते है, जिनसे उस समय की भाषा का और भी विशद ज्ञान होता हे । बाद को क्षेपक के रूप मे इसमे एक अध्याय जोडा गया, जिसमे बौद्ध धर्म के पतन, हिन्दू धर्म के उत्थान, यहातक कि ब्राह्मणो और मुसलमानो की एक लडाई का भी उल्लेख आता है । यह लडाई जाजपुर मे हुई, ऐसा बताया जाता है । इस युद्ध-वर्णन की विशेषता यह है कि इसमे मुसलमानो को देवी और देवताओ का अवतार बतलाया गया है, जो ब्राह्मणो को इस कारण सजा देने आये कि उन्होने सतधर्मियो याने बौद्धो पर अत्याचार किया था ।

ऐसा अनुमान है कि यह क्षेपक ३०० वर्ष बाद सहदेव चक्रवर्ती के द्वारा रचित होकर जोडा गया । सहदेव चक्रवर्ती धर्ममगल के अन्यतम रचयिताओ मे माने गए है । इस युद्ध-वर्णन मे यह बताया गया है कि धर्म जब वैकुठ मे ब्राह्मणो के अत्याचारो से दुखी हुए तो वे यवन का रूप धारणकर, काली टोपी लगाकर खुदा का नाम धारणकर आगे बढे । सब देवता पायजामा पहने हुए थे । ब्रह्मा मुहम्मद बन गए, विष्णु पैगम्बर बने, शिव आदम बने, गणेश गाजी बने,

कार्तिक काजी वने, नारद शेख वने और इन्द्र मौलाना वने । चडिका हयावीवी वनी और पद्मावती नूर वीवी वनी । सवने मिलकर मदिरो और मठो को लूट लिया ।

इसमे जिस जाजपुर की लडाई का उल्लेख है, उसका कुछ ऐतिहासिक पता नही मिलता । जो कुछ भी हो, इस उल्लेख की अन्तर्निहित वाते सत्य मालूम देती है । इसमे की पहली वात तो यह है कि वगाल मे ब्राह्मणो ने वौद्धो पर इतना अत्याचार किया था कि जव मुसलमान आये तो वौद्धो ने मुसलमानो का साथ दिया । विदेशी मुसलमान त्राणकर्ता के रूप मे नही आये थे, इसलिए उनका भी दमन-चक्र चला, पर वौद्धो ने हिंदू वनने के वजाय मुसलमान वनना स्वीकार किया । यही कारण है कि वगाल मे मुसलमानो की सख्या अधिक हो गई । वौद्ध हिंदुओ से वहुत चिढे हुए थे ।

हम पहले ही धर्ममगल कविताओ का उल्लेख कर चुके है। यह एक सग्रह है । जिन कवियो की कविताए इसमे सगृहीत है, उनमे **मयूर भट्ट** सवसे प्राचीन है । मयूर भट्ट का काल-निर्णय अभी नही हुआ है, पर वह मुस्लिम-विजय के कुछ पहले रहे होगे । मयूर भट्ट के सवध मे कहा जाता है कि वह ब्राह्मण-परिवार के थे । धर्ममगल-सवधी कविताओ मे ग्यारहवी सदी के एक राजा लाऊसेन की वीरता की कहानिया वर्णित है । यह कहानी मोटे तौर पर यो है कि सोमघोष नाम से गौडेश्वर के राजमहल मे एक नौकर था । यह राजा का प्रियपात्र हो गया और उसे ढाकुर मे एक जागीर मिली । सोमघोष का लडका इचाई घोष काली का पूजक था और वह एक नामी योद्धा वन गया । धीरे-धीरे वह इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने गौडेश्वर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । सोमघोष लडके को समझाते रहे, पर उसने पिता की बात नही मानी । मजबूरी से गौडेश्वर ने उसके विरुद्ध युद्ध छेड दिया और मैनागढ के राजा कर्णसेन को उसके विरुद्ध लडने को भेजा । कर्णसेन युद्ध मे हार गया और उसके चार पुत्र मारे गये । जब वह हारकर अपनी राजधानी मे पहुचा तो रानी भी पुत्र-शोक से मर गई । इसी हालत मे कर्णसेन गौडेश्वर के पास गया तो गौडेश्वर को वडा दु ख हुआ और मानो उसका दु ख दूर करने के लिए गौडेश्वर ने अपनी सुन्दरी साली का ब्याह कर्णसेन से कर दिया । इसी विवाह से लाऊसेन उत्पन्न हुआ । जब लाऊसेन वडा हुआ तब उसने कामरूप के राजा तक को हराया । लाऊसेन ने गौडेश्वर की आज्ञा

से राजा हरिपाल को भी हराया। हरिपाल पर चढाई का कारण यह था कि उसने गौडेश्वर से अपनी कन्या की शादी करने से इनकार किया था। इस लडाई मे स्वय राजकुमारी सेना का सचालन कर रही थी।

पर वह हार गई, और यद्यपि लडाई का आरभ गौडेश्वर को कन्यादान करने से इनकार करने पर हुआ था फिर भी गौडेश्वर ने विजय की खुशी मे राजकुमारी का व्याह लाऊसेन से कर दिया। लाऊसेन इतना प्रवल हो गया कि गौडेश्वर के प्रधान मत्री ने भी उसके विरुद्ध षडयत्र करना शुरू किया। काव्य मे इन षडयत्रो के लवे वर्णन भरे पडे है और यह दिखाया गया है कि किस प्रकार लाऊसेन हर वार वचते रहे। धर्मठाकुर को लाऊसेन ने किस प्रकार अत्यत कठिन व्रतो से रिझाया, इसका भी वर्णन वहुत विशद है। लाऊसेन के अतिरिक्त कालू डोम की स्त्री लोखा डोमनी और उसके पुत्र शक की भक्ति और त्याग की कहानी भी इसमे आती है। लाऊसेन के चरित्र को उभारकर सामने लाने के लिए उसे जिन प्रलोभनो का सामना कराया जाता है, उससे भी उस युग के जीवन पर, विशेषकर राजाओ के जीवन पर, रोशनी पडती है।

लाऊसेन, इचाई घोष आदि व्यक्ति ऐतिहासिक थे और उनके राजमहलो के खडहर अभी देखे जा सकते है। जैसा कि हम पहले वता चुके, धर्ममगल के कवियो मे मयूर भट्ट सवसे प्राचीन है और डा० दिनेश सेन के अनुसार मयूर भट्ट का समय वारहवी शताव्दी है। भाषा की दृष्टि से धर्ममगल की कविताए जिस रूप मे हमे मिली है, वे वाद की ठहरती हैं, पर ऐसा इस कारण है कि हमे जो रूप देखने को मिला है, वह वहुत-कुछ परिवर्तित और आधुनिकीकृत है। आधुनिकीकरण के वावजूद इन कविताओ मे ऐसे आतरिक प्रमाण मौजूद है, जिनसे ज्ञात होता है कि उनमे से कम-से-कम एक वहुत वडा अश, जितना मालूम पडता है, उससे कही प्राचीनतर है। उनके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मौलिक रूप मे वे और प्राचीन रहे होगे।

'माणिकचद्र राजार गान' ग्यारहवी शताव्दी की रचना मालूम पडती है। कविता की दृष्टि से यह कोई ऊची रचना नही है। इसमे हाडी सिद्ध के करिश्मो का वर्णन है, और अलिफ लैला की तरह असम्भव वीरता का वर्णन यत्रतत्र है। देवता और मनुष्य हेलमेल से विचरते और रहते हुए दिखाये जाते है। इन असभव वातो के होने पर भी जहा-तहा समसामयिक समाज के सवध मे

सूचनाए प्राप्त हो जाती हे, जैसे उन दिनो व्यापार विनिमय से होता था और लगान कौडियो मे अदा किया जाता था। धनी लोग सोने की थाली मे पचासो तरह का पकवान खाते थे। इस पुस्तक की उपमाओ आदि से भी डा० सेन यह निष्कर्ष निकालते है कि इसके कवि सस्कृत-साहित्य आदि से अपरिचित थे। उदाहरणस्वरूप राजा गोपीचद की रानी के दातो की उपमा शोले से दी जाती है। उस समय की भाषा का कुछ नमूना यो है—

जिस समय गोपीचद यति वनकर अपनी स्त्री उदुना को छोडने लगता हे, तो वह कहती है—

ना जाइयो ना जाइयो राजा दूर देशातर,
कारे लागिया वाधिलाम शीतल मदिर घर।
निदेर स्वपने राजा देवो दरिशन,
पालके फेलाइव हस्त नाई प्रानेर धन
आमि नारि रोदन करिव खाली घर मदिरे
अमाके सगे करि लइया जाओ।

—"हे राजा, दूर देशातर मे न चले जाओ। जो तुम चले जाओगे तो मैंने किस के लिए शीतल मदिर, घर वाधा ? जो तुम चले जाओगे तो नीद मे कभी-कभी दर्शन हो जाया करेगा, पर जव नीद मे पलग पर हाथ डालूगी तो देखूगी कि मेरे प्राणो का धन जा चुका। मै अवला नारी खाली घर मे रोती रहूगी, मुझे साथ ले चलो।"

वाद के साहित्य मे कही-कही राजा गोपीचद का उल्लेख गोविदचद्र के रूप मे किया गया है। दुर्लभ मल्लिक नामक वाद के युग के एक कवि ने इसी नाम से राजा का उल्लेख किया है। दुर्लभ मल्लिक के काव्य मे शून्यवाद का प्रभाव भी यथेष्ट मात्रा मे देखा जा सकता है। इसमे हाडिपासिद्ध को शून्यवाद का प्रचार करते हुए दिखाया गया है। राजा गोपीचद के ससार-त्याग की कथा बहुत-से कवियो के द्वारा गाई गई, यहातक कि दूसरी भाषाओ मे भी उसकी प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है।

कम-से-कम बगाल मे शैव मतवाद के आगे ही वौद्ध धर्म परास्त हुआ, इसलिए शिव के सवध मे भी प्राचीन बगला साहित्य मे बहुत उल्लेख आते है। शिव के सबध मे जो कथाए अन्यत्र प्रचलित है, उनके अतिरिक्त शिव को अक्सर

प्राचीन वगला कविताओ मे धान के खेतो मे हाथ वटाते हुए और स्वय खेती करते हुए दिखलाया गया है। शून्य पुराण मे भी एक प्रसग आता है, जिसमे शिव से कहा जाता है—भीख पर जीवन निर्वाह करने के कारण अक्सर तुम्हे भूखो मरना पडता है, इसलिए तुम ऐसा क्यो नही करते कि एक अच्छी-सी जमीन लेकर खेती मे जुट जाओ। यदि अच्छा खेत न मिले तो पानी देकर उसे ठीक कर सकते हो। जब घर मे चावल होगा तो रोज खाना खाने मे आनद भी आयेगा। भगवन्, भूख की ज्वाला कवतक सहोगे? तुम कपास की खेती क्यो नही करते? वाघ की खाल पहनकर कवतक चलोगे? अपने शरीर पर भभूत क्यो लगाते हो? इसके वदले मरसो और तिल की खेती क्यो नही करते, जिससे कि लगाने के लिए तेल हो जाय? तरकारिया भी काफी वो लेना। और केला लगाना न भूलना, जिससे कि धर्मठाकुर की पूजा के सब सामान मिल जाय।

वाद के युग के साहित्य मे शिव का यह खेतिहर रूप वार-वार आता है, और शिव खेती के सवध मे वहुत व्यौरेवार उपदेश देते है, जैसे कव खेत तैयार किया जाय, कैसे किया जाय, निराई कैसे की जाय, इत्यादि।

३

चंडीदास और विद्यापति

इसके वाद हम अधिक व्यौरे मे न जाकर चडीदास पर आते है, जो वगला के प्रथम महत्वपूर्ण कवि कहे जा सकते है। चडीदास की रचनाओ मे एक उल्लेख से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि १४०३ ई० के पहले ही वह करीव एक हजार गीत लिख चुके थे। यो तो इनका जन्म वीरभूमि जिले के छातना नामक गाव मे हुआ था, पर वह वहुत कम उम्र मे ही नानूर नामक गाव मे जाकर वस गये थे। वही पर वह वासुलि देवी के मन्दिर मे पुरोहित का काम करते रहे। कवि होने के अतिरिक्त एक प्रेमिक के रूप मे चडीदास की ख्याति यहातक हो गई कि उनके नाम पर 'पागला चडी' या पागल चडी शब्द की उत्पत्ति हुई।

ऐसा मालूम होता है कि चडीदास रामी नाम की एक धोविन के प्रेमिक थे। वात वहुत ही साधारण है, पर इस प्रेम के वर्णन मे वडी-वडी अजीव वाते कही गई है। कहा जाता है कि जिस दिन रामी के साथ मिलन के नक्षत्र आ गये, उस दिन चडीदास को इसका आभास पहले ही हो गया था। वह मछली वाजार मे मछली खरीदने गये हुए थे। वहा वह मोल-तोल कर रहे थे कि इतने मे एक ग्राहक आया, जिसे मछलीवाली ने कविवर से ठहराये हुए दाम से कम दाम पर वडी खुशी से मछली दे दी। इसपर कविवर ने मछलीवाली से इस प्रकार भेद-बुद्धिमूलक व्यवहार का कारण पूछा। तव मछलीवाली मुस्कराकर वोली—उसकी वात विल्कुल भिन्न हे, हम लोगो मे परस्पर प्रेम है।

कविवर इस उत्तर के मथितार्थ पर सोचते रहे, और उसी दिन सयोग से रामी धोविन उनके सामने पड गई और वह उसके प्रेम मे व्याकुल हो गये। अव चडीदास ने सार्वजनिक रूप से अपने गीतो मे उस धोविन का उल्लेख शुरू किया, इससे हिंदू समाज मे वडी खलवली मची और उन्हे मदिर के पुजारी के पद से हटा दिया गया, यहातक कि उन्हे जाति से भी निकाल दिया गया। चडीदास के भाई नकुल वीच मे पडे और किसी तरह यह तय पाया कि यदि चडीदास व्रह्मभोज दे तो उन्हे फिर से जाति मे ले लिया जायगा। चडीदास भोज देने पर राजी हो गये, पर उधर इस भोज की खवर रामी के पास पहुची। रामी इस खवर से वहुत दु खी हुई और वह रोती-धोती हुई उस स्थान पर पहुची, जहा ब्राह्मण भोजन करने मे लगे हुए थे। वहा जो उसने चडीदास को देखा तो वह और भी रोने लगी। इसपर चडीदास सारी परिस्थिति को भूल-कर रामी के सामने इस प्रकार पहुचे, जैसे कोई भक्त देवी के सामने जाता है। कहा जाता है कि इस समय कुछ ब्राह्मणो ने धोविन के पीछे चतुर्भुजी जगदवा को देखा।

मालूम होता है कि सव ब्राह्मणो ने चतुर्भुजी जगदवा को नही देखा, और केवल धोविन को ही देखा। इसका नतीजा यह हुआ कि चडीदास फिर जातिच्युत कर दिये गए। अव तो चडीदास और भी खुलकर सामने आये और उन्होने खुल्लमखुल्ला धोविन को वेदमाता गायत्री करके सम्बोधन करना शुरू किया। ब्राह्मण और भी नाराज हुए और उनकी जिन्दगी दूभर कर दी गई, फिर भी उनके गीतो मे ऐसा जादू था कि जव वह गाते थे तो जनता उमड पडती थी।

ऐसा कहा जाता है कि वह जिस समय गाव मे लोगो को कीर्तन सुना रहे थे, उस समय छत गिर पडी और उनकी मृत्यु हो गई ।

चडीदास की कविता का मुख्य विषय कृष्ण और राधा है, जिसमे पूर्वराग, दौत्य, अभिसार, सभोग-मिलन, अन्तिम विच्छेद और उसके बाद भाव-सम्मेलन या मानसिक रूप से मिलन है । चडीदास का प्रचार बगाल मे किसी भी प्रकार उससे कम नही है, जितना हिंदी-भाषी प्रातो मे सूर या तुलसी का हे । काव्य की दृष्टि से भी उनकी रचनाए बहुत उच्चकोटि की है और उस ढग की किसी भाषा की रचना के साथ उसकी तुलना की जा सकती है। इस छोटी-सी पुस्तक मे उनके काव्य की सम्यक् आलोचना नही की जा सकती, फिर भी उन्होने कृष्ण की वासुरी के सबध मे जो बात कही है—'कानेर भितर दिया मरमे पशिल गो, आकुल करिल मन प्रान' याने कान के अन्दर से होती हुई, मर्म मे प्रविष्ट होकर मन और प्राण को आकुल-कर देती है, वही बात उनकी कविता के सबध मे भी लागू होती है । चडीदास को और भी अधिक श्रेय इस-लिए मिलना चाहिए कि उनके समय मे भाषा अविकसित थी, इस कारण उन्हे एक तरफ तो भाषा का निर्माण करना पडा, दूसरी तरफ उसमे चमत्कारपूर्ण कविता लिखनी पडी ।

चडीदास तथा इस प्रकार के उस युग के कवियो की कविता को कूतने मे एक बात यह याद रखनी चाहिए कि यदि कोई तुल ही जाय तो इनकी सारी कविताओ को आशिक रूप से पूर्ववर्ती विशेषकर सस्कृत काव्य की छाया, अनु-करण या जूठन प्रमाणित कर सकता है। इससे न तो चडीदास बरी है और न हिंदी के प्राचीन महाकवि । इसलिए हम उस कसौटी को तो छोड ही देते है । अवश्य यहा यह बता दे कि छाया और अनुकरण के बावजूद उस युग के दूसरी भाषाओ के कवियो की तरह उनमे मौलिकता भी बहुत थी । चडीदास का रूप-वर्णन लीजिये—

सुधा छानिया केबा ओ सुधा ढेलेछे गो
, ते मति श्यामेर चिकन देहा
अजन गजिया केबा खजन आनिल रे
चाद निगाड़ा कइल थेहा —इत्यादि

—"किसने अमृत को छान करके उस अमृत को ढाला है, श्याम की चिकनी देह

उसीकी तरह हैं। कौन अजन लगाकर खजन ले आया और फिर चाद का सत निकाला, उसका सत निकालकर मुह बनाया। गुडहुल को निचोडकर कपोल बनाये गए। विम्वफल को हराकर किसने होठ वनाये और हाथी की सड को लजानेवाले भुजदड वनाये।"

ढूढने पर इस प्रकार का वर्णन सव प्राचीन सस्कृत तथा हिन्दी कवियो की रचनाओ मे प्राप्त हो सकता है, पर यह याद रहे कि चडीदास का समय चौदहवी शताव्दी और कुछ ही हद तक पन्द्रहवी शताव्दी था। फिर भी ऐसे वर्णनो मे कोई विचित्रता नही है। पर भारत के प्राचीन कवियो की रचनाओ मे अधिकतर इसी प्रकार के वर्णन भरे पडे हैं।

एक और उदाहरण लीजिये—

राधार कि होइलो अतर व्यथा
सेजे वोसिया एकले थाकये विरले
ना शुने काहार कथा —इत्यादि

—'राधा को कितनी मानसिक व्यथा है। वह अकेली वैठी है, उसे एकात पसद है, वह किसीकी वात नही सुनती। जैसे ध्यान लगा रही हो, वादल की तरफ देख रही है, आखो की पुतलिया स्थिर है। वह खाने मे रुचि नही रखती और जोगिनो की तरह लाल कपडा पहने हुए है। वह जूडा खोलकर फूलो को डाल देती है और फिर अपने लटकते हुए वालो को देखती है। वह आकुल नयनो से वादल की तरफ ताककर कुछ वडवडाती है। वह इकटक मोर और मोरनी के कठ को देखती है। चडीदास कहता है कि सावरे के साथ नया परिचय मालूम होता है।"

ऊपर हम जो कुछ कह आये है, वह इस कविता पर भी लागू होता है। फिर भी चडीदास की कुछ रचनाए ऐसी प्राप्त होती है, जिनमे मौलिकता इस माने मे वहुत अधिक है कि अनुप्रेरणा काव्यो से न लेकर शायद लोक-साहित्य और स्वानुभव से ली गई है। चुटीली भाषा के कारण वह जो कुछ कहते है, वह वहुत ही मर्मस्पर्शी वन गया है।

ऐमन पीरिति कभू देखि नाइ सुनि,
पराने परान बाधा आपना आपनि —इत्यादि

—"ऐसा प्रेम न कही देखा गया न सुना गया, प्राणो से प्राण अपने-आप बधा

हुआ है। एक-दूसरे की गोद मे पडे हुए है, फिर भी विछोह की वात सोचकर दोनो रो रहे है। वात यह है कि एक पल के लिए भी एक-दूसरे को न देखे, तो मरने लगते है। जल के विना मीन जैसे कभी नही जीती, वैसे ही यह प्रेम हे। ऐसा प्रेम मनुष्यो मे कभी देखा नही गया। कहते है, सूर्य और कमल का प्रेम है, पर कमल तो ठड मे मरता रहता है और सूर्य गुलछर्रे उडाता है। चातक और वादल के प्रेम के साथ भी इसकी तुलना नही हो सकती, क्योकि चातक भले ही मर जाय, समय न आने पर वादल एक वूद भी पानी नही देता। पुष्प और मधुकर की भी इस प्रेम से तुलना नही की जा सकती, क्योकि यदि मधुकर स्वय न आवे, तो पुष्प नही जाता। चकोर और चद्रमा ये तो कुछ भी नही है। चडीदास का कहना है कि तीनो भुवन मे ऐसा प्रेम नही देखा गया।

एक और पद लीजिये—

बधु तुमि से आमार प्रान
देह मन आदि तोहारे सपेछि
कुल शील जाति मान
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया
योगिर आराध्य धन।
गोप ग्वालिनि हम अति दीना
ना जानि भजन पूजन।
कलकी वलिया डाके सवलोके
ताहाते नाहिक दु:ख
तोमार लागिया कलकेर हार
गलाय परिते सुख

—"प्रियतम तुम मेरे प्राण हो। मैने देह, मन, कुल, शील, जाति, मान सव तुम्हे सौप दिया। हे अखिल के नाथ श्याम, तुम योगियो के आराध्य धन हो। हम गोपिया है, वडी दीन है, भजन-पूजन कुछ नही जानती। सव लोग हमपर कलक लगाते है, पर उसका मलाल नही है। तुम्हारे लिए कलक का हार गले मे धारण करना सुख की वात है।"

चडीदास की कविता को कथक सैकडो वर्षों से सुना रहे हे और गायक

गा रहे है। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव के कारण वगाल के वाहर विशेषकर उडीसा और आसाम मे, प्रचारित हुई।

विद्यापति

विद्यापति भी उसी प्रकार से वगाल के कवि समझे जाते है, जिस प्रकार से चडीदास समझे जाते है। उनकी कविताओ का भी वगाल मे उसी प्रकार से प्रचार और प्रसार रहा है, जिस प्रकार से चडीदास की रचनाओ का प्रचार है। वगाली उनको वगला कवि ही समझते रहे है और कोई वजह नही कि आगे उन्हे ऐसा न समझे। श्री प्रियरजन सेन इस सम्बन्ध मे लिखते है—"सस्कृत के परदे को हटाकर भाषा के अपरूप सौदर्य को लेकर विद्यापति आ खडे हुए। उनका घर मिथिला मे था और जिस भाषा मे उन्होने काव्य-रचना की, वह *शुद्ध वगला नही है, फिर भी वह वगाल के ही कवि है। कहीपर उनका प्रभाव* इतना व्याप्त नही हुआ, जितना वगाल मे हुआ और वाद को जिस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी काव्यसाधना को मूर्त्त किया, वैसा भी कहीं सभव नही हुआ। विद्यापति वगला भाषा के ही कवि है, यद्यपि मैथिल साहित्य के पक्ष मे डिग्री हो चुकी है।"[1]

इसमे सदेह नही कि विद्यापति ने मैथिल भाषा मे रचना की, पर वगाल मे उनकी रचनाओ का जो सस्करण प्रचलित है, वह मैथिल मे प्राप्त सस्करण से कुछ भिन्न है। ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा कि वगालियो के द्वारा गाये जाते-जाते मूल रचना का वगीकरण हुआ। साहित्य के इतिहास मे इस प्रकार की वात अज्ञात नही है। श्री दिनेश सेन का तो यहातक कहना है कि वगाल मे प्रचलित विद्यापति की रचनाए कही-कही मिथिला मे सुरक्षित उनके मैथिल सस्करण से उच्चकोटि के है। विद्यापति के नाम से प्रचलित कई उत्कृष्ट रचनाए जैसे

> **जनम अवधि हम रूप नेहारिनु**
> **नयन न तिरपित भेल**

वगाल मे ही पाई जाती है और मिथिला मे उनका कोई पता नही है। अनु-

---

[1] वागला साहित्येर खसडा, पृ० ५६

श्रुति यह है कि जसोर के राजा प्रतापादित्य के चाचा वसतराय ने विद्यापति का वगला सस्करण तैयार किया। जो कुछ भी हो, इस वगला सस्करण के कारण विद्यापति को केवल रियायती तौर पर नही, एक विशुद्ध बगला कवि भी माना जा सकता है। यहापर हम एक वात यह भी कह दे कि यो हिदी के सग्रहो मे विद्यापति एक प्राचीन हिंदी कवि करके दिखाये जाते है, पर हिदी के नवरत्नो तक मे उनकी गिनती नही है। हम यह कहने का साहस करते है कि विद्यापति की उचित कद्र हिदी मे नही हुई है। मेरा निजी मत यह है कि वह सूर या तुलसी से किसी प्रकार घटकर नही है।

विद्यापति की जीवनी के व्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही है। हिदी के सग्रहो मे भी उनकी जीवनी पढी जा सकती है। विद्यापति चौदहवी सदी के अत की ओर पैदा हुए और ऐसा समझा जाता है कि वह वहुत दीर्घजीवी रहे। विद्यापति राजा शिवसिह के सभा-कवि थे। कहा जाता है, वह रानी से प्रेम करते थे, जो उसी प्रकार था, जैसे नक्षत्र के लिए पतग का प्रेम है। कहा जाता है कि विद्यापति और चडीदास मे गगा-किनारे भेट भी हुई थी। विद्यापति का वगीकरण किसी-किसी क्षेत्र मे इतना अधिक हुआ कि उनकी वगीकृत रचनाओ को वगला के अलावा कुछ समझना मुश्किल हे। प्रत्येक वगाली के निकट सुपरिचित इन पक्तियो को देखिये—

मरिब मरिव साख, निचय मरिब
कानु हेन गुण निधि, कारे दिये जाबो।
तोमरा जतेक सखि, आछ मझु सगे,
मरणकाले कृष्णनाम लिख असार अगे।
ना पुडिओ राधा अग, ना भासाइयो जले,
मरिले वाधिया रेख, तमालेर डाले।

चडीदास और विद्यापति की तुलना करते हुए डा० सेन कहते हे, "ऐसा मालूम होता है कि चडीदास तो प्रकृति से अनुप्रेरित है, उनकी पुकार आत्मा की गहराइयो से उठी हुई पुकार है। नतीजा यह है कि साहित्यिक अलकरण पर ध्यान नही दिया जाता, कविता एक स्वाभाविक सोते से उमडकर निकल पडती है और उसके विशुद्ध सोते मे कोई मिलावट नही है। पर विद्यापति एक आत्मज्ञान-सम्पन्न कवि और सुलझे हुए विद्वान् हे। उनकी उपमाए और उत्प्रेक्षाए प्रतिभा

से उज्ज्वल कवि-कीर्ति के रूप मे है। उनकी कविताए फौरन कर्णों को मुग्ध कर लेती है और जिस साहस के साथ वह रग भरते है, उनसे आखे चकाचौध हो जाती है।··· चडीदास उच्चतर मडलो के पक्षी है, जहा सभव है, पार्थिव सौदर्य कम हो, पर वह स्वर्ग के अधिक निकट है। इसके विपरीत विद्यापति दिन भर सूर्य-चुबित कुजो और पुष्पोद्यानो मे विचरते रहते है, पर सध्या समय वह ऊचे उडते है और वह चडीदास को पकड लेते है।"[1] श्री अन्नदाशकर राय और लीला राय ने भी विद्यापति के सम्बन्ध मे यह लिखा है, "यद्यपि विद्यापति ऐहिक और विदग्ध थे, फिर भी उनमे चडीदास की आध्यात्मिक अतर्दृष्टि और भावनागत गहराई का अभाव है, जिसकी पूर्ति वह छन्द और वाक्य-विन्यास पर अद्भुत अधिकार से कर देते है। वह जिस प्रकार सौदर्य को उसके सब स्वरूपो मे चित्रित करते है, उससे वह निश्चित रूप से एक महाकवि प्रमाणित होते है।"[2]

इस सबध मे यह भी स्मरण रखने योग्य है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ विद्यापति से बहुत प्रभावित हुए। अन्नदाशकर के अनुसार प्राचीन कवियो मे वह कालिदास और विद्यापति से ही अधिक प्रभावित हुए।

४

धार्मिक साहित्य

चडीदास और विद्यापति के वाद वगला मे पुराणो पर आधारित वहुत अधिक साहित्य उपलब्ध होता है। इस युग मे धार्मिक कथाओ को लेकर काव्य-रचना की परिपाटी बहुत अधिक चल पडती है। ये काव्य मगलगायनो के रूप मे सामन्तो की हवेली से लेकर किसान की कुटिया तक सर्वत्र पहुचते थे। मगल-गायन का रिवाज अब भी प्रचलित है। एक मुख्य गायक होता है और आठ-दस साथ देनेवाले होते है, जो मुख्य गायक को घेरकर अर्धचन्द्राकार रूप मे बैठते है। श्रोता हजारो की सख्या तक पहुच जाते है। बगाल के पाल राजाओ के युग

[1] वगला भाषा और साहित्य का इतिहास (सेन), पृ० १४६

[2] वगला साहित्य (पी ई एन), पृ० १५

मे मगलगायको को वहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। पौराणिक विषयो मे कई ऐसे विषय भी आ जाते थे, जो सच कहा जाय तो पौराणिक नही है और केवल बगाल मे ही प्रचारित है।

स्वाभाविक रूप से मगलगायको मे बराबर ऐसे विषयो की खोज बनी रहती थी, जिनसे वे अपने श्रोताओ को मुग्ध कर सके। इससे नये साहित्य की, अवश्य एक विशेष प्रकार के साहित्य की सृष्टि की ओर लोगो का ध्यान गया। कई वार ऐसा भी हुआ कि ये मगलगायक अच्छे कवि भी प्रमाणित हुए। हरिश्चन्द्र-शैव्या, नल-दमयन्ती आदि उत्तर भारत मे सुपरिचित पौराणिक कहानियो के अतिरिक्त वेहुला, चडीमगल, मनसामगल आदि वहुत-सी कहानियो के काव्य मे सस्करण प्रकाशित हुए। प्रकाशित हुए से मतलव प्रकाश मे आये है।

इन्ही मगलगायको से अथवा उनके साहित्य से अनुप्रेरित होकर जिन लोगो ने स्थायी साहित्य की सृष्टि की, उनमे से कुछ ही के विषय मे यहापर विवरण दिया जा सकता है।

बगला रामायण के लेखक **कृत्तिवास** का जन्म १३४६ ई० की फरवरी मे हुआ। कहा जाता है कि उनके पूर्वपुरुष ७३२ ई० मे राजा आदिसूर के युग मे कन्नौज से आये थे। कृत्तिवास के पूर्वपुरुष कई सौ वर्षो तक इधर-उधर रहने के वाद चौवीस परगना के फुलिया नामक गाव मे बस गये। कृत्तिवास सस्कृत काव्य और व्याकरण मे पाडित्य प्राप्त करने के वाद गौड के राजा से मिलने गये। वहा राजा ने उनका आदर-सत्कार किया और उनसे कहा कि कुछ मागो, पर उन्होने यह कहकर कुछ लेने से इनकार कर दिया कि मागना मेरी रीति नही है। राजा ने उन्हे सप्तकाड रामायण लिखने के लिए कहा और उन्होने उसे करना सहर्ष स्वीकार किया।

कृत्तिवास की जो रामायण इस समय प्रचलित है, वह उनकी लिखी हुई असली रामायण से बहुत भिन्न हो गई है। क्षेपको की भरमार है, इसके अतिरिक्त उसकी भाषा मे बहुत परिवर्तन किया गया। एक तरफ यह जहा वहुत दुख की वात है, वही पर इन्ही परिवर्तनो का परिणाम यह है कि आज भी कृत्तिवास की रामायण उतनी ही जीवित है, जितनी वह कृत्तिवास के समय मे रही होगी। दिनेश सेन ने यह वहुत सुदर वात कही है कि कृत्तिवास की रामायण करीव-करीव उस युग की रचना है, जिस युग मे चासर ने 'कैंटरबरी

टेल्स' लिखा था, पर जहा शेषोक्त पुस्तक केवल पुस्तकालयो की अलमारियो मे वद पडी रहती हैं और केवल सुधीजन ही उसे पढते है, वहा कृत्तिवास की रामायण घर-घर मे नित्य पाठ्य साहित्य बना हुआ है।

वहुत प्रयत्न करने पर भी कृत्तिवास की मौलिक रामायण का उद्धार कठिन मालूम होता है, पर कृत्तिवास के सस्करणो ने वगाल की जो सेवा की है, उसको देखते हुए दिनेश सेन ऐसे विद्वान् भी यह कहते है कि इन सेवाओ को देखते हुए कृत्तिवास की असली रामायण की विलुप्ति पर शोक करना कहा-तक उचित होगा। उनका कहना है कि जनता ने अवश्य ही कृत्तिवास की रामायण के उन अशो को बचा लिया होगा, जो सुदर और दिलचस्प थे, इसके अलावा समय की आवश्यकता के अनुसार शैली का सरलीकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ होगा। रहे क्षेपक, सो उस युग के विचारो को स्थान देने के लिए जोडे गये होगे। ऐसा समझा जाता है कि वैष्णव कवियो ने इस पुस्तक मे भक्ति का उपादान जोड दिया होगा।

मजे की बात यह है कि परस्पर-विरोधी वैष्णव और शाक्त दोनो मत के लोगो ने कृत्तिवास के नाम से अपने-अपने वक्तव्य जोड दिये है। ऐसा करने से कृत्तिवास का भी भला हुआ और उनका भी भला हुआ। कृत्तिवास के नाम से उनकी वाते जनता तक पहुची और इन क्षेपको के कारण कृतिवास सव सप्रदायो मे प्रिय बने रहे। उत्तर भारत मे तुलसी की रामायण जिस चाव से पढी जाती हे, उसी चाव से वगाल मे कृत्तिवास की रामायण पढी जाती है।

कृत्तिवास के बाद भी वहुत-से बगाली कवियो ने रामायण को अपना विषय बनाया, पर वे कृत्तिवास की जनप्रियता प्राप्त न कर सके। कई लोगो ने रामायण के किसी एक विषय को लेकर जैसे सीता का वनवास या लक्ष्मण-दिग्विजय ऐसे विपय को लेकर काव्य-रचना की।

रामायण की तरह महाभारत के भी वगला सस्करण तैयार हुए। महाभारत के सबसे प्राचीन वगला सस्करण के रचयिता के रूप मे **संजय** का नाम उल्लेखनीय है। सजय ने महाभारत को वहुत सक्षेप मे लिखा, पर वाद मे क्षेपको के कारण उनका महाभारत एक वहुत वडा ग्रथ हो गया। ऐसा समझा जाता है कि सजय कृत्तिवास के ही समसामयिक थे। सजय की कविता साधारण है, पर उनके क्षेपककारो मे कई, जैसे राजेद्रदास और गोपीनाथ दत्त ऊचे दर्जे

के कवि थे।

महाभारत के अन्य रचयिताओ मे **नसरतखा** नामक एक कवि हो गये है, पर उनका महाभारत अब प्राप्त नही है। यह भी पता चलता है कि परागलखा नामक एक सामत की आज्ञा पर कवीन्द्र **परमेश्वर** ने एक महाभारत लिखा, जिसका समय १४६४ ई० से १५२५ ई० है। यह द्रष्टव्य है कि मुसलमानो ने हिंदुओ के धार्मिक साहित्य के सृजन मे सक्रिय हाथ वटाया।

महाभारतकारो मे **काशीराम दास** सबसे प्रसिद्ध हुए हैं। उनका महाभारत उसी प्रकार से अवतक पढा जाता है, जिस प्रकार से कृत्तिवास की रामायण पढी जाती है। जिस प्रकार से प्रचलित कृत्तिवासी रामायण मे केवल कृत्तिवास का नाम-ही-नाम है, एक हद तक काशीराम दास के महा-भारत का भी वही हाल है। उसमे न मालूम कितने क्षेपक जोडे गये है और कितने परिवर्तन हुए है। सबसे महत्वपूर्ण वात यह है कि काशीराम दास ने स्वय कुछ हद तक अपने से पूर्ववर्ती महाभारतकार **नित्यानद घोष** के महाभारत को अपना लिया।

ऐसा समझा जाता है कि पूर्वी वगाल मे सजय और कवीन्द्र परमेश्वर-रचित महाभारत तथा पश्चिमी वगाल मे नित्यानद का महाभारत प्रचलित था। काशीराम दास ने इन सवको समाप्त कर दिया और जैसाकि वताया जा चुका, वह ऐसा तभी कर पाये, जव उन्होने नित्यानद को आत्मसात् कर लिया। डा० दिनेश सेन ने यह दिखलाया है कि नित्यानद की रचना को अपनाते समय काशीराम दास ने कुछ मामूली परिवर्तन कर लिये। कई बार वह पूर्ववर्ती महाभारतकार की रचना को अपनाते समय उसे इस प्रकार परिवर्तित कर देते है कि वह एक नई चीज हो जाती हे। इसके अलावा वह अपने महाभारत मे ऐसे विषयो का वर्णन करते है, जो पहले के वगला महाभारतो मे पाये नही जाते। उन स्थलो मे उनकी मौलिक प्रतिभा का जौहर दृष्टिगोचर होता है। उनकी शैली की एक विशेषता यह है कि वह दार्शनिक गुत्थियो मे न पडकर केवल कहानी कहते हैं। देव-द्विज मे उनकी असीम भक्ति है। उनकी रचना मे पुनरुक्ति और अतिरजन की भरमार है। फिर भी उनके महाभारत मे वे सव तत्व है, जिनसे कोई रचना जनप्रिय हो सकती है। भापा मे होने पर भी पडितो ने उनके ग्रथ को सस्कृत ग्रथो की तरह पवित्र इसलिए मान लिया कि इससे उनके

शासन और शोषण को वल मिलता था। काशीराम दास का महाभारत वगाल मे एक शास्त्र के रूप मे हो गया।

काशीराम दास के सवध मे ऐसा पता चलता है कि वह मेदिनीपुर जिले के आवाशगडा नामक गाव मे पाठशाला के शिक्षक थे। वह सिगी नामक गाव के रहनेवाले थे, जहा कहा जाता है केशेपुकुर नाम से एक तालाव है, जिसका नाम उन्हीके नाम पर (काशी से केशे वना है) रखा गया था। काशीराम दास सोलहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे पैदा हुए थे और सत्रहवी सदी के मध्य तक जीवित रहे।

जहा हिन्दी मे केवल रामायण (तुलसीकृत) घर-घर पहुची हुई है, वहा वगाल मे कृत्तिवास की रामायण और काशीराम दास का महाभारत दोनो समान रूप मे प्रचलित हैं। हिन्दी मे महाभारत का कोई भी जनप्रिय सस्करण *नही हुआ। कई लोगो का ऐसा विचार है कि कृत्तिवास और काशीराम दास ने* सैकडो वर्षों तक वगालियो के चरित्र का निर्माण किया। इसमे सन्देह नही कि उनका प्रभाव वहुत व्यापक रहा।

वगला मे भागवत के भी सस्करण हुए, पर वे इतने जनप्रिय नही हो सके। राजा हुसेनशाह के आदेशानुसार **मालाधर वसु** ने १४७३ ई० मे भागवत की रचना शुरू की और १४८० तक श्रीकृष्ण विजय नाम से इसे समाप्त कर दिया। इस कृति के लिए मुसलमान राजा ने उन्हे गुणराजखा की उपाधि दी। मालाधर वसु ने कोई शाब्दिक अनुवाद नही किया, और इसमे राधा का वर्णन है, जवकि भागवत मे राधा का कही पता नही है। इस प्रकार 'श्रीकृष्ण विजय' एक मौलिक रचना कही जा सकती है। भागवत पर आशिक रूप से और भी कवियो ने लिखा, पर कोई भी मालाधर वसु की तरह प्रसिद्ध नही हुआ।

चडी के वगला अनुवादको मे **भवानीप्रसाद कर** सोलहवी शताब्दी मे थे। वह जन्मान्ध थे, फिर भी आश्चर्य की वात यह है कि अनुवाद मूल के वहुत निकट है। अन्ध कवि भवानीप्रसाद कोई ऊचे दर्जे के कवि नही थे, अक्सर उनका तुक वेतुका होता था, फिर भी कही-कही उन्होने मूल सस्कृत को जिस प्रकार कायम रखा है, वह विशेष रूप से ध्यान देनेयोग्य है। सस्कृति के उन

श्लोको का, जिनमे देवी की स्तुति की गई है, उनका वे कैसे अनुवाद करते है—

जेहि देवि बुद्धि रूपे, सर्वभूते थाके,
नमस्कार नमस्कार नमस्कार ताके।
जेहि देवि दया रूपे सर्वभूते थाके
नमस्कार नमस्कार नमस्कार ताके। —इत्यादि

वाद के युग मे और वहुत-से लोगो ने चडी का अनुवाद किया, जिनमे **रूपनारायण घोष** (जन्म १५७६ ई०), **ब्रजलाल** (समय वही), **यदुनाथ** (सत्रहवी सदी का उत्तरार्द्ध) विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सवके सम्वन्ध मे एक वात यह उल्लेखयोग्य है कि यद्यपि ये लोग मुख्यत अनुवादक थे, फिर भी इनमे सर्वत्र मौलिक प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है।

वाद को चलकर शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायो का जोर हुआ और साहित्य भी इन्ही लीको पर चलने लगा। यद्यपि शक्ति-पूजा सारे भारत मे प्रचलित है, तथापि वगाल मे चडी की पूजा कुछ ऐसे रूपो मे हुई, जो अन्यत्र अप्रचलित है। दलाई चडी, लखाई चडी, बाँसुली, मनसा देवी कुछ ऐसी देविया हैं, जिनकी पूजा वगाल ही मे होती रही। मनसा देवी सर्प देवी है। इन देवियो के सवध मे जो साहित्य इस समय प्राप्त है, वह वहुत प्राचीन नही है, पर ऐसा ज्ञात होता है कि इस विषय मे वहुत प्राचीन साहित्य था, जो वाद के साहित्य के अन्तर्भुक्त कर लिया गया। श्रावण के महीने मे मनसा देवी की पूजा होती है।

मनसा मगल की कहानी का सार यह हे कि शिवजी ने मनसा देवी से यह कहा कि चम्पक नगर के चाद सौदागर तुम्हारी पूजा करे, तभी तुम लोगो से पूजा प्राप्त कर सकोगी। इसपर मनसा देवी ने पहले चाद सौदागर को समझाया, पर वह नही माना। इसके विपरीत उसने कई वार देवी पर डडा लेकर हमला कर दिया। चाद सौदागर शिव के पूजक थे, उन्होंने मनसा की पूजा को स्वीकार नही किया। इसपर देवी कुपित हो गई और अपने सापो को आज्ञा दी कि चाद सौदागर के गुआवाडी नामक नन्दन कानन से होड करनेवाले उद्यान को नष्ट कर दे। उद्यान के पहरेदार चाद सौदागर के पास गये, उन्होने आकर मन्त्र के द्वारा उद्यान को फिर ज्यो-का-त्यो वना लिया।

देवी ने देखा कि डर-धमकी से काम नही निकलेगा तो वह एक सुन्दरी के रूप मे चाद सौदागर के पास गई। चाद सौदागर उस सुन्दरी के जाल मे फस गये, पर उस सुन्दरी ने यह शर्त रखी कि जबतक स्वय महाज्ञान मत्र का त्याग-कर उसे सिखा नही देते, तबतक वह प्रसन्न नही होगी। चाद सौदागर ने उस स्त्री के जाल मे आकर मत्र-बल त्याग दिया। बस ऐसा करना था कि वह सुन्दरी अन्तर्धान हो गई। तब चाद सौदागर समझे कि सुन्दरी कौन थी। अब देवी ने उस उद्यान को फिर से नष्ट कर दिया। अबकी चाद सौदागर खुद तो कुछ कर न सके, पर उनके एक मित्र को भी महाज्ञान मत्र आता था और उन्होने आकर उद्यान को ठीक कर दिया। तब देवी ने छल और कौशल से उस मित्र को ही मार डाला। इसके बाद एक-एक करके चाद सौदागर के छहो पुत्र भी मारे गए।

चाद सौदागर की बीवी ने अपने पति को बहुत समझाया, पर चाद सौदागर नही माने। विधवा पतोहुओ के विलाप से वह बहुत परेशान हुए, अन्त मे वह समुद्र-यात्रा के लिए निकले। रास्ते मे मनसा देवी ने आधी भेजकर उनके सब जहाजो को नष्ट कर दिया, केवल एक जहाज मधुकर बचा, जिसमे चाद सौदागर सवार थे। मनसा देवी ने इसे भी डुबाने का प्रयत्न किया, पर यह पानी के नीचे जाकर भी मछली की तरह ऊपर आता रहा। मनसा देवी ने अत मे हनुमानजी की सहायता ली और जहाज को डुबा दिया। चाद सौदागर डूबने लगे, पर मनसा देवी का उद्देश्य उन्हे मारना नही, बल्कि उनसे पूजा प्राप्त करना था, क्योकि तभी दुनिया मे उनकी पूजा हो सकती थी। मनसा देवी ने अपना पद्म फेक दिया, और चाद सौदागर ने डूबते हुए उसकी तरफ हाथ बढाया, पर ज्योही उसे स्मरण हो आया कि मनसा देवी का एक नाम पद्मा भी है, त्योही उन्होने हाथ खीच लिया। इसपर मनसा देवी प्रकट हुई, और चाद सौदागर से बोली—अब तुम मान जाओ तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति भी वापस आ जाय और छहो लडके भी जीवित हो जाय। और लाभ भी होगा।

पर चाद सौदागर ने कहा कि जिन हाथो से महादेव की पूजा की है, उन हाथो से तुम्हारी पूजा करके मैं उन्हे अपवित्र नही करूगा।

मनसा देवी उन्हे मार नही सकती थी, इसलिए तीन-चार दिन सघर्ष के बाद चाद किनारे पहुच गये। चाद जिस देश मे पहुचे, वहापर उनके मित्र

चद्रकेतु का राज्य था। चाद एकदम नग-धडग थे, उन्होने श्मशान से कुछ चीथडे उठा लिये और किसी तरह लज्जा बचाकर वह चद्रकेतु के महल मे पहुचे। मित्र ने उनका स्वागत किया और कई दिनो के बाद वह खाने के लिए बैठे। पर खाने के पहले मनसा देवी पर तर्क छिड गया और चाद को मालूम हुआ कि चद्रकेतु मनसा देवी का पूजक है। इसपर उन्होने खाना खाने से इन्कार किया और मित्र के दिये हुए वस्त्र उतारकर चीथडे पहनकर निकल गये। इसके बाद वह भीख मागकर कुछ खाद्य द्रव्य प्राप्त कर नहाने के लिए नदी मे उतरे, पर इधर मनसा देवी के भेजे हुए चूहे ने सब चीजे चट कर ली थी। तब चाद सौदागर को मजबूर होकर केले के छिलके से अपनी भूख शात करनी पडी। इसके बाद वह एक ब्राह्मण के यहा नौकर हो गये। मनसा देवी ने उनके दिमाग पर असर डाला और वे खेत मे जाकर फसल काटते समय अनाज को तो फेकने लगे और जिस अश को छोडना चाहिए, उसे रखने लगे। जब ब्राह्मण ने यह देखा तो उन्हे नौकरी से निकाल दिया। इसके बाद वह जगल मे लकडी काटने चले। उन्हे लकडियो की अच्छी पहचान थी, इसलिए लकडहारे तो लकडी काटते रहे और वह चदन बटोरते रहे।

वह चदन लादकर बाजार की तरफ जा रहे थे कि मनसा देवी के इशारे से हनुमानजी ने अपने पैर की छिगुनी से उसे छू दिया, इससे वह इतना भारी हो गया कि चाद सोदागर को उसे छोडकर चल देना पडा। इसपर वह पागल-से बडबडाते हुए इधर-उधर भटकने लगे और एक ऐसी जगह पहुचे, जहा चिडीमार जाल बिछाकर चिडिया पकड रहे थे। चिडिया जाल मे आने ही वाली थी कि वह बडबडाते हुए, उछलते-कूदते, जाल के पास जा पहुचे। इससे चिडिया उड गईं और चिडीमारो ने उन्हे बहुत पीटा।

इस प्रकार अनेक कष्ट उठाने के बाद वह अपने घर पहुचे और साल भर के अन्दर उनके एक लडका हुआ, जिसका नाम लक्ष्मीदर रखा गया। ज्योतिषियो ने यह बताया कि यह लडका अपने विवाह के दिन साप से डसा जाकर मर जायगा। बेहुला से उसकी शादी तय हो गई। चाद को तो मालूम था कि क्या होनेवाला है, पर वह रानी की इच्छा का विरोध न कर सके। चाद ने लडके के लिए एक लोहे का मकान बनवाया, जिसमे साप तो क्या, एक सूई भी नहीं घुस सकती थी। जहा-तहा मोर और नेवले पहरे पर रखे गए। सर्प

विष के सब प्रतिषेधक इकट्ठे कर दिये गए। सपेरे और कनफटे भी बुलाये गए।

मनसा देवी उस लोहार से मिली, जिसने मकान बनाया था और बोली कि तुम इसमे एक बाल की सास छोड दो। लोहार बोला कि मैं तो काम कर चुका और मजदूरी भी पा चुका। पर जब मनसा देवी ने उसे धमकाया तो उसने जाकर मकान को देखने के बहाने एक छेद करके उसमे कोयला भर दिया।

जब लक्ष्मीदर अपनी दुलहिन के साथ शादी के लिए जा रहा था तो कई अशुभ लक्षण दिखाई पडे। शादी हो गई और सब लोग चले गए, लक्ष्मीदर सो गया और बेहुला पहरे पर बैठी रही। एकाएक उसने देखा कि एक साप कही से भीतर घुस आया। बेहुला ने उसे दूध पिलाने के बहाने पकड लिया। इसी प्रकार उसने कई साप पकडे। अन्त मे बेहुला को भी नींद आ गई और एक साप ने आकर लक्ष्मीदर को डस लिया। आगे कहानी यह है कि बेहुला ने मनसा देवी की पूजा करके अपने पति को बचाना चाहा, मनसा देवी पहले तो नही मानी, फिर पसीज गई, यहातक कि लक्ष्मीदर के और भाई भी जीवित हो गये। जब सातो लडके जाकर चाद सौदागर के सामने खडे हो गये और बेहुला ने जोर डाला तो चाद सौदागर भी मनसा देवी के पूजक हो गये।

इस कहानी को लेकर बगाल के बीसियो कवियो ने काव्य लिखे है। इस प्रसग के पहले कवि मैमनसिंह निवासी **हरिदत्त** बारहवी सदी मे उत्पन्न हुए थे। उनकी कविता अच्छी नही थी और वह लुप्त हो गई, पर बाद के कवियो की रचनाओ मे उनका उल्लेख मिलता है। **विजयगुप्त** ने (जन्म १४४८ ई०) जो 'मनसा-मगल' लिखा, वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'मनसा-मगल' बहुत बडी पुस्तक है, और बगाल के कई जिलो मे एक धार्मिक पुस्तक समझी जाती है।

विजयगुप्त के समसामयिक **नारायणदेव** ने भी एक 'मनसा-मगल' लिखा उनकी कविता कही-कही ऊचे दर्जे की है। **क्षेमानद** ने भी एक 'मनसा-मगल' लिखा। औरो के मुकाबले मे उनका मनसा-मगल सक्षिप्त है, और उसमे केवल पाच हजार पक्तिया है। शायद इसी कारण वह इतना प्रचारित हुआ। 'मनसा-मगल' का विषय ऐसा था, जिसमे मध्ययुग की सफल कविता के सब उपादान आ सकते थे, इसीलिए कवियो ने इसकी तरफ इतना ध्यान दिया।

मगला चडी पर भी प्रान्तीय रूप से बहुत-सी कहानिया बनी और उनपर

वगाल के वहुत से कवियो ने वहुत-से काव्य लिखे। पर मगला चडी पर जिन कवियो ने लिखा, उनमे से **कवि ककरण मुकुदराम चक्रवर्ती** बहुत ऊचे दर्जे के कवि हो गये है। चरित्र-चित्रण और कविता दोनो दृष्टियो से वे बगला-साहित्य मे अमर स्थान रखते है। अध्यापक कावेल और डा० ग्रियर्सन ने उनकी रचना की वहुत प्रशसा की है। डा० ग्रियर्सन का कहना है कि उनकी कविता हृदय से निकली हुई थी, स्कूल से निकली हुई नही, और उसमे ऊचे दर्जे की कविता और वर्णन-शक्ति पाई जाती है। अन्नदाशकर राय का कहना है कि वह पद्य मे जन्मजात कहानीकार और उच्चकोटि के व्यग्य लिखनेवाले थे, साथ ही वह एक अच्छे निरीक्षक थे। 'उनके चरित्र आज भी जीवित है, और आप कही भी वगाल के देहात मे उनसे मिल सकते है।'

मुकुन्द वर्धमान जिले के एक गाव के रहनेवाले थे। उन दिनो वहा एक ऐसा मुसलमान शासक था, जो लोगो को बहुत सताता था। उसके अत्याचारो से घबडाकर मुकुन्दराम श्रीमतखा नामक एक व्यक्ति की सहायता से अपने गाव से भाग गए। कई दिनो तक भूख-प्यास से जर्जर रहने के वाद उन्होने चडी की पूजा की। स्वप्न मे चडी ने उनको दर्शन दिया और कविता के नियम बताकर एक पुस्तक लिखने के लिए कहा। इसके वाद वह ब्राह्मण भूमि आरा मे गये, वहा राजा वाकुराराय ने उन्हे आश्रय दिया। प्रमाणो से ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होने चडी काव्य की रचना १५८९ ई० के पहले ही खत्म कर दी थी। मुकुन्दराम की रचना कितनी वडी थी, इसका अनुमान इससे लग सकता है कि उसमे पचीस हजार पक्तियो से अधिक सामग्री है। अध्यापक कावेल ने इसके काफी अश का अनुवाद अग्रेजी मे किया हे। उनकी रचना इतनी जनप्रिय इस कारण हुई कि उसमे उस युग मे फैली हुई वुराइयो के सम्वन्ध मे इगित है। एक कवि, जो अपने घर और गाव से अत्याचारो के कारण भगाया गया, उसके लिए कुछ कडुवापन स्वाभाविक था। उनकी विशेषता इस वात मे है कि वह आलकारिक ढग से वर्णन न करके जीवन से मसाला लेते है। बगाली जीवन के सभी पहलू उनकी रचना मे चित्रित है, इस दृष्टि से वह एक ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रथ भी कहा जा सकता है।

धर्म के अन्य अगो तथा विषयो को लेकर भी बहुत-सी कविताए और काव्य लिखे गए, पर उनके व्यौरे मे जाने की कोई आवश्यकता नही है। **चैतन्य**

महाप्रभु एक धार्मिक नेता थे, पर साहित्य पर उनका प्रभाव बहुत अधिक पडा। नवद्वीप बगाल मे सस्कृत साहित्य का केद्र था। वहापर बडी-बडी पाठशालाए थी, जहा दूर-दूर से लोग विद्या प्राप्त करने के लिए आते थे। चैतन्य महाप्रभु १४८६ ई० मे मीनापुर मे पैदा हुए थे। चैतन्य महाप्रभु के पूर्वपुरुष उडीसा के जाजपुर के रहनेवाले थे, पर एक राजा के अत्याचार के कारण श्री हट्ट के एक गाव मे जाकर बस गये थे। चैतन्य महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीप मे शिक्षा प्राप्त करते हुए वही बस गये, और शची देवी से उनका विवाह हुआ। चैतन्य महाप्रभु का नाम विश्वम्भर था, पर उन्हे निमाई कहकर पुकारा जाता था। उनके बडे भाई विश्वरूप शादी होने के एक रात पहले घर से भाग खडे हुए। शची देवी इस बात से इतनी दुखी हुई कि उन्होने छोटे लडके को शिक्षा देने के विरुद्ध राय दी, क्योकि उनके मतानुसार शिक्षा से वैराग्य उत्पन्न होता था। जो कुछ भी हो, यह बात नही चली और निमाई पढने बैठाये गए। वह जिस विषय को भी पढते, उसीमे पारगत हो जाते और कुछ ही वर्षों मे एक प्रख्यात विद्वान हो गये। थोडे दिनो मे उन्होने एक टोल या पाठशाला भी खोल ली। इन्ही दिनो केशव काश्मीरी नाम से एक पडित दिग्विजय करते हुए नवद्वीप आये। सभा बुलाई गई और उसमे निमाई ने केशव काश्मीरी को परास्त कर दिया। इसके बाद वह गृहस्थ हो गये, पर अधिक दिन निभ नही सके और वह सन्यासी हो गये। फिर तो वह धर्ममत प्रचार करते हुए दक्षिण भारत तक गये। ४८ वर्ष की उम्र मे उनका देहात हुआ। वैष्णव धर्म को उनसे बल मिला और वह स्वय अवतार मान लिये गए।

चैतन्य महाप्रभु उस युग मे इतने प्रसिद्ध हुए तथा उन्होने जनता को इतना प्रभावित किया कि उन्हीकी जीवनी को लेकर बगला मे एक नये ढग के साहित्य का उदय हुआ, जिसे जीवनी-साहित्य कह सकते है। **कालिदास** नामक एक शिष्य ने 'चैतन्य चरितामृत' नाम से एक ग्रथ लिखा, जो बहुत प्रसिद्ध हुआ। चैतन्य महाप्रभु-प्रचारित वैष्णव धर्म इस कारण शायद जनता मे बहुत जल्दी फैल गया कि महाप्रभु ने व्यवहार मे शूद्र और ब्राह्मण मे कोई फर्क नही रखा। उनके कई शूद्र भक्त इतने ऊचे माने गये कि ब्राह्मण भक्त सर्वदा उनके पैर छूते रहते थे। एक ब्राह्मण **नरहरि चक्रवर्ती** ने शूद्र **नरोत्तम** की जीवनी लिखी और उसमे नरोत्तम के प्रति ऐसी भक्ति दिखाई, मानो वह भी एक छोटा-मोटा चैतन्य हो।

इस प्रकार वगाल के साहित्य मे और जीवन मे एक नई धारा वही और इस धारा का वाहन सस्कृत नही, वगला वनी। चैतन्य महाप्रभु ने चडीदास और विद्यापति का प्रचार किया और इस प्रकार एक नये युग का प्रवर्तन हुआ।

महाप्रभु चैतन्य के साथ जो लोग दक्षिण की यात्रा मे गये थे, उनमे **गोविंद** नाम का एक लोहार भी था। यह अपनी स्त्री से लडकर घर से निकल गया था, इसने महाप्रभु के अनजान मे कुछ सस्मरण पद्य मे लिखे। ये सस्मरण 'कडचा' के नाम से प्रसिद्ध है और इन सस्मरणो से उस युग का बहुत सुदर वर्णन मिलता है। वैष्णव साहित्य मे इस 'कडचा' का वहुत ऊचा स्थान है। गोविंद लोहार की रचना मे कही सकीर्णता नही है, इसका कारण यह है कि महाप्रभु मे सकीर्णता नही थी। 'कडचा' से यह भी पता लगता है कि चैतन्य महाप्रभु कथित अछूतो को विशेषकर अपने माथ लेने की चेष्टा करते थे।

वृदावनदास (जन्म १५०७ ई०) ने भी चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर 'चैतन्य भागवत' लिखा। इसमे पच्चीस हजार पक्तिया है। 'चैतन्य भागवत' मे महाप्रभु को विष्णु का अवतार दिखाया गया है, और इसीलिए इसका नाम भागवत रखा गया। 'चैतन्य भागवत' मे उस युग का अच्छा वर्णन भी मिलता है।

जयानद (जन्म १५१३ ई०) ने भी चैतन्य महाप्रभु पर एक ग्रथ लिखा, जिसका नाम 'चैतन्य मगल' पडा। पर इन सवसे अधिक प्रभावशाली लेखक **कृष्णदास** (जन्म १५१७ ई०) हो गये और उनकी रचना 'चैतन्य चरितामृत' इस प्रकार की रचनाओ मे सवसे सफल प्रमाणित हुई। कृष्णदास उच्च शिक्षा-प्राप्त थे और उन्होने वृदावन की यात्रा भी की थी। जिस समय वह ७९ साल की उम्र के थे, उन्होने 'चैतन्य चरितामृत' की रचना आरम्भ की। कई लोगो ने उप-करण देकर उनकी सहायता की, फिर भी उनकी रचना के लिए सारा श्रेय उन्हीको प्राप्त है। वहुत दिनो तक वगाल के वाहर रहने के कारण उनकी भाषा मे हिंदी का पुट यथेष्ट है। सस्कृत के वडे-वडे शब्द भी उनकी रचना मे आते है, इस कारण उनकी भाषा अन्य वैष्णव कवियो की तरह प्रसाद गुण-युक्त नही है। 'चैतन्य चरितामृत' मे कुल मिलाकर १५,०५० छन्द है, और तीन खड है। चैतन्य महाप्रभु की अन्य जीवनियो के मुकावले मे इसमे अतिम

हिस्से का वर्णन विस्तृत है। वैष्णव सिद्धातो का भी इसमे लम्बा प्रकरण हे और यद्यपि इसका प्रचार आम लोगो मे है, फिर भी यह विद्वानो की चीज है।

और भी बहुत-से लोगो ने चैतन्य महाप्रभु पर लिखा, जिनमे **लोचनदास** (जन्म १५२३ ई०) का 'चैतन्य मगल' उल्लेखनीय है। चैतन्य के अन्य साथियो मे भी कुछ साहित्य तैयार हुआ। इसके अतिरिक्त वैष्णवो के सिद्धातो को लेते हुए बहुत-सी पुस्तके लिखी गई। वैष्णवो के लिए कुछ विशेष भजन भी लिखे गये, जिनको पद कहते है। यह तो हम पहले ही बता चुके है कि वैष्णवो ने चडीदास और विद्यापति के पदो को अपनाया।

चडीदास और विद्यापति के बाद सबसे बडे पदकर्ता **गोविददास** (१५३७-१६१२ ई०) माने गये है। गोविददास के पिता महाप्रभु चैतन्य के विशिष्ट साथी थे, पर वह जहा रहते थे, वहा शाक्तो का जोर था, इसलिए उन्हे गाव छोडकर अन्यत्र बसना पडा। गोविददास के सबध मे भी यह अनुश्रुति है कि वह पहले शाक्त थे, पर एक बार ४० साल की उम्र मे वह पेचिश से बुरी तरह पीडित हुए। बचने की कोई आशा नही थी, पर एक वैष्णव ने उन्हे बचा लिया, इससे वह वैष्णव बन गये। उन्होने कथित ब्रज बोली मे भी पद लिखे। ब्रज बोली को ब्रजभाषा के साथ एक करके न समझा जाय। बगाल के वैष्णवो ने ब्रज की यात्रा करते-करते एक नई बोली ही बना डाली, जिसका नाम उन्होने ब्रज बोली रखा। इस बोली का मैथिल से बहुत निकट सबध है। जो कुछ भी हो, गोविददास कविवर चडीदास और विद्यापति के बाद ही उस युग के सबसे ऊचे कवि माने जाते है। उन्होने बगला मे भी लिखा हे, पर यहा हम उनकी ब्रज-बोली की रचना का नमूना देगे—

जहा जहा अरुण चरण चलि जात, तह तह धरनि हइय मझु गात
जो सरवर पहु निति निति नाह, हल भरि सलिल होई तथि माह
जो दरपण पहु निज मुख चाह, मझु अग जोति होई तथि माह।
जो वीजन पहु वीजइ गात, मझु अंग तहि होई मृदु वात।
जंह पहु भरमइ जलधर श्याम, मझु अंग गगन होई तछु ठाम।

—'जहा-जहा उनके सुदर चरण पडते हैं, मेरा शरीर वही की जमीन हो जाय। जहा-जहा जिस सरोवर मे कृष्ण स्नान करते है, मैं उसका पानी हो जाऊ। जिस दर्पण मे वह अपना मुख देखते है, मेरा अग उसकी चमक हो जाय। जिस

पखे को वह झलते है, मैं उसकी मन्द बयार हो जाऊ । जहा-जहा जलधर श्याम मडराते है, मैं वही का आकाश बन जाऊ ।'

गोविददास के बाद **ज्ञानदास और वलरामदास** भी उल्लेखनीय है, यो तो और भी बहुत-से लोगो ने ब्रज वोली तथा वगला मे पद लिखे ।

यह स्मरण रहे कि महाप्रभु चैतन्यदेव के बाद जिस प्रकार उनके नाम से एक सम्प्रदाय वन गया, चैतन्यदेव उस प्रकार का कोई सप्रदाय बनाना नही चाहते थे । हम यहा इस झगडे मे न पडकर इतना ही बतायेगे कि वैष्णवो के उत्थान का सबसे वडा परिणाम यह हुआ कि वगला भाषा केवल लौकिक भाषा न रहकर वैष्णवो की धार्मिक भाषा हो गई । यह बात यहातक स्वीकृत हो गई कि वगला धार्मिक पुस्तको की टीकाए सस्कृत मे लिखी गई, और सस्कृत पुस्तको मे बगला पुस्तको के उद्धरण दिये गए जेसा कि **श्री दिनेश सेन** ने वताया, वगला को वही मर्यादा दी गई, जो वौद्धो के कारण पाली को प्राप्त हुई थी । कहना न होगा कि वगला की वृद्धि तथा प्रसार के लिए यह एक वहुत वडा कारण सिद्ध हुआ ।

उन्ही दिनो वगाल मे शाक्तो का भी जोर हुआ, पर उनमे चैतन्य महाप्रभु की तरह कोई नेता उत्पन्न न हो सकने के कारण साहित्य मे उनका दान अधिक न हो सका । फिर भी वैष्णवो के विरुद्ध कुछ व्यग्य कविता आदि लिखी गई ।

कुछ लोग यह दावा करते है कि महाप्रभु चैतन्य कीर्तन के प्रवर्तक है, पर यह बात सत्य नही ज्ञात होती । महाप्रभु चैतन्य के पहले ही राजा लक्ष्मणसेन के दरवार मे जयदेव के गीत कीर्तन के रूप मे गाये जाते थे । जो हो, इतना मानना कोई अत्युक्ति नही है कि चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन मे एक नई जान फूकी और उसे जनता की चीज वना दिया । सभव है, इसीसे इस अनुश्रुति का उद्भव हुआ हो कि चैतन्य महाप्रभु कीर्तन के प्रवर्तक है । वगला कविता को जन-प्रिय वनाने मे कीर्तन का वहुत वडा हाथ रहा ।

यहा यह वता दिया जाय कि उस युग मे हिंदी और वगला का अटूट सम्बन्ध था और वगला मे वरावर हिंदी शब्द भरे गये । यह तो हम पहले ही वता चुके है कि व्रज के साथ निकटता स्थापित करने के लिए वगाली कवियो ने व्रज वोली नाम की एक वोली ही वना डाली और उसमे एक अच्छे-खासे

साहित्य की सृष्टि हुई । वैष्णवो का यह युग बगाल मे अठारहवी सदी तक चलता रहा ।

इसके वाद हम यह देखते है कि वैष्णव साहित्य का उतना जोर नही रह गया, यहातक कि अठारहवी सदी के राजा कृष्णचन्द्र जो उस युग के वगला के प्रसिद्ध पृष्ठपोषक थे, वैष्णवो के कुछ विरोधी रहे । उनके समय मे कविता की बडी उन्नति हुई और अबतक कविता का उद्देश्य जहा बहुत-कुछ धार्मिक था, अब राजा तथा उसके सामतो को खुश करने का साधन बन गई । इस मोड की वात को श्री दिनेश सेन ने बडे मार्मिक शब्दो मे बताया है । उनका कहना है—'अब कवियो के लिए राजमहल के द्वार खुल गए, इसलिए वे अब इस वात की परवा नही करते थे कि स्वर्ग के द्वार उनके लिए वन्द हो गये ।' दूसरे शब्दो मे अब उस कविता की सृष्टि हुई, जिसे हम दरवारी कह सकते है ।

काव्य के विषय बहुत-कुछ वही रहे, पर उनके सबध मे वक्तव्य का ढग वदल गया । नैषध-चरित, दशकुमार-चरित, हर्ष-चरित आदि सस्कृत काव्यो को आदर्श के रूप मे माना गया और उस तरह के काव्य लिखे जाने लगे । अत्युक्तियो और अतिरजित वर्णनो की भरमार हो गई । शृगार रस की प्रधानता हो गई और नख-शिख-वर्णन यानी अतिरजित ढग से स्त्रियो के सौंदर्य का वर्णन साहित्य की विशेषता हो गई । इसी युग मे राजा कृष्णचन्द्र के **राजकवि भारतचन्द्र राय** का उद्‌भव हुआ । भारतचद्र एक बहुत शक्तिशाली कवि थे । उन्होने अपने विद्यासुदर तथा अन्य काव्यो मे शृगार रस को ही प्रधानता दी है, पर भाषा की जादूगरी, सुदर अभिव्यक्ति, चुस्त छद आदि मे जो उन्होने कमाल दिखलाया, वह वगला साहित्य मे अभूतपूर्व था । वह कोई दार्शनिक कवि नही थे, पर इसके अलावा वह भारत के किसी भी प्राचीन कवि के मुकाबले मे अच्छी तरह खडे हो सकते हैं । उन्होने सस्कृत साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन किया था और उन्होंने अपने सामने यही उद्देश्य रखकर काव्य की रचना की कि वह सस्कृत काव्यो के मुकाबले मे कुछ लिखेंगे । भारतचन्द्र को बहुत अधिक सफलता मिली । इतनी अधिक सफलता मिली कि उनके वाद के कवियो मे सैकडो ने उनका अनुकरण किया, इस प्रकार उनकी शैली को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त हुई । उनके सबध मे वाद को और लिखेंगे ।

सैयद अलावल (जन्म १६१८ ई०) भी इस युग के बहुत बडे कवि हुए ।

उन्होने मुहम्मद जायसी के पद्मावत का अनुवाद बगला मे किया। अलावल फरीदपुर-स्थित जलालपुर के नवाब के मत्री शमशेर कुतुब के पुत्र थे। जब वह नौजवान ही थे, उस समय वह अपने पिता के साथ समुद्र-यात्रा मे गये। रास्ते मे पुर्तगाली डाकुओ ने हमला किया, और उनके पिता मारे गये। वह बाल-बाल बच गये। किसी प्रकार भागकर वह अराकान पहुचे, वहा उन्हे मुस्लिम प्रधान मत्री भागन ठाकुर का आश्रय मिला। वही वह बहुत सालो तक रहे और उन्होने अपने आश्रयदाता की आज्ञा के अनुसार 'पद्मावत' का बगला मे अनुवाद किया। जब यह अनुवाद हो गया तो उन्हे दो फारसी पुस्तको 'सैफुल्मुक' और 'बदी उज्जमाण' के अनुवाद की आज्ञा मिली, पर वह कुछ ही अनुवाद कर पाये थे कि उनके आश्रयदाता की मृत्यु हो गई। इसके बाद उन्होने लिखना छोड दिया, पर राजनैतिक उथल-पुथल मे किसीके कहने पर वह जेल भेज दिये गए। यह १६५८ ई० की घटना है। बडी मुश्किल से वह जेल से छूटे। एक मुस्लिम सामन्त ने फिर उनमे दिलचस्पी ली और उन्होने उन दो फारसी पुस्तको का अनुवाद समाप्त कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होने राधाकृष्ण तथा सती मैना आदि विषयो पर बहुत-सी कविताए लिखी।

अलावल ने मुख्यत अनुवाद के क्षेत्र मे काम किया, पर यह कहा जाता है कि उन्होने जिन काव्यो का अनुवाद किया, वे उन्हे मूल से सुदर बनाने मे समर्थ हुए। अलावल भी भारतचद्र राय के ढर्रे पर चले और यद्यपि वह भारतचद्र से कुछ छोटे माने गये हैं, फिर भी वह उस युग के बगला कवियो मे सर्वश्रेष्ठ है। यह एक बहुत ही दिलचस्प बात है कि फारसी के विद्वान् होते हुए भी उन्होने अपनी बगला रचनाओ मे सस्कृत शब्द बहुत अधिक भरे है। भारतचद्र और अलावल इस प्रकार बगला मे एक नये युग की सूचना करते है। अलावल की विशेषताओ मे एक यह भी है कि वह जब किसी हिंदू देवता-देवी या त्योहार अथवा रिवाज का वर्णन करते है, तो वह उसके ब्योरे मे गलती नही करते।

अलावल की रचनाए चटगाव और अराकान के इलाको मे उर्दू लिपि मे प्राप्त हुई है। सम-सामयिक हिंदुओ मे उनका प्रचार नही था, यद्यपि विषय आदि की दृष्टि से उनके साहित्य को हिंदू साहित्य ही कहा जायगा। पद्मावत की कथा हिंदी-भाषियो के लिए सुपरिचित है। यह रानी पद्मावती या पद्मिनी की गौरव-गाथा है। एक मुसलमान ने इस कहानी को मूल मे लिखा, दूसरे मुसलमान ने

उसके अनुवाद के लिए तीसरे मुसलमान से कहा, मुसलमानो ने ही इस रचना को उर्दू लिपि मे लिखकर उसको सुरक्षित रखा। इससे ज्ञात होता है कि सारे भारत मे, जायस से लेकर अराकान तक इतिहास की घटनाओ को उनके गुण-दोष के कारण सराहा या बुरा-भला कहा जाता था। अलाउद्दीन खिलजी मुसलमान था, इस नाते उसने जो कुछ भी किया, वह सारे मुसलमानो के लिए पवित्र है, इस प्रकार की धारणा उस युग मे नही थी, यद्यपि मुगलो का राज्य था। बाद को चलकर किन-किन कारणो से इस प्रकार की धारणा लुप्त हो गई, यह खोज का विषय है।

हम पहले ही बता चुके है कि भारतचद्र ने विद्यासुदर पर एक बहुत बढिया काव्य लिखा था। भारतचद्र का जन्म १७२२ मे हुगली जिले मे हुआ। उनके पिता एक सामत थे और उन्हे राजा की उपाधि मिली हुई थी, पर वह वर्दवान के राजा से किसी बात पर लड गये और उसीमे उनका सर्वनाश हो गया।

भारतचद्र की कविता मे ये सभी बाते है, जिन्हे कविता की बहिरग परीक्षा करनेवाले तथा आलकारिकगण पसद करते है। विद्यासुदर का रचना-काल १७५७ यानी प्लासी के युद्ध के कुछ साल पहले माना गया है। यह मजे की बात है कि यद्यपि भारतचद्र ने अग्रेजो के आने के पहले लिखा, फिर भी उनकी भाषा करीब-करीब आधुनिक है। भारतचद्र राय के समय मे ही बगला भाषा का एकरूप बन चुका था, और यह कहा जा सकता है कि बाद को चल-कर मधुसूदन और बकिम के जमाने मे यही भाषा साहित्य की भाषा बनी। भारतचद्र की कविता देव और बिहारी के ढग की है और उनकी कविता मुख्यत श्रृगार रस की है। वह भाषा मे पच्चीकारी को बहुत दूर तक ले गये है। उनकी कविता अपने जमाने मे बहुत प्रसिद्ध हुई और बाद को भी इसका बहुत प्रचलन रहा। वैष्णव तथा अन्य पौराणिक विषयो पर लिखनेवालो की कविता ऊपर से आध्यात्मिक और नैतिक थी, भले ही भीतर से वह एक हद तक ऐहिक हो, पर भारतचद्र की विद्यासुदर आदि रचनाए सपूर्ण रूप से ऐहिक थी, और वह भी बिल्कुल शिश्नोदर-परायणता के अर्थ मे। सामतो और राजाओ के दरबार के लिए यह उपयुक्त कविता थी।

सक्षेप मे, विद्यासुदर काव्य की कहानी इस प्रकार है। काजी या काजीवरम् के राजा गुणसिधु के पुत्र सुदर ने यह सुना कि वर्द्धमान के राजा वीरसिह की

कन्या विद्या वहुत सुदरी है। उसकी ख्याति केवल रूप के सबध मे नही थी, वल्कि उसकी विद्या की ख्याति रूप से भी अधिक थी। विद्या की तरफ से यह घोषणा हुई थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ मे परास्त करेगा, मैं उसीसे शादी करूगी। सुदर ने अपने पिता से कुछ नही कहा और घोडे पर चढकर राजा वीरसिंह की राजधानी मे पहुच गया। सुदर ने अपने घोडे को एक वाग के पेड से वाध दिया और इधर-उधर घूमने लगा कि आगे क्या किया जाय। इतने मे राजा की मालिन हीरा फूल चुनती हुई उधर आ पहुची, और सुदर को देखकर समझ गई कि यह अवश्य कोई विशेष व्यक्ति है। सुदर तो इस तलाश मे था ही कि कोई उसे ठहरने को जगह दे। हीरा से उसने यह बताया कि वह एक पर्यटक है और कही ठहरना चाहता है। हीरा उसे ठहराने के लिए राजी हो गई।

सुदर को यह जानकर खुशी हुई कि हीरा का काम नित्य प्रात काल विद्या को फूल और माला पहुचाना है। सुदर ने कहा कि जब मैं तुम्हारे यहा हू तो मुझे भी कुछ करना चाहिए, और मैं एक माला वनाता हू, जिसे तुम जाकर राजकुमारी को दे देना। सुदर एक चतुर मालाकार था और उसने माला के रूप मे एक सस्कृत का श्लोक तैयार कर दिया। हीरा अगले दिन कुछ देर से पहुची तो राजकुमारी वहुत विगडी। हीरा ने कहा कि रात भर मै तुम्हारे लिए एक विशेष माला वनाती रही, जिसके कारण देर हो गई। राजकुमारी ने पूछा कि वह माला कहा है। तव हीरा ने माला आगे कर दी। राजकुमारी उस माला मे गूथे हुए श्लोक को पढकर यह समझ गई कि यह माला इसके द्वारा वनाई नही हो सकती। हीरा कसमे खाती रही कि माला उसीकी वनाई हुई है, पर अत तक वह राजकुमारी की जिरह के सामने ठहर नही सकी, और उसे असली वात वतानी पडी। तव राजकुमारी ने मालिन से कहा कि मुझे किसी तरह राजकुमार का दर्शन कराओ, पर यह काम वहुत कठिन था, क्योकि राजा के अत पुर मे न तो कोई आ सकता था और न वहा से कोई जा सकता था।

आखिर यह निश्चय हुआ कि इसके लिए किसी कौशल का प्रयोग किया जाय। हीरा के कथनानुसार सुदर ने जटा और दाढी लगाकर एक साधु का रूप धारण किया और राजा वीरसिंह से जाकर वोला कि मैं विद्या से शास्त्रार्थ करना चाहता हू। राजा को यह वात माननी पडी, क्योकि विद्या की शर्त यह थी कि कोई भी व्यक्ति आकर शास्त्रार्थ कर सकता था। साधु ने यह भी कहा

कि वह और शास्त्रार्थ करनेवालो की तरह परदे के पीछे से शास्त्रार्थ नही करेगा, बल्कि आमने-सामने बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहेगा। विद्या बडी विपत्ति मे पड गई, क्योकि वह प्रेमिका होने के अतिरिक्त एक विदुषी भी थी और प्रेम के लिए ही सही, शास्त्रार्थ मे हारना नही चाहती थी, लेकिन इस मामले मे हराने से भी काम नही बनता था। इसलिए वह शास्त्रार्थ की तारीख को टालती रही।

सुदर इससे निराश न हुआ और उसने काली की पूजा शुरु की। काली ने प्रसन्न होकर उसे एक सीक-सी दे दी, जिससे सुदर पत्थर भी खोद सकता था। इस सीक के सहारे सुदर ने विद्या के कमरे तक एक सुरग बनाई और वह विद्या के सामने पहुच गया। विद्या की सखिया उसे देखकर घबडाई पर जब सुदर ने कहा कि काली की कृपा से सीक मिली है तो उन लोगो ने इस रहस्य को छिपा रखना मजूर किया।

पर सारी आफत तो विद्या को लेकर आई। विद्या को अपने ज्ञान का घमड था, वह बोली—"मैं शादी तो उसीसे करूगी, जो मुझे शास्त्रार्थ मे पराजित करे।"

सुदर इसपर राजी हो गया और काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि विषयो पर शास्त्रार्थ हुआ। सुदर ने प्रत्येक विषय मे अपनी प्रेमिका को हरा दिया, पर इससे जहा शास्त्रार्थ मे उसकी जीत होती गई, वहा उसका हृदय हारता ही चला गया। अत मे परिस्थिति यह थी कि शास्त्रार्थ मे तो सुदर विजयी था, पर विद्या की विजय उससे कही सार्थक और विस्तृत थी।

अब कोई बाधा नही रही और दोनो मे गधर्व-विवाह हो गया। कानोकान किसी को खबर नही हुई और सुदर उस सुरग के जरिये से नित्य विद्या से मिलता रहा। यहापर भारतचद्र ने प्रेम-क्रीडाओ का बडा दीर्घ वर्णन किया है, यहातक कि विद्या को गर्भ रह गया और सखिया बहुत डर गई। उन लोगो ने जाकर रानी से गर्भ रहने का हाल तो बता दिया, पर और कुछ नही बताया। रानी क्रोध मे विद्या के पास पहुची और उसने राजकुमारी को धमकाया। पर कोई नतीजा नही हुआ। तब रानी क्रोध मे राजा के पास गई और उन्हे तरह-तरह से ताव दिलाने लगी, बोली—"जिसके घर मे ऐसी बात हो सकती है, वह राजा कैसा है ?"

राजा ने शहर कोतवाल को बुलाया और कहा कि यदि तुम चोर को नही पकड पाये तो तुम्हे बाल-बच्चो के साथ जीवित समाधि दी जायगी। कोतवाल ने सात दिन का समय मागा और वह उसी समय से खोज करने लग गया। विद्या को उसके कमरे से हटा दिया गया। सिपाहियो को जल्दी ही उस सुरग का पता लग गया, पर कोई भी सिपाही उसके अदर दूर तक न जा सका। अत मे कालकेतु नामक एक कर्मचारी ने यह सुझाया कि हम लोग स्त्रियो के भेष मे यही बने रहे, बहुत सभव है कि चोर खुद ही यहा आये। तदनुसार एक कर्मचारी विद्या बनकर बैठ गया और बारह अन्य कर्मचारी उसकी सखिया बनकर बैठ गये। इसके अतिरिक्त घर-घर मे कर्मचारियो की स्त्रिया तया अन्य स्त्रिया चोर की तलाश मे घूमने लगी।

विद्या को कोई मौका ही नही मिला कि सुदर को खबर भेजे। सुदर को केवल इतना पता लगा कि एक चोर की तलाश हो रही है। सुदर अपने नित्य नियम के अनुसार सध्या के बाद विद्या के कमरे मे पहुच गया। कर्मचारियो ने कमरे मे रोशनी इतनी धीमी कर दी थी कि चेहरा पहचान मे न आवे। सुदर ने विद्या के भेष मे बैठे हुए कर्मचारी की ओर हाथ बढाया, पर कर्मचारी ने मुह फेर लिया और कपडे से मुह ढक लिया। सुन्दर ने समझा कि देवी रूठी हुई है, इसलिए उसने आरजू-मिन्नत शुरू की। यहापर काव्य मे लबा वर्णन आता है।

अत मे सुदर पकड लिया गया और कर्मचारी अब हिम्मत करके सुरग के अदर से हीरा के घर पहुच गये। हीरा ने बहुतेरा कहा कि उसे कुछ नही मालूम, पर उसे जजीरो मे बाधकर राजा के सामने हाजिर किया गया। सुदर तो पहले ही बाधकर हाजिर किया जा चुका था। राजा ने सुदर से बहुत पूछा कि तुम कहा के रहनेवाले हो, कौन हो, पर सुदर ने इसी प्रकार की बाते कही कि मेरा नाम विद्यापति है, मेरा घर विद्यानगर है इत्यादि-इत्यादि। सुदर ने स्वरचित पचास श्लोक भी सुनाये, जो 'चोर पचाशत' के नाम से बगला काव्य के ही अन्तर्गत है। इन श्लोको के दो-दो अर्थ है। एक अर्थ मे तो वे काली के स्तोत्र के रूप मे है।

राजा सुदर की विद्वत्ता से प्रभावित हुए, पर कुल-शील का पता न होने के कारण उन्होने कहा—इसे मेरे सामने से वधस्थान मे ले जाओ।

जव सुदर वधस्थान मे ले जाया जाने लगा तो नागरिको की ओर से लोग यही कहने लगे कि सुदर विद्या का उपयुक्त पति है। सुदर ने जब देखा कि अत निकट है तो उसने काली की सहायता मागी। काली ने भूतो और पिशाचो की एक सेना भेजी, जिसने राजा की सेना को हरा दिया।

दरबार मे एक शुक पक्षी था, उसने राजा को बतलाया कि सुदर असल मे कौन है। राजा यह सुनकर वधस्थान की ओर दौडे और उन्होने जाकर सुदर को गले से लगा लिया। विवाह तो पहले ही हो चुका था, अब सार्वजनिक उत्सव हुआ। हीरा की जजीरे खोल दी गई और उसे पुरस्कृत किया गया।

यही विद्यासागर की कहानी है। कहना न होगा कि इसमे कवि को अपने जौहर दिखाने का बहुत मौका था। इस सबध मे यह भी बता दिया जाय कि भारतचद्र इस विषय पर लिखनेवाले पहले कवि नही थे। और भी बहुत-से कवि इस विषय पर लिख चुके थे। ऐसा मालूम होता है कि वर्द्धमान के राजा के साथ यह कहानी पहले जुडी हुई नही थी। यहा उन सारे लेखको के वर्णन की आवश्यकता नही, जिन्होने इस विषय पर लिखा। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि भारतचद ने इस विषय को लेकर सबसे अच्छी रचना प्रस्तुत की। पहले ही हम बता चुके कि उनकी भाषा और शैली एक हद तक आधुनिक कही जा सकती है। उनके वर्णन बहुत चुभनेवाले और भाषा बडी सरस है।

भारतचद्र से कुछ पहले **रामप्रसाद** नामक एक कवि हो गये, जो काली-सम्बन्धी कविताए लिखने मे बहुत प्रसिद्ध हो गये। यद्यपि उनकी कविताए भक्ति-सम्बधी है, तथापि उनमे ऐसी-ऐसी उपमाए आदि आती है, जिन्हे गाव की जनता बहुत आसानी से समझ लेती है। यही शायद रामप्रसाद की ख्याति और जन-प्रियता का कारण है।

जैसे राजा कृष्णचद्र ने अपने दरबार मे कवियो को आश्रय दिया, उसी तरह से उनके सम-सामयिक विक्रमपुर के राजा राजवल्लभ साहित्य-रसिक थे। कृष्णचद्र और राजा राजवल्लभ मे होड-सी चलती थी कि कौन किससे आगे निकल जाय। राजा कृष्णचद्र ने शिवनिवास नाम से एक नगर स्थापित किया, तो राजवल्लभ ने राजनगर नाम से उससे बढकर नगर स्थापित किया। राजवल्लभ ने कई इमारते भी बनवाई। उन्होने साहित्य-रसिको को अपने यहा स्थान भी दिया, पर भारतचद्र की तरह कवि मिलना मुश्किल था, फिर भी **जयनारायण**

और **अन्नदामयी** की तरह कवि और कवयित्री को प्रोत्साहित करने का श्रेय राजवल्लभ को प्राप्त हुआ। जयनारायण अच्छे कवि थे, पर उनकी कविताओ मे वह बात नही है, जो भारतचद्र की कविताओ मे है। अन्नदामयी नामक कवयित्री भी जयनारायण की भानजी थी। कहा जाता है कि हरिलीला नामक पुस्तक जयनारायण और अन्नदामयी की सयुक्त रचना है। अन्नदामयी विदुषी थी और सस्कृत मे उनका ज्ञान इतना अधिक था कि एक बार जब राजा राजवल्लभ के दरबार मे अग्निष्टोम यज्ञ के सम्बन्ध मे किसी बहुत ही जटिल नुक्ते पर बातचीत हो रही थी तो अन्नदामयी ने वैदिक साहित्य से उद्धरण देकर सारे मामले को सुलझा दिया। अन्नदामयी की रचनाओ से भी ज्ञात होता है कि वह सस्कृत की विदुषी थी। एक कविता देखिये—

कतो चारु वक्त्रा, सुवेषा सुकेशा
सुनासा, सुहासा, सुवासा, सुभाषा
कतो क्षीणमध्या, सुभगा सुयोग्या,
रतिज्ञा, वशिज्ञा, मनोज्ञा, मदज्ञा
कोनो कामिनी कु डले गडघृष्टा,
प्रहृष्टा, सचेष्टा, केह ओष्ठ दष्टा इत्यादि।

कहना न होगा इसमे 'कतो' और 'कोनो' के अतिरिक्त बाकी सभी सस्कृत है। यह एक विवाह-मण्डप का वर्णन है, जहा तरह-तरह की स्त्रिया मौजूद है। उस युग के लोगो ने इस कविता मे रस लिया, इसके प्रमाण मौजूद है।

भारतचद्र को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, इसके कारण बहुत-से उदीयमान कवि उस ओर झुके और शृगार रस के काव्यो की बाढ-सी आ गई। इनमे से अधिकतर पुस्तके अब लुप्त हैं, कुछ तो इस कारण लुप्त है कि अश्लीलता के कारण उन्हे जब्त कर लिया गया। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे चद्रकात, कामिनीकुमार और नयनतारा के उपाख्यानो का बहुत अधिक प्रचार था, इसमे सन्देह नही। श्री दिनेश सेन ने लिखा है कि इन काव्यो के रचयिता भारतचन्द्र, जयनारायण तथा अन्नदामयी की तरह विद्वान नही थे, पर वे शृगाररसात्मक रचना को और एक कदम आगे ले गये। यह भी बता दिया जाय कि इन काव्यो के नायक किस प्रकार के होते थे। उल्लिखित श्री दिनेश सेन के अनुसार लार्ड बायरन-कल्पित डान जुआन पात्र को किसी मुस्लिम नवाब के हरम मे कुदा

दिया जाय तो उससे जो कहानी बनती है, वही कहानी इन लोगो की उपजीव्य थी।

चन्द्रकात सचमुच ऐसा ही पात्र था। उसने एक राजा के अन्त.पुर मे जो-जो कारनामे किये हैं, वे इसी प्रकार के है। यद्यपि इस प्रकार की रचना से जहा एक तरफ उस समय के पढे-लिखे वर्ग की रुचि का परिचय प्राप्त होता है, वहीपर हमे यह भी मानना पडेगा कि इन पुस्तको के प्रचार ने बगला साहित्य को और एक कदम आगे बढाया और बगला के गले मे एक तरफ सस्कृत और दूसरी तरफ फारसी का जो फदा था, वह बहुत-कुछ ढीला हुआ। इन कवियो का उद्देश्य अपने पाठको का मनोरजन था। इस कारण वे अधिक-से-अधिक जनता मे पहुचना चाहते थे। वे केवल सस्कृत तथा फारसी मे रस लेने-वाले लोगो के लिए लिखना नही चाहते थे। वे बगला जाननेवालो के ही लिए लिख रहे थे। इस प्रकार उनकी रचना मे बडे-बडे सस्कृत शब्द और वाक्य नही मिलते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इन लोगो का साहित्य अतर्गत वस्तु की दृष्टि से जनता का विरोधी पडता था, फिर भी उनका उद्देश्य विस्तृततर जनता मे पहुचना था, इस कारण उन्होने ऐसी भाषा ग्रहण की, जो जनता की समझ मे अच्छी तरह आ सकती थी।

इस युग मे और जितने कवि हुए, उनका झुकाव भी अलकार-बहुलता तथा शृगार रस की ओर था। **गिरिधर** नामक एक कवि ने इसी युग मे 'गीत गोविद' का बगला अनुवाद किया। यो तो इसके पहले ही 'गीत गोविंद' का पयार छद मे अनुवाद हो चुका था, पर गिरिधर ने जहातक हो सका 'गीत गोविद' के मौलिक नृत्यशील छदो मे अनुवाद किया। यही नही, उन्होने मूल सस्कृत शब्दो को भी कायम रक्खा।

> **यमुना तीरे मद बहे मारुत, तहाते बोसिया युवराज,**
> **करे अभिसार, करि रति रस, मदन मनोहर वेशे।**
> **गगने बिलबन ना कर नितम्बिनी, चल-चल प्राणनाथ पासे**
> **तुआ निज नाम श्याम करि सकेत, बजाय मुरली मृदु भाषे।**
> **तुआ तनु परशि धूलि रेणु उडत, ताहे पुनः पुनः प्रशसे।**
>
> —इत्यादि

ऊपर जिन कवियो और काव्यो का उल्लेख किया गया है, वे कवि दरबारी

या कम-से-कभ शहरी थे, पर देहातो के भी अपने-अपने कवि थे, जो अपने यहा की जनता को काव्य रस पिलाया करते थे। ये कवि अपने श्रोताओ को आनद देने मे ही अपनी पूरी सार्थकता मानते थे। वे इस बात की परवा नही करते थे कि उनको ख्याति प्राप्त होगी या नही। अक्सर तो कवियो के नाम भी श्रोताओ तक नही पहुचते थे।

इन कवियो मे एक तरह के कवि होते थे, जो कविवालो के रूप मे सगठित थे। कविवालो की कविताओ मे कृष्ण के गुण गाये गये है। कविवालो के दल मे स्त्रिया तथा पुरुष दोनो होते थे। वे खडे हो करके गाया करते थे, इसलिए इनको दाडा कवि या खडे कवि भी कहते थे। राधाकृष्ण के अतिरिक्त शिव और पार्वती पर भी कविवाले रचनाए तैयार करते थे। ऐसा मालूम होता है कि बहुत दिनो तक कविवालो के दल बगाल के देहातो का दौरा करते रहे।

बाद को चलकर कविवालो मे नये उपादान की सृष्टि हुई, जिससे वे और भी जनप्रिय हो गये। ऐसा मालूम होता है कि किसी स्थान पर कविवालो की एक टोली के साथ दूसरी टोली की मुठभेड हो गई। यह मुठभेड हाथापाई के रूप मे नही, बल्कि कविता की लडाई के रूप मे हुई। इससे लोगो को बडा रस आया और तब से कविवालो का कवितामय दगल जनता के मनोरजन का एक बहुत बडा साधन हो गया।

कविवालो मे कई आशु कवि होते थे, और खडे-खडे जिस विषय पर जरूरत होती, उसपर कविता बना डालते थे। पचास साल पहले तक बगाल के देहातो और कस्बो मे कविवालो का जोर था और छोटे-बडे सब उनका तमाशा देखने जाते थे। साहित्य इनसे कहातक आगे बढा, इसमे सदेह है, पर साहित्य के वाहन भाषा के लिए कविवालो के भ्रमणो के द्वारा सारे बगाल मे एक तरह की भाषा का प्रचलन होने मे सहायता मिली।

सोलहवी सदी मे एक कविवाले का पता मिलता है, जो जाति से मोची थे। उनका नाम रघु था। ऐसा मालूम होता है कि पहले केवल कथित छोटी जाति-वाले ही इसमे दिलचस्पी लेते थे, पर बाद को इनके द्वारा किये गए कार्यो को इतनी सफलता मिली कि बडी जातिवाले इसकी ओर आकृष्ट हुए। ये कविवाले देहात के ही लोग थे, अतएव उनकी रचनाओ मे देहात की आत्मा सामने आ जाती है। देहात की छोटी-छोटी बाते इनकी रचनाओ मे प्रतिफलित और प्रति-

विम्बित दिखाई देती है। **राम वसु** कविवाले की एक रचना मे स्त्री अपनी सखी मे पति के प्रवास जाने का वर्णन करती है—"मन की वेदना मन मे ही रह गई। जब वह प्रवास मे जा रहे थे तो मैं बहुत-सी बाते कहना चाहती थी, पर शरम के कारण मर्म की वात कह न सकी। यदि मैं नारी होकर उनकी खुशामद करती तो सब लोग कहते कि यह निर्लज्ज है। विधाता को धिक्कार है कि उसने मुझे नारी का जन्म दिया। एक तो मेरा यौवनकाल है, उसपर वह वसन्त मे गये।' इत्यादि

इसमे कोई विचित्रता नही है, पर असली वात है भाषा की, जो विल्कुल आधुनिक है। सोलहवी सदी के मध्य के **रासु नरसिंह** की रचना मे भी इसी प्रकार जो भाषा व्यवहृत हुई है, वह आधुनिक वगला के यथेष्ट निकट है। उनकी एक कविता का अश यो है—

सखि ए सकल प्रेम प्रेमनाथ,
इहा ते मजिये नाहि सुखेर उदय

और लीजिये—

कह सखि किछु प्रेमेर इ कथा, घुचाव आमार मनेर व्यथा,
करिले श्रवण, हय दिव्य ज्ञान, हेन प्रेम धन उपजे कोथा।

श्री दिनेश सेन ने कुछ प्रसिद्ध कविवालो के नाम गिनाये हैं। रघु के नाम का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। वह जाति से मोची थे और कलकत्ता के उसपार सलकिया के रहनेवाले थे। **रासुनरसिंह, गोजला गुई, लालु नदलाल** उनके समसामयिक थे। इसके वाद **हरू ठाकुर** या **हरेकृष्ण दीर्घागी** का नाम उल्लेखनीय है। उनका जन्म कलकत्ता के शिमला नामक स्थान मे १७३८ मे हुआ था। उन्होने भी प्रेम के सबध मे गीत गाये, पर कई वार वह प्रेम को ऐहिक जगत से परे ले जाने की चेष्टा भी करते रहे। यद्यपि हरू ठाकुर एक प्रसिद्ध कविवाले हो गये, फिर भी वह पेशेवर कविवाले नही थे। कहा जाता है कि एक वार राजा नवकृष्ण ने खुश होकर उनको एक शाल भेट कर दिया। इसपर उन्होने फौरन यह शाल अपने साथ के एक कथित नीच जातिवाले ढोलकची को दे दिया। १८१३ मे हरू ठाकुर की मृत्यु हुई।

राम वसु के नाम का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वह विरह-वर्णन मे दक्ष माने जाते थे। **नित्यानद वैरागी** भी एक सफल कविवाले थे।

उनका जन्म १७२१ मे हुआ, वह १८११ मे परलोक सिधार गये। उनके बाद भी कई प्रसिद्ध कविवाले हो गये, पर उनके नामो को गिनाने से कोई लाभ नही।

कविवालो मे **ऐंटनी** नाम से एक पुर्तगाली बहुत प्रसिद्ध हो गये। पुर्तगाली होने पर भी वह तथा उनके भाई **केली** बगाल मे ही बस गये थे। उन लोगो ने व्यापार से बहुत धन कमाया था। ऐंटनी चदननगर की एक विधवा ब्राह्मणी के प्रेम मे पड गये और वे दोनो एक साथ रहने लगे। यद्यपि इन दोनो का विवाह नही हुआ, फिर भी वे पति-पत्नी के रूप मे सम्मानजनक जीवन व्यतीत करते थे। ऐंटनी ने ब्राह्मणी के धार्मिक जीवन मे कोई बाधा नही डाली और ब्राह्मणी हिंदू आचार से ही रहती रही। ऐंटनी के घर मे सारे हिंदू त्योहार मनाये जाते थे, यहातक कि ब्राह्मणी के अनुरोध पर ऐंटनी ने बऊ बाजार मे एक काली मदिर का निर्माण किया। यह काली फिरगी काली कहलाती हैं।

ऐंटनी को बगला भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान हो गया था। उनके घर मे हिंदू त्योहारा के अवसर पर कविवालो की लडाई हुआ करती थी। ऐंटनी इन लडाइयो मे इतना रस लेते थे कि उन्होने स्वय कविवालो का एक दल बना लिया और एक आशु कवि गोरक्षनाथ को अपने दल मे नौकर रख लिया। थोडे दिन मे ऐंटनी ने यह देखा कि वह स्वय गोरक्षनाथ से अच्छी कविता कह लेते हैं इसलिए उन्होने गोरक्षनाथ को अवकाश दे दिया, और वह स्वय कविवाले बनकर रगमच पर उतरे। ऐसे अवसरो पर वह फिरगियो के कपडे छोडकर उस जमाने के बगाली लिबास धोती-चादर मे हो जाते थे। ऐंटनी इतने जनप्रिय हुए कि उनके सामने दूसरे कविवाले ठहर नही पाये। ईसाई बने रहने पर भी ऐंटनी कविवालो के ढग पर काली की स्तुति से मगलाचरण करते थे।

भजन साधन जानि ने मा, निजे तो फिरगी,
यदि दया करे कृपा कर हे शिवे मातगी।

—'मैं भजन पूजन-नही जानता, मैं फिरगी हू, फिर भी हे शिवे मातगी, मुझपर दया करो।'

कविवालो की लडाई मे भद्दी भाषा का व्यवहार निषिद्ध नही था, व्यक्तिगत मामले भी उठाये जा सकते थे। एक बार दूसरे कविवाले **ठाकुरसिंह** ने ऐंटनी को इस प्रकार सम्बोधित किया—'सुनो-सुनो जी ऐंटनी, मै तुमसे एक बात जानना चाहता हू, तुम्हारे बदन पर यह धोती-चादर क्यो है, कुर्ता कहा गया ?'

सुनो हे ऐंटनी, आमेय एकटि कथा जानते चाई,
एसे ए देशे वेशे, तोमार गाये कैनी कुर्ति नाई।

इसके उत्तर मे ऐटनी ने सीधे गाली देते हुए कहा—

ए इ बागलाय बंगालीर वेशे आनदे आछि,
हये ठाकरेसिएर बापेर जामाइ कुर्ती टोपी छेड़ेछि।

—'बगाल मे मैं बगाली कपडो मे आनद से हू, ठाकुरसिह के बाप का दामाद बनकर मैंने कुर्ता-टोपी छोड दी।'

दूसरे शब्दो मे ऐटनी ने अपनेको पूछनेवाले का वहनोई बतलाया। इस पर जो मनोरजन हुआ होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है। हो सकता है कि इस प्रकार कविवाले जो कुछ देते थे, उसे साहित्य या कला की श्रेणी मे मुश्किल से रखा जा सकता है, पर जब साहित्य और कला अपना काम नही कर रहे थे, तो ये कविवाले देहातो मे कम-से-कम एक प्रकार के सामूहिक जीवन को कायम रख रहे थे। इस सबध मे और एक बात ध्यान योग्य है कि सामतो और छोटे राजाओ के दरबार मे उन दिनो जिस प्रकार शृगार रसात्मक अश्लील कविताओ का बोलबाला हो रहा था, उनके मुकाबले मे क्या कविवालो की कविताए बहुत निकृष्ट थी ? हम यहापर निकृष्ट शब्द को कला या साहित्य की दृष्टि से प्रयोग नही कर रहे है, यहा तो नैतिक सतह पर बात कही जा रही है। इसमे सदेह नही कि सामन्तो और राजाओ के दरबारो मे जो कविताए पढी जाती थी, उनमे कला की दृष्टि से उत्कृष्टता पाई जाती थी, पर एक तो वे अधिकाशत चर्वित चर्वण होती थी और दूसरे जबकि वे ऐसी नही होती थी, उनमे कोई उदात्त उद्देश्य नही होता था।

हम आगे कविवालो की रचनाओ के कुछ और नमूने देगे, जिससे कि यह ज्ञात हो जाय कि कविवाले उच्चतर सतह पर भी जाते थे। पहले एक कविता की दो पक्तिया उद्धृत की गई है, उसीकी पूरी कविता लीजिये—

सखि ए सकल प्रेम प्रेम नाय
इहा ते मजिये नाहि सुखेर उदय
सुहृदभजन, लोकरजन, कलंकभाजन होते हय,
ऐमन पिरिति कोरि, जाते तोर, हृदि के ऐहि के आर पारत्रिके।
श्रीनंदनदन दु:खभजन, सदा राखि मन तार पाय

अमिय त्यजे गरल भजे उपजे कि सुख,
कलक घोषण, जगते मरण हते अधिक

—'सखी, इस प्रकार का प्रेम नही कहलाता। इसमे फसकर सुख नही मिलता। दोस्ती टूट जाती है, लोग बुरा-भला कहते हैं, कलक लगता है। ऐसा प्रेम क्यो न किया जाय, जिनमे इस लोक और परलोक दोनो मे मजे हो। श्रीनदनदन दु खभजन हैं, हमेशा उनके चरणो मे चित्त रखे। अमृत छोडकर हलाहल को अपनाने से भला क्या सुख मिलेगा ? और कलक का लगना तो मरने मे भी वढकर है।'

क्या यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कविता किसी प्रकार से अन्य कवियो की आध्यात्मिक कविता से निकृष्ट है ? इश्कमिजाजी और इश्कहकीकी का कैसा सुदर वर्णन है। केवल कविवालो की रचना है, इसलिए इसे निकृष्ट तो नही कहा जा सकता, वल्कि इसकी उत्कृष्टता इस वात मे है कि यह जनता की समझ मे अधिक शीघ्र आयेगी। हम यहापर उन झगडो मे नही पडते कि कथित इश्कहकीकी उसी प्रकार मे जनता के लिए अफीम है, जिस प्रकार मे अश्लीलता या इतरता है। हम तो यहापर कविवालो की कविता की तुलना उन कवियो की कविता से कर रहे हैं, जो भद्र समझे जाते है।

गतानुगतिक ढग मे ये कविवाले प्रकृति-वर्णन मे भी भद्र कवियो से पीछे नही थे। एक उदाहरण लीजिये—

सुधीर धारे वहिछे एई घोरतरा रजनी,
ए समये प्राण सखी रे, कोथाय गुण मणि, घन गरजे घन सुनि,
ए मयूर मयूरी हरषित, हेरि चातक चातकिनी।
ए कदम्व केतकी चम्पक जाति सेउति शेफालिके,
प्राणे ते प्राणे ते मोह जन्माय प्राणनाथे गृहे ना देखे
विद्युत खद्योत दिवा ज्योतिमय प्रकाशे दिन मणि
प्रिये मुखे मुख दिये सारि शुक थाके दिवस रजनी।

—'यह घोर रजनी मानो एक नदी है और वह मन्द धार से वहती है। इस समय हे प्राणसखी, प्रीतम प्यारे कहा हैं ? वार-वार वादल गरज रहे हैं। मोर और मोरनी हर्षित हैं। मैं चातक चातकी, कदम्व केतकी तथा तरह-तरह के फूलो को देखती हू। सुगन्ध से मन मोहान्ध हो जाता है, क्योकि साजन घर पर

नही है। बीच-बीच मे विजली कौंधती है और जुगनू चमकते है, ऐसा मालूम होता है, जैसे दिन हो गया हो, तोता और मैना दिन-रात अपनी साथिन की चोच से चोच सटाये हुए पडे रहते हैं।'

यह कहा जा सकता है कि ऐसी कविताओ मे कोई खास रस नही है और बहुत घिसी-पिटी है, पर यह बात तो उस युग की सारी भारतीय कविता के सम्बन्ध में कही जा सकती है। यदि प्रकृति-वर्णन है तो वही चातक और चकोर, कुमुद और कमल, कदम्ब और केतकी, यदि भक्ति-रस है, तो वही गज-ग्राह, अजामिल और गणिका, सुदामा के तदुल और शवरी के बेर, यही सर्वत्र मिलेगा। यदि वेचारे कविवालो ने अपने भद्र बडभैयो का अनुकरण किया तो इसके लिए उनको बुरा-भला कहना उचित नही होगा।

रहा यह कि कविवालो को जनता को खुश करने के लिए कभी-कभी उल्टी छलागे आदि मारनी पडती थी, यह कोई आश्चर्य की बात नही है। दरबारी कवि भी तो अपने प्रभुओ की काम-प्रवृत्ति को उत्तेजित करने के लिए कभी खुल्लमखुल्ला और कभी राधा-कृष्ण की आड लेकर शृगार रस को चरम सीमा तक पहुचाते थे।

रामप्रसाद सेन का नाम पहले आ चुका है। श्यामाविषयक पद कहने मे उनसे बढकर कोई नही हुआ। उनका जन्म १७१८ मे हुआ था। पहले-पहल वह भी दरबारी कवियो के ढग पर चले। उन्होने भी विद्यासुन्दर पर लिखा, पर इसके तुरन्त बाद भारतचद्र इस क्षेत्र मे आ गये और उनकी रचना के सामने रामप्रसाद सेन का विद्यासुन्दर फीका पड गया। इसके बाद ही रामप्रसाद अपने गाव मे लौट गये और वहा आध्यात्मिक जीवन बिताने लगे। वे जिस स्थान पर बैठकर योगाभ्यास करते थे, वह अब भी सुरक्षित है।

उनके पिता का नाम रामराय सेन था। कहते है, रिश्तेदारो की बेई-मानी के कारण उनका बचपन बहुत गरीबी मे बीता था। जिस समय वह किशोर थे, उस समय उन्हे एक जमीदार के यहा वही लिखने के काम के लिए भेजा गया। अभी वह उम्मीदवार ही थे कि एक दिन देखा गया कि एक वही मे गीत-ही-गीत लिखे हुए है। जब जमीदार को इस बात का पता लगा और उन्हे यह मालूम हुआ कि ये गीत रामप्रसाद के लिखे हुए हैं, तब उन्होंने रामप्रसाद के लिए तीस रुपये मासिक की वृत्ति बाध दी। रामप्रसाद को राजा

कृष्णचद्र से भी वाद को चलकर एक वृत्ति मिली। इसके अतिरिक्त १०० बीघे जमीन माफी भी मिली।

रामप्रसाद सेन ने काली पर जो भजन लिखे, वे वहुत ही जनप्रिय हुए, और उनपर भाष्य किये गए। उनके भजनो को वही मर्यादा प्राप्त हुई, जो शास्त्रो को प्राप्त है। उनके भजनो मे कही-कही बडी उदात्त भावनाए है—

वारे-वारे जतो दु ख दियो छो, दिते छो तारा,
से केवल दया तव जेनेछि मा दु ख हारा।

—हे तारा, तुमने वार-वार मुझे जो दु ख दिया है और दे रही हो, वह तुम्हारी ही कृपा है।'

एक और भजन लीजिये, जिसमे वह काली-पूजा की आडम्वरयुक्त पद्धति की निन्दा करते हैं। उसमे वह कहते है—'मन, तू इतनी चिन्ता मे क्यो पडा है? वस एक वार काली कहकर ध्यान मे वैठ जा।'

जाक जमके करले पूजा, अहकार हय मने,
तुइ लुकिये तारे करवि पूजा, जानबे नारे जगत जने।
धातु पाषाण माटिर मूर्ति काज कि रे तोर से गठने,
तुमि मनमय प्रतिमा गडि बसाओ हृदि पद्मासने।

—'आडम्वर से पूजा करने पर मन मे अहकार पैदा होता है। धातु, पत्थर, मिट्टी की मूरत से तुझे क्या काम? तू छिपकर पूजा कर कि किसीको कानो-कान खवर न हो और मनोमय प्रतिमा बनाकर हृदय के पद्मासन मे स्थापित कर। तुझे अरवा, चावल और केला आदि के भोग लगाने की क्या जरूरत, तू भक्ति-रस से सिक्त कर उन्हे तृप्त कर। चारो तरफ वत्तियो, झाडो की क्या जरूरत है, तू अपने मन की मणि जला और उसे दिन-रात जलने दे।'

वे अन्य कविताओ मे भी आडम्वर से पूजा करने, तीर्थ-यात्रा, मन्दिर मे दर्शनार्थ गमन आदि को अनावश्यक बतलाते है। इस प्रकार यह समझना कठिन नही है कि वह जनप्रिय क्यो हुए। पूजा मे आडम्वर और प्रदर्शन की अधिकता हो जाने के कारण वह धनियो का क्षेत्र वनकर रह गई थी। रामप्रसाद सेन ने पूजा को इन वातो से उवारकर उसे साधारण जनता की चीज वना दिया। यही नही, उनके गीतो का यह प्रभाव हुआ कि निर्धन भक्त धनी आडम्वरकारी से श्रेष्ठ हो गया। धर्म की अन्तर्गत वस्तु तो वही रही, पर उसके ऊपरी रूप

मे फर्क आ गया। रामप्रसाद सेन बगाल के घर-घर मे छा गये।

उनकी कविताओ के भाव बहुत ही सरल है। एक बच्चा भी उन्हे समझ सकता है। यूरोपियन महिला भगिनी निवेदिता ने रामप्रसाद की कृतियो के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है कि उनकी रचनाओ मे बालक की भावुकताए व्यक्त होती है। वह कहती है—'शायद सारे साहित्य मे वही एक महान् कवि हैं, जिनकी प्रतिभा एक बालक की भावुकताओ को मूर्त करने मे लग जाती है। हमारी अपनी यानी अग्रेजी कविता मे विलियम ब्लेक शायद उनके निकट आते है, पर ब्लेक किसी भी तरह रामप्रसाद से श्रेष्ठ नही है। कवि राबर्ट बर्न ऊच-नीच-भाव के प्रति सम्पूर्ण रूप से उदासीन है, और कवि ह्विटमैन साधारण चीज़ो को गौरवान्वित करके पेश करने के लिए प्रसिद्ध है, इस नाते ये दोनो कवि रामप्रसाद सेन से मिलते-जुलते है। पर रामप्रसाद शिशुता के जिस श्वेत उत्ताप तक पहुचे, उसको देखते हुए वह अद्वितीय है। उम्र के कारण उनकी कविता मे कोई फर्क नही आता। उम्र से केवल आत्मविश्वास और सतुलन आता है। एक बच्चे की तरह वह कभी तो गभीर है और कभी प्रफुल्ल है, कभी झगडे पर उतारू है तो कभी निराश है। पर जहा बच्चे मे ये सारी बाते कोई विशेष उद्देश्य नही रखती, वहा रामप्रसाद मे उद्देश्य की गम्भीर निविडता है। जो वाक्य उन्होने कहा, उसमे उन्होने जगन्माता के गौरव का गान किया।'

शिशु-भाव की एक कविता लीजिये—

अब मै मा-मा करके और नहीं पुकारूगा,
मां, तुमने न मालूम मुझे कितनी यातनाए दी हैं और दे रही हो।

मै गृहवासी था, तुमने मुझे सन्यासी बनाकर दम लिया,
हे खुले बालवाली, और तू क्या कर सकती है।
यही न होगा कि दर-दर भीख मागूगा,
मा मर जाने पर क्या कोई लडका नही जीता!
रामप्रसाद तो अपनी मा का ही बेटा था,
पर तू तो मा होकर मेरी शत्रु बन गई।
मा के रहते हुए लडके को यह दु:ख मिले?
तो फिर मा के रहने से क्या फायदा?

एक कविता मे वह कहते है—

हे माता, तू मुझे किस अपराध म
मुझे इस लबी मियाद के लिए ससार रूपी कारागार मे
रखती है ?
सवेरे ही उठकर मेरा खटना शुरू हो जाता है,
मै सारी दुनिया घूम डालता हू इत्यादि

रामप्रसाद सेन की मृत्यु १७७५ मे हुई।

रामप्रसाद सेन के कई अनुकरणकारी हुए, जिनमे श्री दिनेश सेन ने इन लोगो का उल्लेख किया है—(१) नाटोर के **महाराजा रामकृष्ण**, ये एक वडे भक्त राजा माने गए है। इन्होने काली भक्तिमूलक पद कहे। (२) **कमलाकात भट्टाचार्य**। वह वर्द्धमान के महाराजा तेजश्चद्र के गुरु थे। वह कालना के अम्बिका-नगर के अधिवासी थे, पर १८०० ई० मे वर्द्धमान के कोटलहाटा मे आ गये। उन्होने भी भक्तिरस-मूलक भजन लिखे। (३) **दीवान रघुनाथराय**। (४) **दीवान रामदुलाल नदी**।

कविवालो की तरह यात्रावाले यानी यात्रा के रचयिता भी बगला साहित्य को समृद्ध कर गये है। जहा कविवाले केवल कविता कहते थे, वहा यात्रावाले जो कुछ कहते थे, उसका अभिनय भी करके दिखलाते थे। यात्रा मे किसी प्रकार के पर्दे नही होते थे। अभिनय के पहले खोल और करताल बजाकर लोगो को एकत्र किया जाता था, फिर अभिनय शुरू होता था। लडके साडी पहनकर स्त्रियो का पार्ट अदा करते थे। श्री दिनेश सेन ने अपनी पुस्तक मे बराबर यात्रा की बुराई की है और उसे एक हास्यास्पद रूप मे पेश करने की चेष्टा की है। यह उनकी नासमझी ही सूचित करती है। यात्रा एक तरह से खुली हवा के रगमच थे और उनसे लाखो लोगो का मनोरजन होता था। मध्ययुगीन बगाल के सास्कृतिक जीवन मे वह एक बडी खाई की पूर्ति करती थी। यात्रा-वालो के जरिये मे गाववालो मे सर्व-सामान्य सस्कृति और भाषा फैलती थी। यात्रावाले पौराणिक कहानियो के अतिरिक्त विद्यासुदर की कहानी भी प्रदर्शित करते थे। दुख है कि यात्रावालो का कोई इतिहास नही प्राप्त होता, पर ऐसा कहा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु के युग मे यात्रा हुआ करती थी।

गत दो-ढाईसौ वर्षो मे कई अच्छे यात्रावाले हो गये है, जिनमे **परमानद**

अधिकारी वीरभूमि मे ढाईसौ वर्ष पहले मौजूद थे। यात्रावालो को अक्सर पुरस्कार मे बहुत अधिक धन भी मिलता था। नदिया के भाजनघाटा के **कृष्ण-कमल** (जन्म १८१०) एक बहुत प्रसिद्ध यात्रावाले हो गये है। उन्होने 'स्वप्न विलास' नाम से एक पुस्तक भी लिखी, जिसकी वीस हजार प्रतिया बहुत जल्दी विक गई। वह बहुत अच्छे गानेवाले भी थे। उनकी मृत्यु १८८८ मे हुई।

५

प्राक-ब्रिटिश युग के मुख्य बंगला कवि

अब हम अपेक्षाकृत आधुनिक युग मे पदार्पण करते है। अभी तक अग्रेजी साहित्य का प्रभाव बगला पर नही पडा था। इस युग मे जो कवि हुए, उनमे दाशरथी राय, रामनिधि गुप्त और ईश्वरचन्द्र गुप्त थे।

दाशरथी राय का जन्म १८०४ के वर्द्धमान के एक गाव मे हुआ। उनके घर की हालत इतनी खराव थी कि वह अपने मामा के साथ रहते थे। वही वह तीन रुपये महीने की तनख्वाह पर एक नील बागान मे नौकर हो गये। यह काम करते समय अकावाई या अक्षयापातिनी नाम की एक स्त्री के प्रेम मे वह फस गये। कहते हैं, यह स्त्री एक कुख्यात स्त्री थी। पर वह स्त्री उच्चाकाक्षा रखनेवाली थी, उसने कविवालो का एक दल सगठित किया, और अब दाशरथी राय पर यह भार पडा कि वह इन कविवालो के लिए कविता की रचना करे। इस रूप मे वह काफी चमके और उनकी सुप्त कवि-प्रतिभा जाग उठी। दूसरे कविवालो को जब भी मौका लगना था, वह उनकी बुराई करते थे और चूकि कविवालो मे मुह पर बुराई करने की प्रथा थी, इसलिए कई वार उनकी भरी सभा मे हँसी उडाई गई। उनके रिश्तेदार भी उनके पीछे पडे और अत मे उन्हे कविवालो का साथ छोडना पडा।

दाशरथी राय ने एक नये ढग का काव्य निकाला, जिसका नाम पाचाली पडा। उनकी कविता बहुत अधिक जनप्रिय हुई। अधिकतर वह राधाकृष्ण के ही विषय को लेकर चले, पर वाद मे उन्होंने विधवा-विवाह आदि विषय भी लिये। कविवालो के साथ रहने का यह असर हो गया था कि वह जनता की रुचि को अच्छी तरह

समझते थे, इसके अतिरिक्त वह आवृत्ति की कला मे भी पटु थे। कहा तो नील बागान मे तीन रुपये मासिक पर नौकर थे, पर अब वह अपनी पाचाली सुनाने के लिए एक रात मे तीन रुपये लेने लगे। बढते-बढते उनका पारिश्रमिक प्रतिदिन १५०) रु० हो गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि वे १८५७ मे एक धनी व्यक्ति के रूप मे मरे।

उनकी कविता मे अनुप्रास, यमक आदि अलकारो की भरमार होती थी। बात से बात बनाना और बात मे बात निकालना, यह उनकी विशेषता थी। जनता उनकी कविता बहुत पसद करती थी। कई बार तो वह मौके पर परि-स्थिति को देखकर कविता बनाकर सुना देते थे। एक नमूना लीजिये—

पडित का भूषण धर्म और ज्ञान, मेघ का भूषण बिजली,
सती का भूषण पति, रत्न का भूषण ज्योति।
मिट्टी का भूषण अनाज, योगी का भूषण भस्म,
वृक्ष का भूषण फल, नदी का भूषण जल।
जल का भूषण कमल, कमल का भूषण मधुकर,
मधुकर का भूषण गुजन, दोनो परस्पर प्रेमबद्ध।
शरीर का भूषण चक्षु, जिससे जगत देखा जाता है,
दाता का भूषण दान, और साथ ही मिष्टभाषण।

ऊपर जो अनुवाद पेश किया गया, उसमे मूल का सौन्दर्य नही आ सका, क्योकि मूल का सौंदर्य बहुत-कुछ अनुप्रास, तुक और भाषा के ऐश्वर्य मे है। यह कल्पना की जा सकती है कि जिस समय दाशरथी राय ऐसी कविताए जनता के सामने पेश करते थे, एक के बाद एक आश्चर्य के कारण जनता मे खूब वाहवाही होती होगी। इस कविता की एक-एक उक्ति एक सूक्ति के रूप मे है, और जब इतनी सूक्तिया एक साथ पिरोकर अल्पज्ञ श्रोताओ के सामने एक साथ आती थी तो वह उन्हे अभिभूत कर देती थी। इस कविता की एक विशेषता यह भी है कि इसमे मौलिकता बहुत अधिक है। दाशरथी राय तथा उनके सम-सामयिक साहित्यकारो ने बगला साहित्य के क्षेत्र को जिस तरह बनाया, शायद वही इस बात के लिए जिम्मेदार हो कि बाद को चलकर बडे-बडे अग्रेजीदाओ को भी अन्य प्रभावो के बावजूद बगला मे लिखना पडा। दिनेशचद्र सेन ने यह साफ लिखा है कि साहित्य की रचना अथवा उसकी गुणग्राहकता अब केवल

उच्चतर वर्ग तक सीमित नही थी। 'साधारण जनता भी यह अनुभव करने लगी थी कि बगला साहित्य उसका है। कहा जा सकता है कि हमारे साहित्य मे यह ज्वार का युग था, और ऐसे युग मे सत्साहित्य के साथ-साथ कुसाहित्य या अपसाहित्य भी मिला हुआ था।"[१]

दाशरथी राय ने धार्मिक गीत भी लिखे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हे जब जैसी जनता मिलती थी, वह उसी प्रकार की कविता कहते थे। उनकी यह कविता इस बात को सिद्ध करती है—

दोष कारू नाय गो मा
आमि स्वखात सलिले डूबे मरिमा

—'किसीका दोष नही है, हे मा, मैं स्वय ही अपनी खोदी हुई खाई मे डूब रहा हू।'

कहते है, मृत्यु-शैया पर उन्होने एक कविता अपने भाई तीनकौडी उर्फ तीनू को सम्बोधित करते हुए कही थी, जो बहुत करुण है। उसमे उन्होने कहा था—'भाई तीनू, तुम लौट जाओ, मैं नही जाऊगा और न जा सकता हू। ससार मे अकेले ही आया और अकेले ही जाना है।' इसके बाद उन्होने इसी कविता मे यह कहा था कि भाई तीनू, जो कुछ मेरा घर-द्वार, जमा-पूजी है, वह सब तुम्हारा है, तुम विधवा को अन्न देना।' फिर वह कहते है—'तुम यह सोचते होगे कि मैं अकेला हू, पर यह बात गलत है। मैं माता की गोद मे हू।'

दाशरथी राय की पचास रचनाए उपलब्ध है, जिनमे कुल पचास हजार पक्तिया है।

इस युग के दूसरे कवि **रामनिधि गुप्त** या निधूबाबू के पिता वैद्यक से किसी तरह गुजारा करते थे। उसका जन्म १७३८ मे हुआ। रामनिधि को बगला के अतिरिक्त फारसी का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। कहा जाता है, उनको थोडी-थोडी अग्रेजी भी आती थी। शायद वह एक पादरी के यहा पढने के लिए भेजे गए थे, पर उन्होने अग्रेजी सीखने मे विशेष ध्यान नही दिया। सगीत मे उनकी रुचि थी और वह उसीके अनुशीलन मे लगे रहते थे। थोडे ही दिनो मे उन्होने सगीत मे अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और इस सबध मे उनकी ख्याति फैल गई।

---

१ देखिये, बगला भाषा और साहित्य (अग्रेजी), पृष्ठ ७४८

बीस साल की उम्र मे उन्हे छपरा मे कोई नौकरी मिल गई और वहा रहते समय उनके साथ एक मुस्लिम गानेवाले का साबका पडा, जिससे उन्हे बहुत लाभ हुआ। कुछ समय बाद उनमे गाना लिखने की अभिलाषा इतनी जगी कि वह बगाल मे लौट गये।

निधूबाबू को ही यह श्रेय है कि बगला कविता और सगीत को धार्मिक रचनाओ के स्वर्ग से उतारकर पार्थिव जगत मे ले आये। अवश्य ही धार्मिक होने के कारण पूर्ववर्ती कविताओ मे पार्थिव भावनाओ, जैसे प्रेम और विरह आदि के व्यक्त होने मे कोई दिक्कत नही पडती थी, राधा और कृष्ण की आड भी नाममात्र होती थी, अवश्य ही विद्यासुदर के गाने थे, पर वे भी सोलहो आने धार्मिकता से मुक्त नही थे, क्योकि अत तक सुदर को देवी की स्तुति करना पडी और तभी जाकर विद्या के साथ उसका मिलन हुआ है। निधूबाबू ने प्रेम को अपने ही अधिकारो पर स्थापित किया और उन दिनो उत्तर भारत मे प्रचलित टप्पा सुर को अपनाया। निधूबाबू के प्रेम-गीत बहुत सक्षिप्त होते थे। उनमे भाषा की आडम्बरमय शैली नही है। वह हृदय को छू जाते हैं। उन्हे पढते-पढते यह मालूम होता है कि कई बार हृदय पर चोट लगी। अत्यत गीतधर्मा होने के कारण उनकी कविताओ का अनुवाद सभव नही है, क्योकि अनुवाद मे वह बहुत फीके पड जायगे। ये कविताए गाने के लिए ही लिखी गई थी। इन सब बातो के बावजूद हम उनकी एक कविता का अनुवाद प्रस्तुत करते है—

> मै जिससे प्रेम करता हू वह यदि मुझसे प्रेम करे,
> तो प्रेम मे क्या मजा रह जाता ?
> फिर तो टेसू मे सुगध होती, केतकी मे काटे न होते,
> चदन मे फूल लगते, और ईख मे फल लगते।

एक और नमूना लीजिये—

> कितना ही सोचता हू कि रूठूगा और निहोरे करवाऊ गा,
> पर जब उसका मुख देखता हू तो यह सब भूल जाता है।
> आखें अभिमान मे कहती हैं कि ऐसा किया कि सुख गया,
> उसको देखते ही मै उसके अधीन हो जाता हू।

ये गीत उच्च वर्गों मे बहुत प्रसिद्ध हुए और यह कहा जा सकता है कि सच-मुच निधूबाबू का एक युग चल पडा। इसने भी बगला साहित्य को बल दिया।

ईश्वरचद्र गुप्त अपने युग के बगाल मे बहुत बडे साहित्यकार माने गये। शायद वह स्वय इतने बडे साहित्यकार नही थे, पर उन्होने जिस प्रकार से लोगो को बगला रचना के लिए अनुप्रेरित किया, वह बहुत बडी सेवा थी।

ईश्वरचद्र का जन्म १८११ मे हुआ। उनके पिता आठ रुपये मासिक पर एक नील बागानवाले के यहा नौकर थे। जब उनकी उम्र केवल दस वर्ष की थी, तभी उनकी माता की मृत्यु हो गई। ऐसा मालूम होता हे कि उतनी ही उम्र मे वह काफी सयाने हो चुके थे, जैसा कि सभी प्रतिभावान लडके होते हैं। जब उनकी माता की मृत्यु पर उनके पिता ने दूसरी शादी की तो उनको बहुत दु ख हुआ। जब उनकी विमाता से उनका परिचय कराया गया तो उन्होंने एक ईट फेककर अपना जवाब दिया। इसपर उनके चाचा ने तैश मे आकर उन्हे बहुत पीटा। तब उन्होने अपनेको एक कमरे बन्द मे कर लिया और चौबीस घटे तक उस कमरे को नही खोला।

पन्द्रह साल की उम्र मे एक लडकी से उनकी शादी भी कर दी गई, जिससे उनकी शिक्षा की इतिश्री हो गई। उनको स्त्री के रूप मे एक अयोग्य लडकी मिली, जो हकलाती थी। इस प्रकार ईश्वरचद्र का जीवन बहुत दुखी रहा। पढने-लिखने मे वह कोई अच्छे नही थे और लोग समझते थे कि वह किसी काम का नही होगा।

फिर भी बचपन से ही उनमे कवित्व-शक्ति का स्फुरण दृष्टिगोचर होने लगा था। एक बार की बात है कि कुछ लोग फारसी कविता पढकर बगला मे उसका अर्थ बताते जा रहे थे। ईश्वरचद्र ने बढे ध्यान से उन लोगो की बातचीत सुनी और थोडी ही देर मे कुछ बगला कविता बनाकर सामने आये, जिससे लोग दग रह गये, क्योंकि मूल फारसी कविता के सारे भाव इसमे आ गये थे। फिर भी केवल कवित्वशक्ति से आगे बढना सम्भव नही था। सौभाग्य से इन्ही दिनो जोडा-साको के ठाकुर-परिवार के श्री योगेद्रमोहन ठाकुर का ध्यान उनकी तरफ गया, और ईश्वरचद्र गुप्त के सामने एक दूसरी ही दुनिया खुल गई। उन्होने अपने प्रयास से विद्या प्राप्त की और कुछ समय मे ही वे इस लायक हो गये कि श्री योगेद्रमोहन ठाकुर के साथ मिलकर 'सम्वाद प्रभाकर' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। यह १८३० के मार्च की बात है।

'सम्वाद प्रभाकर' उन दिनो बगला मे बहुत ही प्रसिद्ध हुआ और इस

प्रसिद्धि का कारण ईश्वरचद्र की कविताए थी। व्यग और विद्रूप लिखने मे ईश्वरचद्र वहुत पटु थे। स्वाभाविक रूप से ऐसा पत्र खूब चला। यह द्रष्टव्य है कि इसी पत्र मे श्री वकिमचद्र तथा श्री दीनबधु मित्र की रचनाए पहले-पहल छपी। कहते है कि ईश्वर गुप्त गुणी होने के अतिरिक्त गुणग्राहक भी थे। वकिमचद्र और दीनवधु मित्र की प्रतिभा पहचानकर उन्हे आगे ले आने का श्रेय ईश्वर गुप्त को ही है।

१८३२ मे श्री योगेद्रमोहन ठाकुर का देहात हो गया। ईश्वर गुप्त इससे इतने हतोत्साह हो गये कि उन्होने 'सम्वाद प्रभाकर' बद कर दिया, पर उन्हे तो इस वीच मे अखवार का चस्का लग चुका था, इसलिए वह इसकी तैयारी मे रहे कि किसी तरह 'सम्वाद प्रभाकर' को फिर से निकाला जाय।

अत मे १८३६ मे 'सम्वाद प्रभाकर' एक अर्द्ध-साप्ताहिक के रूप मे निकाला जा सका। इसका फिर से स्वागत हुआ और १८३९ मे इसे दैनिक वना दिया गया। ईश्वर गुप्त की ख्याति सारे वगाल मे फैल गई और उन्होने १८४९ मे 'सम्वाद रत्नावली' नाम से एक अन्य पत्र का सम्पादन शुरू किया। उन्होने इस वीच सस्कृत से भागवत और प्रवोध-चद्रोदय नाटक का वगला अनुवाद तैयार किया। कुल मिलाकर उन्होने कविता की एक लाख पक्तिया लिखी होगी।

यो तो जैसा कि वतलाया गया उन्होने सस्कृत से अनुवाद किया, पर उनका यश उनकी अखवारी कविताओ से फैला। यहा यह वता दिया जाय कि वह व्यग और कौतुक हमेशा सही दिशा मे ही प्रयुक्त नही करते थे। उस युग के वातावरण के अनुसार ही उनकी कविताए होती थी। 'सम्वाद प्रभाकर' मे उन दिनो के एक कवि गौरीशकर भट्टाचार्य उर्फ गुडगुडे भट्टाचार्य के विरुद्ध वहुत-सी कविताए छपी थी। ईश्वर गुप्त अपने पत्र 'सम्वाद प्रभाकर' मे लिखते थे, और गुडगुडे भट्टाचार्य 'रसराज्य' मे उसका उत्तर देते थे। इस वात का फायदा उठाकर मि० लैंग आदि पादरियो ने वडा आदोलन किया। वह चाहते थे कि इन पत्रो का दमन किया जाय। वात यह है कि इनके कारण भारतीय जनता मे जागृति वढ रही थी, इससे भोले-भाले लोगो को ईसाई वनाने मे वाधा पडती थी।

ईश्वर गुप्त ने प्रेम के सम्वन्ध मे भी वहुत-सी कविताए लिखी। एक कविता

: ६ .

आधुनिक बंगला गद्य का प्रारम्भ

आधुनिक बगला साहित्य का कहा से प्रारभ होता हे, इस सवध मे मत-भेद हो सकता है, पर यदि हम साहित्यिक बगला गद्य के प्रारभ से आधुनिक बगला साहित्य का प्रारभ माने तो किसीको भी किसी प्रकार आपत्ति न होगी ।

यो तो बगला गद्य के प्रारभ को बहुत प्राचीन काल तक खीचा जा सकता है, पर सच बात यह है कि हिन्दी तथा अन्य कई आधुनिक भारतीय भाषाओ के गद्य की तरह बगला साहित्यिक गद्य का प्रारम्भ भी अठारहवी शताब्दी के अत मे हुआ । उस समय तक काव्य, आख्यान, धर्मतत्व, इतिहास, स्मृति इत्यादि सारे विषय चोदह अक्षरवाले पयार तथा त्रिपदी छद मे रचित होते थे। डा० सुकुमार सेन का कहना है कि पयार की शक्तिशालिता के कारण ही आधुनिक बगला साहित्य मे गद्य को प्रोत्साहन नही मिला। इसमे सन्देह नही कि पयार छद इस अर्थ मे बहुत शक्तिशाली है कि उसकी रचना करीब-करीब उतनी ही आसान है, जितनी गद्य-रचना, पर यह मान लेने पर भी इस बात की व्याख्या रह जाती है कि गद्य-रचना भी तो सरल थी, फिर उसका विकास क्यो नही हुआ ?

इसका प्रधान कारण यह है कि अभी तक भारत मे छापेखाने का प्रचार नही हुआ था, साहित्य हाथ से लिखी हुई नकलो के जरिये से ही फैलता था, इस कारण पद्य को तरजीह दी जाती थी । पद्यबद्ध होने के कारण पुस्तके याद रक्खी जा सकती थी । श्री सजनीकात दास ने बगला गद्य के विलम्बित विकास के लिए यह जो कहा हे कि बगाली कवि-स्वभाव थे, इस कारण उनमे गद्य का देर मे विकास हुआ, यह केवल एक तथ्य को जानकर उसकी बेकार प्रशसात्मक व्याख्या करना है, इसलिए हास्यास्पद भी है । अग्रेजी आदि जिन भाषाओ मे गद्य का पहले विकास हुआ, क्या उनके बोलनेवाले कम कवि-स्वभाव थे ? फिर दूर क्यो जाया जाय, एक तमिल के अतिरिक्त कदाचित् सभी भारतीय भाषाओ मे, यहातक कि पाश्चात्य देशो मे भी गद्य की द्रुत उन्नति छापेखाने के

साथ ही हुई। साहित्य की व्याख्या मे सजनीकात दास की तरह कूपमडूकता कई बार अज्ञान के कारण ही उत्पन्न होती है, पर ऐसी व्याख्याओ से खतरा यह है कि लोग उसे सही समझकर बहक न जाय।

सोलहवी शताब्दी के पहले का कोई बगला गद्य नही मिला, पर हमे इतने ब्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही है। हमे तो उस गद्य से मतलब है, जिससे आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ माना जा सकता है। फिर भी यह बता दिया जाय कि पहले-पहल गद्य का प्रयोग वैष्णवो ने और उसके बाद उनकी देखा-देखी रोमन कैथोलिक पुर्तगाली पादरियो ने किया। सत्रहवी सदी के मध्य भाग मे मग डाकू भूषण के एक जमीदार के लडके को पकड ले गये। एक पुर्तगाली पादरी ने उसे डाकुओ से खरीद लिया और ईसाई धर्म मे दीक्षित कर उसका नाम दोम आन्तोनियो रक्खा। बाद को चलकर दोम आन्तोनियो स्वय एक पादरी बन गया और उसने ईसाई धर्म की बढाई प्रमाणित करते हुए एक प्रश्नोत्तर-मूलक पुस्तिका लिखी। इस पुस्तिका का सक्षिप्त नाम 'ब्राह्मण कैथोलिक सवाद' था। बाद को इस पुस्तक का पुर्तगाली भाषा मे अनुवाद हुआ। मूल पुस्तिका की एकमात्र जानी हुई पाडुलिपि पुर्तगाली एवोरा शहर मे सुरक्षित थी।[1]

पुर्तगालियो ने इसी प्रकार बगला व्याकरण तथा कोश आदि तैयार किया। इसके बाद हम एकदम से अग्रेजी शासन के युग मे पहुच जाते हे। कम्पनी के ज़माने मे बगला मुद्रण का सूत्रपात हुआ। बगला मुद्रण के सृष्टिकर्ता विल्किन्सन थे और उनसे श्रीरामपुर के पचानन कर्मकार ने हरफ तैयार करना सीखा था। कम्पनी के युग मे अठारहवी सदी के अन्त मे तीन कानून-सम्बधी पुस्तके प्रकाशित हुई। ये पुस्तके अनुवाद के रूप मे थी।

अठारहवी शताब्दी मे श्रीरामपुर मे स्थापित बैप्टिस्ट मिशन की ओर से बगाल मे ईसाई धर्म के प्रचार का आन्दोलन चल पडा। १८०० ई० की जनवरी मे मिशन प्रेस की स्थापना हुई। यद्यपि इस प्रेस का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था, फिर भी बगाल की सुप्रसिद्ध कृत्तिवासी रामायण तथा काशीराम दास के महाभारत का मुद्रण इसी प्रेस मे हुआ। ईसाई धर्म की पुस्तकें तो यहा से प्रकाशित हुई ही। यद्यपि इन लोगो का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था,

---

[1] बागला साहित्ये गद्य—सुकुमार सेन, पृष्ठ ११

फिर भी यह मानना पडेगा कि बगला गद्य के निर्माण मे इन लोगो ने बडा हाथ बटाया।

उधर १८०० ई० की मई मे ईस्ट इडिया कम्पनी ने अपने अग्रेज कर्मचारियो को देशी भाषाओ की शिक्षा देने से लिए कालेज ऑव फोर्ट विलियम की स्थापना की, पर बगला विभाग खुलते-खुलते १८०१ की मई आ गई। इस विभाग के अध्यक्ष विलियम केरी थे और इनके सहकारी के रूप मे कई पडित काम करते थे। इन लोगो ने जिन पुस्तको की रचना की, उन्हीको आधुनिक बगला गद्य की मर्यादा दी गई है। केरी के सहकारियो मे **रामराम वसु** (मृत्यु १८१३) प्रधान थे। श्रीरामपुर मिशन से उनकी दो पुस्तके 'राजा प्रतापादित्यचरित' (१८०१) और 'लिपिमाला' (१८०२) प्रकाशित हुई थी। कहा जाता है कि राजा राममोहन ने प्रतापादित्य-चरित शुद्ध किया था। गोलोकनाथ शर्मा द्वारा अनूदित हितोपदेश इसी समय के लगभग प्रकाशित हुआ।

फोर्ट विलियम कालेज के सहकारियो मे **मृत्युजय विद्यालकार** भी कई पुस्तके लिख गये है। उनका 'बत्रिस सिहासन' पहले-पहल १८०२ मे प्रकाशित हुआ। बाद को श्रीरामपुर और लदन से इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए। मृत्युजय कई प्रकार की सरकारी नौकरियो मे रहे, १८१९ मे मुर्शिदाबाद मे उनकी मृत्यु हुई। वह केवल एक लेखक या अनुवादक ही नही थे, बल्कि अपनी विद्वत्ता के लिए बहुत प्रसिद्ध भी थे। उनके विचार बहुत कट्टर थे, फिर भी एक ऐसा उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि राजा राममोहन ने तो १८१८ मे सहमरण के विषय मे पुस्तिका प्रकाशित की, पर १८१७ मे ही उन्होने यह व्यवस्था दी थी—"चितारोहण अपरिहार्य नही है। यह इच्छाधीन विषयमात्र है। अनुगमन और धर्म-जीवन-यापन इन दोनो मे शेषोक्त ही श्रेयतर है। जो स्त्री अनुमृता नही होती अथवा अनुगमन के सकल्प से च्युत हो जाती है, उसे कोई दोष नही लगता।"

राजा राममोहन राय के आते-आते बगला गद्य कुछ बध चुका था। राममोहन का जन्म एक मत के अनुसार १७७० मे और दूसरे मत के अनुसार १७८० मे हुआ। राममोहन राय ने १८१५ मे वेदात पर बगला भाषा मे पुस्तक लिखी। मृत्युजय ने उसके विरुद्ध 'वेदात चद्रिका' पुस्तक लिखी और अपनी पुस्तक मे राममोहन को बगुला भगत, कपटी तत्वज्ञानी, धूर्त-अवधूत आदि

विशेषणो से याद किया, यद्यपि उनका नाम कही नही लिया गया।

राममोहन राय के हाथ मे पडकर पहले-पहल बगला गद्य उन्नीसवी शताब्दी मे पाठ्य पुस्तको के दायरे से बाहर निकला। १८१५ मे राममोहन राय के दो अनुवादात्मक ग्रथ 'वेदात ग्र थ' और 'वेदात सार' प्रकाशित हुए। जब मृत्युजय ने इसके विरुद्ध 'वेदात चद्रिका' लिखी तो उसके जवाब मे राममोहन ने 'भट्टाचार्येर सहित विचार' लिखा। इसके बाद राममोहन ने सहमरण-प्रथा के विरुद्ध उसे अशास्त्रीय साबित करते हुए 'प्रवर्तक ओ निवर्तके सवाद' तथा 'गोस्वामीर सहित विचार' दो पुस्तिकाए लिखी। इसके विरुद्ध काशीनाथ तर्क-पचानन ने १८२३ मे राममोहन को गालिया देते हुए 'पाषड पीडन' नामक पुस्तक लिखी। राममोहन भी चुप बैठनेवाले नही थे। उन्होने उसी साल 'पथ्य प्रदान' नाम से पुस्तक लिखी। राममोहन की शैली की विशेषता यह थी कि वह तर्क और युक्ति से काम लेते थे, इसके विरुद्ध पडितो की शैली कटूक्ति और गाली-गुफ्तार की शैली थी।

१८२१ के सितम्बर मे राममोहन ने 'ब्राह्मनीकल मेगजीन' नाम से एक पत्रिका निकाली। इसका एक दूसरा नाम 'ब्राह्मणसेवक' था। उसी साल के दिसबर मे 'सवाद कौमुदी' भी प्रकाशित हुई। १८२२ मे राममोहन ने 'मीरतुल अखबार' नाम से फारसी भाषा मे एक पत्र निकाला। डा० सेन ने लिखा है कि फारसी भाषा मे लिखा हुआ यही प्रथम मुद्रित समाचारपत्र था। राममोहन ने गद्य मे कठ, मुडक, माडुक्य, वाजसेनीय सहिता आदि का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया। उन्होने पद्य मे भगवद्गीता का भी अनुवाद किया था, पर अब यह अनुवाद प्राप्त नही है। उन्होने कुछ आध्यात्मिक गीत भी लिखे थे।

व्याकरण के क्षेत्र मे भी उन्होने काम किया था। १८२६ मे उन्होने अग्रेजी मे बगला व्याकरण लिखा था। बाद को बगला मे इस पुस्तक का जो रूप प्रकाशित हुआ, उसका नाम 'गौडीय व्याकरण' पडा। यह पुस्तक उनकी मृत्यु के कुछ दिन बाद प्रकाशित हुई। इसमे कोई सदेह नही कि राममोहन ने बगला भाषा की बहुत अधिक सेवा की। यहा सक्षेप मे बता दिया जाय कि राममोहन ने भारतीय पुनरुत्थान मे कितना जबर्दस्त हाथ बटाया।

राममोहन अग्रेजी, सस्कृत, फारसी, अरबी आदि कई भाषाओ के विद्वान थे। राममोहन ने प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता का मूल स्रोतो से अध्ययन किया

था। वह इस नतीजे पर पहुचे थे कि भारतीय धर्म का सार एकेश्वरवाद है, न कि बहुदेव-देवी पूजा। उन्होने इस सबध मे १८०४ मे ही फारसी मे एक पुस्तक लिखी, जिसमे यह प्रतिपादन किया कि एकेश्वरवाद ही शास्त्रीय है। उनकी इस चेष्टा से पादरी बहुत नाराज हुए, पर कट्टर हिन्दू भी उनसे रुष्ट हुए। १८१५ मे उन्होने वेदात पर जो कुछ लिखा, उसमे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया। उसी साल उन्होने मानिकतल्ला मे आत्मीय सभा नाम से एक सस्था स्थापित की, जो आगे चलकर उपासना समाज, ब्रह्म सभा या ब्राह्म समाज मे परिणत हो गई।

सहमरण के विरुद्ध उन्होने जो आदोलन चलाया, उसके कारण १८२९ मे ब्रिटिश सरकार ने कानून बनाकर इस प्रथा को वद कर दिया। उन्होने मूर्ति-पूजा, तीर्थो का ढकोसला आदि के विरुद्ध भी अविश्रात आदोलन किया।

राममोहन के राजनैतिक विचार भी बहुत परिपक्व थे। जब वह इगलैड जा रहे थे, उस समय उन्होने एक फ्रेच जहाज को फ्रास की क्रातिकारी पताका धारण किये हुए देखा। इसपर वह इतने मुग्ध हुए कि उन्होने उस जहाज को खडा करवाया, उसपर चढे और चिल्ला-चिल्लाकर फ्रास की जय वोलने लगे। लदन मे रहते समय उन्होने अपना देशी पहनावा नही छोडा। वह भारतवर्ष को स्वतत्र, ब्रिटेन के मित्र तथा एशिया को आलोक प्रदान करनेवाले के रूप मे देखना चाहते थे।

यह तो पहले ही वताया जा चुका है कि अपने समाजा-सुधार तथा धर्मसुधार-मूलक कार्यो के सिलसिले मे साहित्य-रचना की। उन्होने पत्र-पत्रिकाओ के दमनमूलक कानूनो के विरुद्ध भी लडाई की। उन्होने गोरो और भारतीयो मे भेदभावमूलक सरकारी नीति का भी विरोध किया। उन्होने कुलीन प्रथा के विरुद्ध आदोलन किया। उन्होने स्त्रियो के उत्तराधिकार, दहेज आदि के सवध मे भी आदोलन किया। सच तो यह है कि वह एक तरफ जहा पाश्चात्य सभ्यता को अपनाने के पक्ष मे थे, वही वे उसके हानिकारक उपादानो के विरुद्ध उठ खडे हुए। ऐसे क्रातिकारी तथा उच्च विचारवाले व्यक्तित्व के हाथो मे प्रारभिक वगला साहित्य का निर्माण-कार्य पडना वगला साहित्य के लिए वहुत सौभाग्य की वात थी।

७

बंगला का पहला उपन्यास

वगाल मे अग्रेजी शिक्षा के प्रवर्तन के साथ-ही-साथ उपन्यास-साहित्य का आविर्भाव हुआ। यो तो कहने के लिए यह कहा जा सकता है कि भारत मे भी पहले उपन्यास होते थे, पर सच्ची वात यह है कि न केवल भारत मे, वल्कि सभी देशो मे पूजीवाद और छापेखाने के साथ-साथ उपन्यासो का आरम्भ हुआ।

यो तो रामायण, महाभारत मे भी उपन्यास का मजा आता है, पर वे पद्य मे हैं। यदि हम सस्कृत गद्य-साहित्य की ओर दृष्टिपात करे तो कथासरित्सागर, बेताल पचविंशति, दशकुमार-चरित, कादम्बरी तथा बौद्ध जातको मे उपन्यास के कई उपादान मौजूद हैं। इन ग्रन्थो मे वर्णन के आडम्बर के नीचे निश्चय ही अक्सर कहानी दबकर रह गई है। वौद्ध-जातको मे फिर भी कुछ गनीमत है, क्योकि उनमे राजाओ से उतरकर साहित्य की वस्तु को बहुत-कुछ मध्यम वर्ग मे लाया गया है, और वर्गो का भेद उतना स्पष्ट नही है। फिर भी इन सबकी कहानियो मे ऊल-जलूल बातो के साथ-साथ वास्तविक घटनाए इस प्रकार मिलाई गई है कि आधुनिक पाठक उसे सहन नही कर सकता। अप्राकृतिक या अतिप्राकृतिक बातो की भरमार है।

पचतत्र इनसे विल्कुल भिन्न प्रकार का साहित्य है। यदि कहा जाय कि हमारा पचतत्र सारे विश्व-साहित्य मे अनोखा है तो कोई अत्युक्ति न होगी। केवल ईसप की कहानिया उसके कुछ पास आती है, यद्यपि यह भी एक मत है कि ईसप की कहानिया पचतत्र से ही उद्भूत है। पशु-पक्षियो की वातचीत के जरिये से जीवन-सबधी मोटी-मोटी बाते बता देने की ओर ही लेखक का ध्यान है, उसमे चरित्र-चित्रण या नाटकीय गुण-उत्पादन का कोई प्रयास नही है। कहानी तो महज एक बहाना है, लेखक का उद्देश्य नीति की शिक्षा देना है। अवश्य विष्णु शर्मा ने इससे अधिक कुछ दावा भी नही किया है। उन्होने तो साफ कह दिया है कि कथा के मिस से वालको के लिए नीति शिक्षादान ही उनका उद्देश्य है। बाल-साहित्य के रूप मे पचतत्र हमेशा आदर प्राप्त करेगा, पर उससे उपन्यास-साहित्य से जो रस मिलता है, उसकी आशा करना सर्वथा व्यर्थ है।

बंगला का पहला उपन्यास

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारे प्राचीन साहित्य में जातक साहित्य ही उपन्यास के सबसे नजदीक है। उस युग की बहुत-सी घटनाओ का इससे परिचय प्राप्त होता है। अतिरंजन की मात्रा अपेक्षाकृत कम है।

जब बंगला का निजी अस्तित्व कायम हो गया तो उसमे भी बहुत-कुछ संस्कृत का ही सिलसिला चला, पर बंगला मे उस प्रकार शब्दाडंबरपूर्ण समास-बहुल रचना की गुंजाइश नही थी, इसके अलावा बंगला की रचनाएं पंडितो के लिए न होकर साधारण लोगो के लिए थी, अतएव रचना कुछ सरल अवश्य हो गई, फिर भी ढांचा तो वही रहा, और उपाख्यानो का रुख भी धार्मिक ही रहा।

महाप्रभु चैतन्य पर जो पुस्तके लिखी गई, उनमे रामकृष्ण की जगह चैतन्य को बैठाया गया, फिर भी बातें वही रही। बल्कि इस संबंध मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के द्वारा संगृहीत 'मैमनसिंह के गीत' आधुनिक उपन्यास के अधिक निकट हैं। इन गीतो का रचनाकाल सोलहवी और सत्रहवी शताब्दी माना गया है। इन गीतो के आविष्कार से बंगला साहित्य की एक लुप्त कडी का पता लगा है। कृत्तिवास, काशीराम, मुकुन्दराम और भारतचन्द्र मे जो खाई है, वह इनके आविष्कार से बहुत कुछ पाटी जा चुकी है। इन गीतो मे छोटे-छोटे उपाख्यान भी आते है। इनमे उस समय के समाज के बहुत सजीव चित्र मिलते हैं। इन गीतो के सम्बन्ध मे सबसे बडी बात यह है कि इनमे परम्परागत वर्णन-शैली को बलपूर्वक हटाकर जो चीज जैसी है, उसे उस रूप मे देखने की चेष्टा है। प्रेमिक-प्रेमिकाओ की बातचीत या व्यवहार के कृत्रिमता लाने की चेष्टा न कर, उन्हे अधिक-से-अधिक स्वाभाविक बनाने की चेष्टा है। यदि बंगला साहित्य मे अंग्रेजी मे स्वतंत्र कोई ऐसा साहित्य है, जो साथ ही आधुनिक उपन्यास-साहित्य के बहुत करीब है तो वह मैमनसिंह के गीत हैं।

इनके अतिरिक्त बंगला साहित्य मे अरबी, फारसी सूत्र से आये हुए हातिमताई की कहानी, लैला-मजनूं, चहारदरवेश, गुलबकावली आदि कहानियां भी मौजूद थी। इन कहानियो का प्रचार हिन्दू, मुसलमान सभी घरो मे था।

जब बंगाल मे समाचारपत्रो का आरम्भ हुआ, तभी उसीके साथ-साथ उपन्यास-साहित्य का भी सूत्रपात हुआ। १८२१ मे 'समाचार-दर्पण' मे 'बाबू' नाम से एक रेखाचित्र छपा। दो अंको मे याने २४ फरवरी और ६ जून के अंको मे

यह रेखाचित्र सम्पूर्ण हुआ। इसमे उस युग के एक धनी-पुत्र तिलकचन्द्र का चित्रण था। यह धनी-पुत्र मुसाहिबो से घिरे रहते है, उन्हे न तो कोई शिक्षा मिली है और न उनमे कोई चरित्र-बल है। तिलकचद्र अपने अतर की शून्यता को बाहरी आडबर से ढकने की चेष्टा करते रहते है। उनकी एक चिन्ता यह भी हे कि मुसाहिबो मे उनकी इज्जत बनी रहे। नतीजा यह हे कि वह शुरू से आखिर तक हास्यास्पद बने रहते हे। यह रेखाचित्र पाठको के मनोरजन और साथ ही नसीहत के लिए लिखा गया था।

मालूम होता है 'बाबू' रेखाचित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ, इसलिए १८२३ मे प्रमथनाथ शर्मा ने 'नवबाबू विलास' नाम से एक रचना प्रकाशित की, जिसके सबध मे यह बताया जाता है कि यह बगला का पहला उपन्यास है। **प्रथमनाथ शर्मा** का असली नाम भवानीचरण बन्द्योपाध्याय था। एक ऐसा भी अनुमान है कि शायद 'बाबू' के भी यही लेखक थे। वे 'समाचार चद्रिका' और 'सस्वाद-कौमुदी' नामक दो पत्रो के सम्पादक थे, और हिन्दू समाज के स्तभ माने जाते थे। 'नवबाबू-विलास' को 'बाबू' का ही एक परिवर्द्धित सस्करण कहा जा सकता है। इसमे भी उन्ही बातो का चित्रण था, जिनका चित्रण 'बाबू' मे था। इसका भी उद्देश्य समाज-सुधार-मूलक था।

इन दोनो रचनाओ मे चित्रित बाबू उस समय के समाज की एक विशेष उपज था। उसकी सारी आमदनी जमीदारी से आती थी, पर पहले के युग मे जमीदारो पर जो थोडी-बहुत रोक थी, वह उसके शहर मे आकर बस जाने से टूट गई थी। धन उडाने के उपाय पहले के मुकाबले मे अधिक थे, इसीसे 'बाबू चरित्र' बना।

१८५७ मे **प्यारी चाद मित्र** का 'अलालेर घरेर दुलाल' प्रकाशित हुआ। मज़े की बात यह है कि यह भी उसी विषय को लेकर चला। १८६२ में **काली-प्रसन्न सिंह** ने 'हुतोम पेचार नक्काशा' लिखा, वह भी इसी विषय पर था। मालूम होता है कि उस युग के बुद्धिजीवी धनिको की उच्छृ खलता से बहुत परेशान थे।

'अलालेर घरेर दुलाल' पहले के धनी पुत्रो से विशिष्ट इस अर्थ मे था कि उसका नायक मिस्टर शेरबोर्न के स्कूल मे गया था, इसलिए उसने कुछ अग्रेजी शब्द और टीमटाम अपनाई थी। उस समय का सुन्दर चित्र उसमे आ जाता

की आग्ल-प्रभावित लीलाओ की कहानी व्यगात्मक रूप से लिखी। पर किसीने उपन्यास मे उस धारा का प्रतिनिधित्व नही किया, जिसने पाश्चात्य सभ्यता के सामने साष्टाग दण्डवत कर आत्मसमर्पण कर दिया था। उपन्यास-साहित्य मे यह पहलू अज्ञात ही रह गया।

फिर भी 'आलालेर घरेर दुलाल' और बाद के बहुत-से उपन्यासो मे जिस सघर्ष का चित्र हमारे सामने आता है, उससे हम उस युग के सामाजिक मन्थन का बहुत अच्छी तरह अनुमान कर सकते है। यह बात कही गई है कि 'आलालेर घरेर दुलाल' के लेखक जीवन के बृहत् व्यापक सत्य को अपनी सत्ता मे प्रस्फुटित नही कर पाये, पर उन्होने जो सामाजिक चित्र हमारे सम्मुख पेश किया है, वह बहुमूल्य है।

समसामयिक अन्य साहित्य

हम इस पुस्तक मे बगला साहित्य के इस युग का कोई व्यौरेवार इतिहास देने नही जा रहे हैं। हमारे इस सक्षिप्त इतिहास मे मुख्य धाराओ और व्यक्तित्वो के सम्बन्ध मे ही इगित किया जा सकता है।

उन्नीसवी सदी के द्वितीय दशक के बाद बगला साहित्य मे बराबर सस्कृत तथा अग्रेजी पुस्तको के अनुवाद प्रकाशित होते रहे। सामयिक पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगी। श्रीरामपुर के मिशनरियो ने १८१८ मे 'दिग्दर्शन' नाम से एक छोटी-सी मासिक पत्रिका निकाली। लगभग इसी समय **गंगाधर भट्टाचार्य** ने कलकत्ता से 'बगाल गजट' प्रकाशित किया। इन पत्रो मे छोटी-मोटी खबरो के साथ-साथ दिलचस्प बाते रहती थी। 'दिग्दर्शन' मे भूगोल, इतिहास तथा देश-विदेश की बहुत-सी आश्चर्यजनक बाते प्रकाशित होती थी। 'समाचार दर्पण' (१८१८ की मई मे प्रथम प्रकाशन) के सम्पादक के स्थान पर **जान क्लार्क मार्शमैन** का नाम जाता था, पर इसके असली सपादक उनके सहकारी जयगोपाल तर्कालकार थे। 'समाचार दर्पण' मिशनरियो का पत्र था, इसलिए इसमे अक्सर ऐसी बाते भी प्रकाशित होती थी, जो हिन्दुओ के लिए अप्रिय और ग्लानिकर होती थी। इसी कारण राममोहन राय को 'सवाद कौमुदी' प्रकाशित करनी पडी। 'सवाद कौमुदी' ने भाषा को सरल बनाने मे हाथ बटाया। इस पत्र मे राममोहन के सहयोगियो मे **भवानीचरण बन्द्योपाध्याय** (१७८७-१८४८) थे।

मतभेद हो जाने के कारण वह अलग हो गये और उन्होंने एक दूसरा पत्र निकाला।

भवानीचरण ने कई पुस्तके भी लिखी और हितोपदेश तथा 'मेटिरिया मेडिका' का अनुवाद किया। इन्होने पोथी के ढग से भागवत, गीता और मनुसहिता आदि शास्त्र-ग्र थो का प्रकाशन भी किया।

इसके वाद १८२९ मे 'वगदूत' प्रकाशित हुआ। इसके परिचालको मे राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर आदि थे और नीलरतन हालदार इसके सपादक थे। वाद के युग मे कवि ईश्वर गुप्त के सपादन मे 'सवाद प्रभाकर' निकला। कवि ईश्वर गुप्त अच्छे कवि माने गये हैं, पर उनका गद्य सुदर नही था। वह दीर्घ वाक्य, समासवद्ध शब्द तथा अनुप्रास-मडित शैली मे विश्वास रखते थे, जिससे वगला गद्य आगे की ओर न वढकर पीछे की ओर लौटा। 'सवाद प्रभाकर' के वाद 'ज्ञानान्वेषण', 'ज्ञानोदय' आदि पत्रिकाओ का प्रकाशन हुआ।

वगला पत्र-पत्रिकाओ के क्षेत्र मे इसके वाद १८४३ मे 'तत्व वोधिनी पत्रिका' का प्रकाशन एक वहुत वडी घटना है। यह पत्र ब्राह्म समाज के मुखपत्र के रूप मे प्रकाशित हुआ, पर प्रथम वारह वर्ष तक इसके सपादक अक्षयकुमार दत्त थे, जिनकी रुचि विज्ञान और गभीर चितन मे थी, इस कारण एक सप्रदाय का मुखपत्र होते हुए भी यह पत्र कट्टरता के कीचड से कभी कलुपित नही हुआ। अक्षयकुमार वैज्ञानिक विपयो पर निवध लिखा करते थे। वाद को कुछ दिनो तक प्रसिद्ध सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थोडे दिनो के लिए इसके सपादक थे। इस पत्र को उस युग के श्रेष्ठ लेखको, जैसे महर्षि देवेद्रनाथ ठाकुर, राजनारायण वसु और द्विजेद्रनाथ ठाकुर आदि का सहयोग प्राप्त था। 'तत्व वोधिनी पत्रिका' ने वगला साहित्य मे जो आदर्श पेश किया, उसीको वकिमचद्र ने अपने 'वगदर्शन' पत्र मे आगे वढाया।

अक्षयकुमार दत्त (१८२०-८६) अपेक्षाकृत आधुनिक वगला गद्य के प्रथम सुलेखक माने गये हैं। उन्हे वाकायदा शिक्षा प्राप्त करने का मौका नही मिला। पहले उन्होंने सस्कृत भापा पढी, वाद को अपने ही प्रयास से अग्रेजी सीखी। कवि ईश्वर गुप्त के असर मे पडने के कारण वह पहले-पहल कविता की ओर झुके, पर साथ ही ईश्वर गुप्त के कहने पर अग्रेजी अखवारो के लेखो का अनुवाद भी करने लगे। अक्षयकुमार वाद को देवेद्रनाथ ठाकुर के ससर्ग मे आ

गये और १८४० मे जब तत्वबोधिनी पाठशाला स्थापित हुई तो देवेंद्रनाथ ने उन्हे वहा शिक्षक लगवा दिया। छात्रो के लिए कोई उपयुक्त भूगोल नही था, इसलिए अक्षयकुमार ने एक भूगोल लिखा और वह तत्व-बोधिनी सभा के द्वारा प्रकाशित हुआ। १८४२ मे उन्होने प्रसन्नकुमार घोष के साथ मिलकर 'विद्या-दर्शन' नाम का एक मासिक पत्र निकाला, जिसकी केवल ६ सख्याए निकली, पर 'तत्व बोधिनी पत्रिका' चलती रही। जब १८५५ मे कलकत्ता मे एक नार्मल स्कूल स्थापित हुआ तो विद्यासागर महोदय ने उनसे इस विद्यालय का प्रधान शिक्षक पद स्वीकार करने के लिए कहा। उन्होने महर्ष यह पद ग्रहण किया, पर मस्तिष्क रोग के कारण उन्हे यह कार्य छोड देना पडा। विद्यासागर महोदय ने उनकी सिफारिश की और उन्हे सभा की ओर से कुछ मासिक भत्ता दिया जाने लगा। पर कुछ दिनो के बाद जब उन्हे पुस्तको से कुछ आमदनी होने लगी तो अक्षयकुमार ने स्वय यह भत्ता छोड दिया।

अक्षयकुमार ने विज्ञान पर कई छोटी-छोटी पुस्तके लिखी। उन्होने 'भारत-वर्षीय उपासक सम्प्रदाय' नाम से एक इतिहास-ग्रथ प्रस्तुत किया। इस पुस्तक मे इतिहास के अतिरिक्त, धर्म और भाषा विज्ञान पर भी आलोचना थी। उस समय तक प्रकाशित बगला ग्रथो मे यह शोध की दृष्टि मे सबसे उच्चकोटि की पुस्तक थी।

उनकी मृत्यु के बाद जो शोध-सबधी सामग्री बच गई थी, उसका आधार लेकर उनके छोटे लडके **रजनीनाथ दत्त** ने 'प्राचीन हिदु दिगेर समुद्र यात्रा ओर वाणिज्य विस्तार' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की। पर यह बाद की बात है।

: ८ :

बंगला रंगमच और नाटक का आदि युग

अत्यत प्राचीन काल मे भारत मे रगमच थे और नाटक खेले जाते थे। सस्कृत नाट्य साहित्य काफी उन्नत था और समय-समय पर उसमे नई कृतिया आती रहती थी, पर मुस्लिम युग मे ताता टूट-सा गया और बगाल मे जात्रा नामक एक

सगठन रहा, जिसने अभिनय-कला को जीवित रक्खा। धर्म के साथ जुड जाने के कारण जात्रा के चालू रहने मे सहायता मिली।

पर जिसे हम आधुनिक रगमच कहेगे, वगाल मे उसका उदय अग्रेजो के आने के वाद ही हुआ। जव अग्रेजो की भारत मे अच्छी-खासी सख्या होगई तो कलकत्ता मे अग्रेजी नाटक के लिए रगमच की स्थापना हुई। पलासी के युद्ध के पहले ही लाल वाजार सडक पर 'प्ले हाउस' नामकनाट्य गृह की स्थापना हुई थी। ईस्ट-इडिया कम्पनी के हाथ मे शासन-सूत्र जाने के पहले ही यह नाट्य-गृह वर्षो तक चालू था। इस सवध मे एक उल्लेखनीय वात यह है कि इसके वहुत वाद १७७४ मे एक अग्रेज ने शिकायत करते हुए यह लिखा था कि कलकत्ता मे एक नाट्यगृह है, पर कोई गिरजा नही है, जिसके अभाव की पूर्ति पुराने किले के अन्दर के एक वडे कमरे से की जाती है। दुख है कि इस नाट्य-गृह मे कौन-कौन-से खेल खेले गये, उस सवध मे कुछ जानने का उपाय नही है, क्योकि उन दिनो न तो कोई समाचार-पत्र था, न गजट।

इस प्ले हाउस का किसी तरह अत हो गया और एक नया प्ले हाउस खोला गया। ऐसा समझा जाता है कि १७७६ के लगभग यह प्ले हाउस खुला। इन नाट्यगृहो मे इतना मालूम होता है कि अग्रेजी नाटक खेले जाते थे और स्त्रियो का पार्ट भी पुरुष ही करते थे। मालूम होता है कि १७८८ के लगभग स्त्रियो का अभिनेत्री रूप मे नाटको मे दर्शन होने लगा। समसामयिक समाचार-पत्रो मे यह तो उल्लेख मिलता है कि अभिनेत्रियो के आ जाने से नाटको की जन-प्रियता वहुत वढ गई। यद्यपि मुख्यत अग्रेजी नाटक ही खेले जाते थे, फिर भी १७८९ मे अग्रेजी मे शकुन्तला नाटक के खेले जाने का पता मिलता है।

अभी तक वगला नाटको के खेले जाने का कोई उल्लेख नही मिलता। यह एक मजे की वात है कि जिस प्रकार आधुनिक वगला गद्य के निर्माण मे पुर्तगाली पादरियो तथा यूरोपियनो ने प्रमुख भाग लिया, उसी प्रकार से वगला रगमच को प्रारम्भ करने का श्रेय लेवेडाफ नामक एक रूसी को प्राप्त है। लेवेडाफ के सवध मे इतना ही पता चलता है कि वह एक वहुभाषाविद रूसी था और उसने गोलोकनाथ दास की सहायता से वगला नाटक तैयार कराये और उनको खेलने का प्रवध किया।

उसने वहुत दिनो तक भारतीय भाषाओ मे शोध-कार्य किये, फिर दो

अंग्रेजी नाटको का बगला मे अनुवाद किया । एक नाटक का नाम था 'डिसगाइस' (छद्म वेश) और दूसरे का नाम था 'लव इज दि बेस्ट डाक्टर' (प्रेम ही सबसे अच्छा चिकित्सक है) । लेबेडाफ ने यह देखा कि जिन हिस्सो मे भडैती अधिक थी, लोगो ने उन्हे गम्भीर हिस्सो से अधिक पसन्द किया। लेबेडाफ ने स्पष्ट लिख दिया है कि उसने इन अनुवादो को प्रकाशित किया था, फिर इन्हे पडितो के सुपुर्द किया गया था ।

लेबेडाफ आगे लिखते है—"इसके बाद मुझे इस बात की सुविधा मिली कि मैं यह देखू कि पडितो ने किस भाग और किन वाक्यो को अधिक पसन्द किया और किनसे उनकी भावुकता उत्तेजित हुई । मेरा विचार है कि यदि मैं यह कहू कि मेरे अनुवाद के कारण हास्य रसवाले तथा गम्भीर दृश्यो का रस बढ गया था तो इसका कारण यह था कि मुझे जैसा गुरु मिला था, वैसा किसी दूसरे यूरोपीय को प्राप्त नही था और इसके बगैर दूसरे मेरी बराबरी कैसे करते ? जब पडितो ने मेरे अनुवाद की प्रशसा की तब मेरे भाषाविद गोलोकनाथ दास ने यह कहा कि यदि मै इस नाटक को खेलना चाहू तो गोलोकनाथ मुझे देशी लोगो मे से ही पुरुष तथा स्त्रिया अभिनेता और अभिनेत्रियो के रूप मे उपस्थित कर सकता है । मुझे यह बात सुनकर बहुत खुशी हुई ।"

थोडे मे कहानी यो है कि तीन महीने के अन्दर अभिनेता तथा अभिनेत्रिया मिल गई और १७९५ के २७ नवम्बर को बगला भाषा मे 'छद्म वेश' नाटक प्रथम बार खेला गया । १७९६ के २१ मार्च को फिर यह नाटक खेला गया । लेबेडाफ को गवर्नर जनरल तथा दूसरे लोगो की तरफ से बहुत प्रोत्साहन मिला । दु ख है कि लेबेडाफ ने गभीर शोध की तरफ ध्यान न दिया और थोडे दिनो के अदर वह यहा से चला गया और उसने सस्कृत का एक व्याकरण रूसी भाषा मे प्रकाशित किया ।

लेबेडाफ के सबध मे जो कुछ पता लगा वह यह है कि उसका पूरा नाम गेरेसिम लेबेडाफ था । वह यूक्रेन का एक किसान था और १७७५ मे नेपेल्स के रूसी दूतावास मे किसी नौकरी पर था । वह पेरिस, लन्दन घूमते हुए बैंड मास्टर के रूप मे मद्रास आया और १७८७ के अगस्त मे कलकत्ता पहुचा । वह बेहाला का उस्ताद था । यह पता नही लगा कि गोलोकनाथ दास कौन थे ।

हमने पहले जो कुछ कहा, उसमे हमे यह भी बताना चाहिए था कि जो

अग्रेजी नाटक खेले जाते थे, उनमे उन दिनो के बगाली उच्च शिक्षित दर्शक रूप मे भाग लेते थे। यही नही, इन नाटको के लिए चन्दा आदि करने मे भी वे बहुत आगे रहते थे। इस प्रकार लोगो मे नाटक देखने की अभिरुचि बढ रही थी। यह दु ख है कि लेवेडाफ के चले जाने के बाद बहुत दिनो तक बगला नाटक खेले नही गये। जात्रा होते रहते थे, पर उनसे पढे-लिखे लोगो की तृप्ति नही होती थी। धीरे-धीरे यह आवाज उठने लगी थी कि बगला नाटक खेले जाने चाहिए। १८२९ के एक उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि 'समाचार चद्रिका' ने यह आवाज उठाई थी कि जिस प्रकार अग्रेजो के मनोविनोद के लिए सार्वजनिक नाट्य-गृह चालू है, उसी प्रकार बगला मे भी नाटक खेले जाने चाहिए। यह कहा गया था कि धनी-मानी व्यक्तियो को आगे बढकर इस सबध मे हाथ बटाना चाहिए।

इसी प्रकार की भावना से प्रसन्नकुमार का हिंदू थियेटर तथा नवीनकृष्ण बोस का श्याम बाजार थियेटर खुला। हिंदू थियेटर १८३१ के २८ दिसबर को खुला था। उस दिन **अध्यापक विलसन** के द्वारा अनूदित उत्तररामचरित का एक भाग तथा जूलियस सीजर का एक हिस्सा खेला गया था। डा० विलसन ने केवल अनुवाद किया, ऐसी बात नही, बल्कि उन्होने स्वय अभिनेताओ को भी प्रशिक्षित किया। नाटक खेले जाते समय सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश तथा यूरोपीय और भारतीय गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

इसके बाद इन लोगो ने और भी नाटक खेले। यद्यपि कुछ श्वेतागो ने इनमे सब तरह से हाथ बटाया, पर कुछने खुल्लमखुल्ला इनकी बडी निंदा भी की और यह भी कहा कि अभी भारतीय लोगो की शिक्षा इतनी कम है कि उन्हे इन झगडो मे, विशेषकर अग्रेजी नाटक खेलने के झगडे मे, नही पडना चाहिए।

श्याम बाजार थियेटर मे हिंदू थियेटर की तरह नाटक खेले जाते थे। हिंदू थियेटर केवल इस माने मे बगाली था कि उसके अभिनेता आदि बगाली थे, पर वहा अग्रेजी नाटक ही खेले जाते थे। पर श्याम बाजार थियेटर मे बगला नाटक खेले जाते थे। इस नाट्य-गृह मे भारतचद्र का 'विद्यासुदर' नाटक खेला जाता था। कई प्राकृतिक दृश्य भी दिखाये जाते थे और वज्रपात तथा बिजली का कौधना दिखाने की इसमे व्यवस्था थी। यह एक बहुत मजेदार बात है कि नाटक रात साढे बारह बजे से लेकर प्रात काल साढे छ बजे तक खेला जाता था। विद्या का पार्ट राधामणि या मणि नाम की एक बाईजी करती थी, जिनका पिता बगाली

था। अन्य स्त्रिया भी इसी प्रकार वेश्यालयो से आई हुई वतलाई जाती है। इस नाट्य-गृह के मालिक नवीन वावू ने अभिनय को सफल वनाने मे कुछ उठा नही रक्खा था। ऐसा मालूम होता है कि साल मे चार-पाच नाटक खेले जाते थे। नाटक देखने के लिए एक हजार के लगभग भीड होती थी, जिसमे हिंदू, मुसलमान, पछाह के लोग तथा यूरोपियन होते थे।

एक समसामयिक लेखक ने यह लिखा है कि राधामणि की उम्र कोई सोलह साल की थी और यह एक अच्छी गायिका होने के अतिरिक्त हाव-भाव भी खूब करती थी। उस लेखक ने इस वात पर विशेष रूप से आश्चर्य प्रकट किया था कि यद्यपि राधामणि पढी-लिखी नही थी और वगला की वारीकियो से परिचित नही थी, फिर भी वह सारे काम अच्छी तरह करती थी। इसी प्रकार इस लेखक ने अन्य अभिनेत्रियो की भी वडी प्रशसा लिखी है।

इस प्रकार की समसामयिक प्रशसा के साथ-साथ कई ऐंग्लो-इडियन अखवार इसकी निंदा भी करते थे। 'दि हरकारा' नामक अखवार ने लिखा कि यह तो एक अश्लील नाटक है। 'इंगलिशमैन' नामक अखवार ने इससे भी कुछ आगे वढकर यह कहा कि इस प्रकार के नाटको से भारतीयो की किसी प्रकार नैतिक या भौतिक उन्नति नही हो सकती, क्योकि न तो इसमे किसी प्रकार का नयापन है, न उपयोगिता और न शील और जनता के प्रत्येक हितैषी के लिए यह उचित है कि इस प्रकार के नाटको के विरुद्ध आवाज उठावे।

नवीनबाबू ने वगला नाटको को सफल वनाने के लिए अपना सवकुछ स्वाहा कर दिया। उनपर दो लाख रुपये का कर्ज़ चढ गया, फिर भी उनका नाम लेवेडाफ के वाद वगला के रगमच के इतिहास मे अमर रहेगा।

ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि वगला नाटको के अभिनय की ओर रुचि वढ रही थी, फिर भी उस समय के पढे-लिखे वर्ग मे अग्रेजी नाटको को देखने का चाव वहुत अधिक था। तदनुसार कई ऐसे रगमच बने, जो बगाली अभिनेताओ के द्वारा अभिनीत अग्रेजी नाटक दिखलाया करते थे। इसका कारण एक तो यह था कि उस ज़माने मे पढे-लिखे वर्ग अग्रेजी के वहुत अधिक प्रशसक थे और सच तो यह है कि बगला मे इस दिशा मे था ही क्या? वगला नाटको का अभाव रगमच की उन्नति मे वहुत वाधक था। जिस लेवेडाफ ने वगला नाटक शुरू किया, वह नही रह गये थे और फिर नवीनबाबू ने इस काम को उठाया, वह

भी उन्ही तक रह गया।

इसमे कोई सदेह नही कि 'विद्या सुदर' ही पहला बगला नाटक था। 'विद्या सुदर' के रचयिता कृष्णचद्र ने मृत्यु के पहले 'चडी' नाम से एक नाटक लिखा था, जिसमे देवी चडी, महिपासुर और प्रजा यही पात्र थे। सूत्रधार सस्कृत मे वोलता था, पर वाकी सव लोग वगला वोलते थे। पर वह ऐसी वगला थी और उसमे सस्कृत, हिंदी और फारसी के इतने शब्द थे कि उसे समझना टेढी खीर है। यह नाटक १७६० के लगभग लिखा जा रहा था, पर रचयिता इसे सपूर्ण नही कर पाये। पडित विद्यानाथ वाचस्पति ने 'चित्रयज्ञ' नाम से एक नाटक लिखा, पर यह भी अजीव खिचडी भाषा मे लिखा गया था, यहातक कि एक साहब ने इसे एक संस्कृत नाटक करके उल्लेख कर दिया। इस सवध मे तीसरा प्रयास लेवेडाफ का था, जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

एक उल्लेख के अनुसार श्री माकटन ने १८०६ से शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक का अनुवाद वगला मे किया था, पर न तो इसकी कोई प्रति प्राप्त हुई और न इसके खेले जाने का कोई प्रमाण मिलता है। १८२१ मे 'कलि राजा' नामक एक प्रहसन के खेले जाने का प्रमाण मिलता है। कई लोगो ने यह सदेह किया है कि यह कोई जात्रा होगा, पर डाक्टर हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त ने अकाट्य प्रमाणो से सिद्ध किया है कि इसमे जात्रा शब्द सफर के अर्थ मे आता है, न कि जात्रा के अर्थ मे। इन्ही दिनो और भी वहुत-से इसी प्रकार के प्रहसन खेले जाते होगे, क्योकि १८८२ के 'सवाद कौमुदी' से एक पत्र-लेखक ने इस वात पर शका प्रकट की है कि आजकल जो प्रहसन खेले जा रहे है, उनका रुझान अनैतिकता की ओर है।

१८२२ के ६ मार्च को एक धनी व्यक्ति के घर पर विलियम फ्रैकलिन लिखित 'कामरूपा' (Comroopa) का वगला रूपातर अभिनीत हुआ था। १८२२ मे सस्कृत के 'प्रवोधचन्द्रोदय' नाटक का 'आत्म तत्त्व कौमुदी' नाम से प्रकाशन हुआ था। इसी प्रकार १८२२ मे 'हास्यार्णव' नाम से एक नाटक प्रकाशित हुआ था। कहा जाता है, यह नाटक यो तो व्यग्य से भरा पडा था, पर इसमे अश्लीलता भी थी। ऐसे ही और भी कई नाटक इस युग मे लिखे गए।

१८४० के लगभग 'शकुन्तला' और 'रत्नावली' के वगला मे अनूदित होने का पता लगता है, पर ये नाटक बहुत-कुछ सस्कृत मे ही थे। डा० गुप्त के अनुसार

योगेंद्रचंद्र गुप्त के १८५२ मे प्रकाशित 'कीर्तिविलास' को ही प्रथम ढग का बगला नाटक होने का श्रेय देना चाहिए, यद्यपि कुछ लोगो ने **ताराचरण सिकदार** के 'भद्रार्जुन' को ही यह गौरव दे रक्खा था। कीर्तिविलास वृद्ध राजा चद्रकात का पुत्र था और कैकेयी की तरह उसने अपनी दुष्ट रानी की सलाह पर न केवल अपने पुत्र को देश निकाला दिया, वल्कि उसे प्राणदड भी दे दिया। अन्त मे जाकर कामुक सभासद प्राणनाथ की दुर्गति भी दिखाई जाती है।

'भद्रार्जुन' नाटक मे सुभद्रा-अर्जुन की कहानी का आधार है। समय की दृष्टि से भले ही 'कीर्तिविलास' पहले प्रकाशित हुआ हो, पर तकनीक की दृष्टि से 'भद्रार्जुन' मे ही बगला नाटक को सस्कृत के सूत्रधार, नन्दी, विदूषक आदि से छुटकारा मिला। इस दृष्टि से ताराचरण सिकदार की सेवा वहुत वडी है। वाद को अन्य लोगो ने भी इसको अपनाया और बगला नाटक का यह अग हो गया।

'भद्रार्जुन' और 'कीर्तिविलास' के साथ ही 'भानुमती रचित-विलास' नाम से एक नाटक प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक मौलिक नही थी, वल्कि शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'वेनिस का सौदागर' का ही रूपातर था। इसमे की भानुमती पोर्शिया है। अक और दृश्य शव्दो के स्थान पर इसमे अक और अग शव्द प्रयुक्त हुए है। इसके लेखक **हरचद्र घोष** थे। यद्यपि यह नाटक मौलिक नही था, फिर भी इसमे पाश्चात्य नाटक-कला का ही अनुसरण किया गया था, इस प्रकार यह नवीन नाटक-साहित्य की ओर एक कदम था। इस नाटक मे फिर भी सरस्वती की स्तुति और नादी थी। कहते है, इस नाटक को सफलता मिली, इस कारण हरचद्र ने 'कौरव विजय' नाम से एक नाटक लिखा। इन नाटको का समय १८५३ के पहले का है। 'कीर्तिविलास' तथा 'भद्रार्जुन' इनसे भी पहले लिखे गए थे।

इसी समय के लगभग कवि **ईश्वरचद्र गुप्त** ने 'वोधेन्दु विकास' नाम से एक नाटक लिखा। यह 'प्रभाकर' नामक पत्र मे १८५३ मे प्रकाशित हुआ था। इसमे वार्तालाप के अतिरिक्त गाने भी थे। यह सस्कृत नाटक 'प्रवोधचद्रोदय' की छाया लेकर लिखा गया था और १८५६ मे पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुआ। यह नाटक रगमच के उपयुक्त नही पाया गया।

ईश्वरचद्र गुप्त ने 'कलि' नाम से भी एक नाटक लिखा था, पर वह भी असम्पूर्ण ही रहा। यहा यह वता देना उचित होगा कि 'कीर्तिविलास' और 'भद्रार्जुन' को भी रगमच पर जाने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ।

इस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक 'कुलीन कुल सर्वस्व' माना गया है, जिसके लेखक **पडित रामनारायण तर्करत्न** थे। यह नाटक सम्पूर्ण रूप से मौलिक था। जिस प्रकार से यह नाटक लिखा गया, वह यो है कि रगपुर के एक जमीदार कालीचरण चतुर्धुरीन ने १८५३ मे दो पत्रो मे यह प्रकाशित करवाया कि कुलीन प्रथा के विरुद्ध जो सबसे अच्छा नाटक लिखा जायगा, उसके लेखक को पचास रुपये पारितोषिक के रूप मे दिये जायगे। पडित रामनारायण तर्करत्न के नाटक को यह पारितोषिक मिला और वह इसके बाद इतने प्रसिद्ध हुए कि वह नाट्के रामनारायण कहलाने लगे। १८५४ मे यह पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ। सब दृष्टियो से देखने पर 'कुलीन कुल सर्वस्व' इससे पहले लिखे गए बगला नाटको से कई कदम आगे जाता था। कुलीन प्रथा के विरोध मे लिखे जाने के कारण यह नाटक एक सामाजिक उद्देश्य भी रखता था। इस नाटक का उन दिनो बहुत प्रचार हुआ और विशेषकर नवयुवको ने इसका विशेष स्वागत किया।

इन्ही दिनो 'शकुन्तला' और 'वेणी सहार' नाटको का भी प्रचार हुआ, पर इनमे से कोई भी उतना जनप्रिय नही हुआ, जितना 'कुलीन कुल सर्वस्व' हुआ। इस युग के अन्य उल्लेख योग्य नाटको मे 'स्वर्ण शृखल' नाम का एक नाटक भी था। ऐसा मालूम होता है कि बगला नाटक बहुत खेले जाने लगे थे और कई नाटक खेले जाने के लिए लिखे गए। कई धनी व्यक्तियो ने अपने घरो मे नाटक खेलने का प्रबध किया, जिनमे आशुतोष देव या छावूबाबू तथा कालीप्रसन्नसिंह उल्लेखनीय है। शेषोक्त व्यक्ति सस्कृत नाटको के खेले जाने के पक्ष मे थे, इसलिए उनके प्रोत्साहन पर सस्कृत नाटको के अनुवाद तैयार किये गए। 'मालती माधव' और 'विक्रमोर्वशी' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। यह बता दिया जाय कि अनुवाद करते हुए अनुवादको ने मूल का सर्वत्र अनुसरण नही किया।

१८५८ मे **कालीप्रसन्नसिंह** ने 'सावित्री सत्यवान' नाम का एक नाटक प्रस्तुत किया। यद्यपि कथानक महाभारत से लिया गया था, तथापि लेखक ने उसको अपने ढग से यूरोपीय साचे मे ढाल दिया था। यह नाटक १८५८ के ५ जून को खेला गया था। १८५९ मे कालीप्रसन्न ने 'मालती माधव' प्रस्तुत किया, पर इसमे भी उन्होने रगमच पर प्राप्त अनुभवो के अनुसार यथेच्छ परिवर्तन किया था।

इसके बाद तो बगला रगमच मे एक नया युग उपस्थित होता है। बेलगछिया नाट्यशाला की स्थापना के साथ बगला रगमच बहुत लम्बी छलागे भरने

लगता है। इस समय तक इस दिशा मे जो थोडा-बहुत काम हुआ था, वह समय को देखते हुए कुछ कम नही था, पर अब भी बगला नाटक और रगमच की नैया मझधार मे डगमगा रही थी। यह निश्चित नही था कि वह अपनी यात्रा मे आगे बढ सकेगी या डूब जायगी, पर वेलगछिया नाट्यशाला की स्थापना के बाद बगला रगमच एक स्थायी सस्था के रूप मे हो गया। पाइकपाडा के दो राजाओ ने बहुत खर्च करके रगमच का निर्माण करवाया। १८५८ के ३१ जुलाई को रात के साढे आठ बजे 'रत्नावली' नाटक आरभ हुआ और साढे बारह बजे यह अभिनय समाप्त हुआ। इस नाटक पर दस हजार रुपये खर्च किये गए थे। सर फ्रेडरिक हेलीडे तथा कई अन्य अग्रेज भी नाटक देखने आये थे। अभिनेता अच्छे घरानो के लोग थे। बाद को इनमे कई बहुत उच्च पदो पर पहुच गये। इस अवसर पर केशवचद्र नामक एक अभिनेता को बहुत ख्याति प्राप्त हुई। इन्होने विदूषक का पार्ट किया था। बाद को माईकेल मधुसूदन दत्त ने अपना एक नाटक 'कृष्णकुमारी' इसी केशवचद्र को समर्पित किया था और उन्हे वह उस युग के सबसे बडे अभिनेता मानते थे। बाद को केशवचद्र कट्रोलर जनरल के दफ्तर मे सुपरिटेडेट हो गये।

वेलगछिया नाट्यशाला मे ही प्रथम राष्ट्रीय आर्केस्ट्रा या वाद्यवृद का निर्माण हुआ, जो भारतीय वाद्य-यत्रो पर आधारित था। 'रत्नावली' नाटक बारह रातो तक खेला गया। माइकेल मधुसूदन ने जो पाश्चात्य साहित्य, काव्य, नाटक आदि से भली-भाति परिचित थे, इसकी बहुत प्रशसा की है।

'रत्नावली' के बाद **मधुसूदन दत्त** लिखित 'शर्मिष्ठा' नाटक इस रगमच पर खेला गया। कहा जाता है, जिस समय 'रत्नावली' के अभिनय की तैयारी हो रही थी, उस समय एक दिन मधुसूदन ने रिहर्सल देखकर कहा—"राजा लोग इतने रद्दी नाटक पर इतना पैसा खर्च कर रहे है। यदि मुझे मालूम होता तो मैं इस रगमच के योग्य कोई नाटक देता।" इसपर लोग उस समय हँसे थे पर बाद को उन्होने बहुत जल्दी एक नाटक लिखा और १८५९ के ३ सितबर को उनका नाटक खेला गया। यह नाटक भी बहुत सफल रहा। लोगो ने इसकी बहुत प्रशसा की। मधुसूदन सस्कृत नाटक से बिल्कुल ही हट गये थे। इसके बाद इस नाट्यशाला मे अन्य अनेक नाटक खेले गये। स्वय मधुसूदन ने 'पद्मावती', 'एके कि बोले सभ्यता', (क्या इसीको सभ्यता कहते है) 'बूडो

शालिकेर घाडेरो', (बूढे पर रग छाया)॰ इत्यादि नाटक लिखे। उनके नाटको के सबध मे 'कृष्णकुमारी' नाटक भी १८६० मे रचा गया।

वगला नाटक-साहित्य मे यह प्रथम दु खात नाटक था। इस नाटक की बहुत प्रशसा हुई। यहा यह बता दिया जाय कि कवि के रूप मे मधुसूदन का स्थान वगला साहित्य मे बहुत ऊचा है, पर जैसा कि डा० दास गुप्त ने लिखा हे, हमे यह भूलना नही चाहिए कि वह ही प्रथम सफल पौराणिक नाटक, प्रथम दु खात नाटक, प्रथम ऐतिहासिक नाटक तथा एक ऐसे प्रहसन के रचयिता, थे, जो अब भी ताजा बना हुआ है। उन्हीकी प्रतिभा के कारण वगला रगमच अपने पैरो पर खडा हो गया।

जेसे राजा राममोहनराय आधुनिक वगला-साहित्य के जनको मे थे, उसी प्रकार ब्राह्म समाज के एक दूसरे प्रमुख नेता भी बाद को वगला साहित्य के अन्यतम पुरोधा प्रमाणित हुए। यह बहुत कम लोगो को मालूम है कि वह एक अभिनेता भी थे। वे हैमलेट बनकर रगमच पर उतरे। यह अग्रेजी मे खेला गया, पर बाद को उन्होने उमेशचद्र मित्र रचित 'विधवा-विवाह' नामक एक वगला नाटक मे (१८५९) हाथ बटाया था और उनका भाई इसका एक पात्र बना था।

दीनबधु-युग की झाकी

इसके बाद हम दीनबधु-युग मे प्रवेश करते हैं। पर उसमे प्रवेश करने के लिए कुछ भूमिका की आवश्यकता है। आज बगालियो मे कोई 'नील दर्पण' नाटक को नही पढता। मेरा आशय यहापर उन लोगो को नही गिनना है जो परीक्षा पास करने के लिए या साहित्य के इतिहास मे गभीर अध्ययन करने के लिए इस पुस्तक को पढते है। यह नाटक केवल साहित्य के इतिहास की दृष्टि से नही, हमारे राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसका महत्व कितना अधिक है, इसका इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि स्वय वकिमचद्र ने इस पुस्तक को बगाल का 'अकल टाम्स कैबिन' वतलाया है।

यह नाटक नीलकोठी के साहबो के अत्याचारो के विरुद्ध लिखा गया था। यहा पर यह बताना आवश्यक है कि ये नील-कोठी के साहब कौन थे और नील कोठी क्या थी। आजकल तो सभी रग रासायनिक ह। पर पहले नील से ही

रग बना करता था। मै सक्षेप मे नील की खेती का इतिहास प्रस्तुत करता हू, जिससे आलोच्य नाटक की पृष्ठभूमि समझ मे आ जाय।

जब अग्रेज आये, उन्होने बगाल की जमीन को नील की खेती के उपयुक्त पाया। पहले-पहल कुछ किसानो को उसमे फायदा भी रहा। स्वय राजा राममोहन राय ने १८२६ मे यह कहा था कि नील की खेती से किसानो को फायदा है। यदि किसानो पर ही उनका बोना-न बोना, और बोना तो कितना बोना, यह छोड दिया जाता तथा उन्हे अपनी उपज को स्वतत्रतापूर्वक बेचने दिया जाता तो बात और होती।

पर यहा तो कुछ अग्रेज कोठीवाले इसके एकाधिकारी हो गये और उन्होंने मनमाने ढग से बर्ताव शुरू किया। यद्यपि ये अग्रेज कोई सरकारी हैसियत नही रखते थे, तथापि अग्रेज होने के कारण ही उन्हे मानो भारतीयो पर मनमाना करने का पट्टा मिला हुआ था। वे जो चाहे सो करते थे।

यो तो देखने मे एग्रीमेट का रूप होता था, पर अमल मे किसान को कोई स्वतत्रता नही होती थी। नील की कोठी के कारिंदे जाकर प्रत्येक खेत पर निशान लगा देते थे कि उस खेत मे नील और इसमे धान बोया जायगा। किसान की क्या मजाल थी कि वह उसका उल्लघन करे।

नील कोठियो के साहबो का यह अत्याचार बीसियो वर्ष तक बगाल मे चला। एग्रीमेट एक साल का होता था, पर अमल मे आजीवन गुलामी का पट्टा लिखा जाता था। हर साल जब हिसाब होता था तो नील की गाडिया देने के बाद नील के किसानो के हिसाब मे कुछ भी नही निकलता था। नतीजा यह कि उन्हे और भी पेशगी लेनी पडती थी।

१६२२ मे नील के साहबो के अत्याचारो के विषय मे पहला उल्लेख 'समाचार चद्रिका' और 'समाचार दर्पण' नामक बगला अखबारो मे मिलता है। इसके बाद अक्षयकुमार दत्त ने 'तत्वबोधिनी' पत्रिका मे नील के किसानो पर अत्याचार के सबध मे लिखा था। अच्छी-से-अच्छी जमीन पर जबर्दस्ती नील की खेती कराई जाती थी।

किसी-किसी क्षेत्र मे दस साल के एग्रीमेट का पता मिलता है। यह भी पता चलता है कि जब नील के किसान अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह करने लगे तो

इस वहाने अत्याचारो को वद करने के वजाय अग्रेज सरकार ने नील की कोठी के साहवो को मजिस्ट्रेटो के अधिकार दे दिये। जो लोग अग्रेजी साहित्य और अग्रेजो की विज्ञाननिष्ठा को सामने रखकर साम्राज्यवाद के इन पहलुओ को भूल जाते है, वे ब्रिटिश शासन की असलियत को नही समझ पाते।

नील के साहवो को यह अधिकार तो पहले से मिला हुआ था कि वह किसानो को जव चाहे तव अपनी कोठी मे कैद कर ले। नील के किसानो मे इससे वडा असतोष फैला हुआ था। इनमे आदोलन इस मात्रा तक पहुचा था कि वडे लाट लार्ड कैनिग १८५७ के विद्रोह से इसके सवध मे अधिक चितित थे। उन्होने लिखा है—"करीव एक हफ्ते तक मै इतना उद्विग्न था कि मै दिल्ली के गदर के समय भी नही था, और मुझे डर था कि यदि इस समय किसी नील मालिक ने भय या मूर्खतावश एक गोली चला दी तो उससे सभव है कि वगाल के दक्षिणी हिस्से मे प्रत्येक कारखाने मे आग लग जाय।'

शायद इसी उद्विग्नता के कारण वगाल के लेफ्टिनेट गवर्नर सर जान पीटर नदी से वगाल के देहातो का दौरा करने लगे। १८६० के १७ दिसवर को उन्होने दौरे के वाद एक रिपोर्ट दी जिसमे उन्होने कहा कि मै "६०-७० मील तक भागीरथी तथा जमुना नदियो मे नाव के द्वारा दौरा करता रहा तो उसमे मैने देखा कि यह ६०-७० मील का किनारा अर्जी देनेवाले किसानो से भरा हुआ था, यहातक कि गाव की औरते तक जमा थी, ऐसा मालूम होता है कि जो लोग वहापर अपनी फरियाद लेकर आये थे वे नदी के दोनो किनारो पर स्थित दूर-दूर के गावो से आये थे। मैं नही जानता कि आजतक किसी राज-कर्मचारी के भाग्य मे यह वात हुई कि नही कि लगातार १४ घटे तक दोनो किनारो पर खडे अर्जी देनेवालो की कतारो के वीच से स्टीमर पर चले। सभी लोग वडे अदव से माग रख रहे थे और यह स्पष्ट है कि वे जिस विषय को लेकर आये थे उसके सवध मे वहुत गभीर थे। यह सोचना वेवकूफी होगी कि जो यह दसियो हजार लोग आये थे, और जिनमे पुरुष, स्त्रिया तथा वच्चे थे, उसका कोई अर्थ नही है।"

इसके पहले ही १८५९ मे ५० लाख नील के किसानो ने हडताल कर दी थी। इसीकी प्रतिध्वनि साहित्य मे 'नील-दर्पण' नाटक के रूप मे हुई। इसे क्यो वकिमचद्र ने वगला का 'अकल टाम्स कैविन' वतलाया, यह पहले जो कुछ

लिखा गया उससे स्पष्ट हो गया होगा।

वकिमचद्र ने लिखा—"दीनवधु मित्र को समाज के सवध मे अद्भुत ज्ञान था और उनमे प्रवल सहानुभूति थी। इन्हीके कारण वह नाटक लिखने की ओर अग्रसर हुए। जिन इलाको मे नील पैदा होता था, उनमे वे खूब घूमते रहते थे। वे अपने ही तजर्बे से जानते थे कि प्रजा पर किस प्रकार का अत्याचार हो रहा है। उनको इस प्रजा-पीडन के सवध मे जितनी जानकारी थी, इतनी और किसीको नही थी। अपनी स्वाभाविक सहानुभूति के कारण उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्होने ही उन दुखो को झेला हो। इसीलिए उन्होने अपनी कवित्वपूर्ण लेखनी से यह दुख-गाथा तैयार की। 'नील दर्पण' बगाल की 'टाम काका की कुटिया' है। टाम काका की कुटिया ने अमरीका के हब्शियो को गुलामी से मुक्त किया। उसी प्रकार से 'नील दर्पण' नील के गुलामो की गुलामी को मिटाने मे बहुत कार्य कर सका।"

हम पहले यह वता दे कि यह पुस्तक किस प्रकार एक भयकर राजनैतिक अस्त्र के रूप मे हो गई। इस पुस्तक का अनुवाद अग्रेजी मे प्रकाशित हुआ। इससे इतना तहलका मचा कि इसके प्रकाशक पादरी जेम्स लेग पर मुकद्दमा चला और उन्हे एक महीने की कैद तथा एक हजार रुपये जुर्माना किया गया। शासक वर्ग के इस क्रोध का यह रूप विशेष ध्यान देने योग्य है कि इस पुस्तक के मूल लेखक को कोई सजा नही दी गई। अग्रेजी मे 'नील दर्पण' के प्रकाशन से सरकार रुष्ट इस कारण हुई कि इससे शासक वर्ग के ढोग मे बाधा पडती थी। यहा फिर एक बार हम ब्रिटिश न्याय और अततोगत्वा सब न्यायो के वर्ग-चरित्र को देख ले।

जिस मधुसूदन दत्त नामक व्यक्ति ने 'नील दर्पण' का अनुवाद किया था, उसे भी सजा दी गई। फिर भी आदोलन चलता रहा। मै यहा अपने 'राष्ट्रीय आदोलन का इतिहास' से उद्धृत करता हू—"आदोलन ने इतना ज़ोर पकडा कि सरकार ने एक नील कमीशन वैठाया, पर इस कमीशन ने कोई अच्छी सिफारिश नही की। कमीशन ने उलटा यह कहा कि नील की खेती होनी चाहिए। साथ ही उन्होने नील के किसानो के दुखो को दूर करने के लिए कोई अच्छी सिफा-रिश नही की। सच तो यह है कि जवतक जर्मनी ने वैज्ञानिक ढग से नील उत्पादन नही किया तवतक नील की खेती चलती रही। भारतवर्ष मे उस समय

ोई नेता ऐसा उत्पन्न होता जो नील के किसानो के आदोलन को १८५७ के द्रोह के साथ सयुक्त कर देता तो इसमे सदेह नही कि भारतीय इतिहास कुछ सरा ही होता।"

जो हो, नील के किसानो के विषय को लेकर एक नाटक लिखना बडे ाहस और सूझ की बात थी। इसलिए इसमे आश्चर्य की बात नही कि ीनबधु इस नाटक को लिखकर बहुत प्रसिद्ध हुए और उनका नाटक जनप्रिय ुआ।

दीनबधु का जन्म बगला के १२३८ मे नदिया जिले के चबेरिया गाव मे ुआ। उनके पिता का नाम कालाचाद मित्र था। बचपन मे हेयर स्कूल का ात्र रहते समय ही उन्होने बगला लिखना आरभ कर दिया था। वह ईश्वर गुप्त े अनुयायी थे। ऐसा समझा जाता है कि उनकी पहली रचना 'मानव चरित्र' ामक एक कविता थी, जो ईश्वर गुप्त सपादित 'साधुरजन' पत्रिका मे प्रकाशित ुई थी। इसके बाद तो वह बराबर कुछ-न-कुछ लिखते रहे। उनकी एकाध चनाए इतनी प्रसिद्ध हुई कि जिस सख्या मे वे छपी, पत्रिका की उस सख्या को फर से छापना पडा।

दीनबधु ने जीवन को बहुत पास से देखा था। डाक-विभाग मे एक मामूली ाबू के रूप मे भर्ती होकर वह उस विभाग के एक बडे अफसर हो गये थे और स नाते उन्हे मणिपुर से गजाम और दार्जिलिंग से समुद्र तक बार-बार जाना डता था। इसके अलावा उनमे यह आदत थी कि वह जहापर भी दौरे पर ाते, वहा सरकारी काम समाप्त कर हरेक से मिलते थे। इस कारण हम यह खते है कि उनकी रचनाओ मे छोटे-से लेकर बडे तक सबके जीवन से वे खूबी परिचित थे।

जब उनका 'नील दर्पण' नामक नाटक प्रसिद्ध हुआ तो वह एक पार्टी मे ैठे हुए थे। किसीका परिचय अभी नही कराया गया था। उस पार्टी मे नील कोठी का एक बगाली कारिंदा भी था। किसी प्रकार से 'नील दर्पण' नाटक र उसकी नजर पहुची। इसपर उस कारिंदे ने कहा—"साले ने हूबहू नील की कोठी मे जैसे जो कुछ होता है, वैसा ही लिख दिया है। मालूम होता है जैसे हमारा कोई कर्मचारी ही लेखक है।"

दीनबधु ने यह बात सुनी तो वह हँसे। उधर मेजवान ने झेपते हुए दीनबधु

का परिचय लोगो से कराया। तब वह कारिंदा दीनवधु से माफी मागने लगा। इसपर दीनवधु बोले—"आपके शब्द चाहे जैसे भी हो, पर आपने जैसी प्रशसा मेरी की है, वैसी आजतक किसीने नही की।"

दीनवधु के नाटक की इस वस्तुवादिता के कारण ही उनके नाटक मे वह गुण आ गया, जिससे वह उस युग मे प्रसिद्ध हुए।

सक्षेप मे नाटक की कथावस्तु यो है

गोलोकचद्र और उनके नौकर साधु मे बातचीत हो रही है। साधु यह कह रहा है कि अब इस देश को छोड देना चाहिए, पर गोलोक कह रहा है—यहा हमारे सात पुरखे रहते आये है। जो धान पैदा होता है, उससे साल भर चलता है, अतिथि-सेवा होती रहती हे और पूजा भी होती है। जो सरसो होती है, उससे तेल मिलता है, और साठ-सत्तर बच जाते है। खेत का चावल, खेत की दाल, बाग से तरकारी और पोखरे से मछली मिलती है। ऐसे देश को कैसे छोडा जाय ?

साधु ने कहा—पर अब तो ये बाते जाती रही। नील के साहबो के मारे अब तो नील बोना पडता हे। उसका भी पैसा मिल जाता तो ठीक रहता।

दूसरे गर्भाक मे भी किसान आपस मे बात कर रहे है कि नील की खेती के मारे सबकी आफत है। किसान आपस मे कह रहे है कि गाय-बैल बेचकर गाव छोडकर भाग चला जाय। बात यह है कि किसानो की सारी जमीन पर नील की खेती होने लगी थी।

वे बात ही कर रहे थे कि इतने मे अमीन और प्यादे आकर उन किसानो को बाधने लगे।

तीसरे गर्भाक मे मिस्टर उड अपने दीवान को इसलिए डाट रहा है कि वह अधिक अत्याचार नही कर रहा है। साहब कह रहा है—तुम साले डरपोक हो, नालायक हो, तुम डर गये हो, तुम घबडाते हो।

इसपर दीवान कह रहा है—हुजूर, जब मैने यह ओहदा लिया तो डर कैसा ? मैने तो डर, लज्जा, मान, मर्यादा सबकी तिलाजलि दे दी। गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या, स्त्री-हत्या, घर मे आग लगाना यह सब तो मेरे लिए अग के आभूषण हो गये है। जेलखाना तो मेरे सिर पर नाचता रहता है।

इसपर साहब ने कहा—मै बात नही मागता, काम मागता हू।

इतने मे वे ही दो किसान वधकर आते है। दीवानजी को तो खैरख्वाही दिखानी थी, वे इनपर वहुत विगडते है। कहते है—सुना है, तुम साहव को कैद करना चाहते हो।

इसपर वह किसान प्रतिवाद करता है। तव दीवानजी कहते हे कि गाव मे स्कूल वना है, इसीसे राज्य-द्रोह फैल रहा है। साहव कहते है कि मैं स्कूल वद करा दूगा। इसके अलावा वह और भी विगडते है।

दीवानजी कहते है—हुजूर, यह नीलवाले खेत मे खेती नही कर रहा है। साले ने लेने को तो पेशगी के रुपये ले लिये, पर कहता है कि नील की खेती मुझसे नही होती। कहता है कि वक्त नही है।

इसपर उडसाहव आपे से वाहर होकर कहते है—साला वडा हरामजादा है। पेशगी तू लेगा, और खेती मैं करू ? साला वडा हरामी है (जूते की ठोकर मारना), अभी तेरी मुलाकात श्यामचाद से करता हू।

साहव ने अपने डडे का नाम श्यामचाद रखा था। उसे उतारकर साहव मारना शुरू करते हे और किसान जोर-जोर-से चिल्लाता है। इसपर साहव पराक्रम दिखलाने के लिए ब्लाडी, निगर तथा मा-वहन की गालिया देते हैं।

इसी प्रकार से यह नाटक चलता जाता हे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नग्न रूप सामने आ जाता है। हमने पहले ही वतलाया कि अव यह नाटक न तो पढा जाता और न खेला जाता है, फिर भी इस नाटक के अदर भारतीय इतिहास का एक अध्याय निहित है। इस नाटक को वगला साहित्य और साथ-ही-साथ भारतीय इतिहास का एक श्रेशशिला कहा जा सकता है। सच तो यह है कि इतिहास की किसी पुस्तक मे नील की कोठियो मे साहवो के देशव्यापी अत्याचार की कहानी इतने अच्छे ढग से नही लिखी गई है।

दीनवधु मित्र ने 'नील दर्पण' के वाद 'सधवार एकादशी' (सधवा की एकादशी), 'नवीन तपस्विनी', 'कमले कामिनी' (कमल मे कामिनी), 'विये पागला वुडो' (व्याह करने के लिए पागल वूढा) आदि नाटक लिखे, जो वहुत सफल हुए। वाद मे इन नाटको का कई वार उल्लेख आयेगा।

"जो लोग इसे खरीदना चाहे, वे कालेज ऑॅव फोर्ट विलियम के बगला सरिश्ते-दार श्रीयुत् दीनवधु न्यायरत्न भट्टाचार्य के पास खोज करने पर पा सकेगे, मूल्य तीन रुपये ।" यह दीनबधु महोदय विद्यासागर के छोटे भाई थे ।

विद्यासागर ने मार्शमैन के ग्र थ का आधार लेकर 'बागलार इतिहास' लिखा (१८४७-४८), 'चेवर्स' का आधार लेकर १८४६ मे 'जीवन-चरित' नामक पुस्तक लिखी । विद्यासागर ने महाभारत का अनुवाद भी शुरू किया था, पर जब कालीप्रसन्न सिंह ने यह कार्य उठा लिया तो उन्होने इस कार्य से हाथ खीच लिया । इसके बाद उन्होने १८५१ मे 'बोधोदय' लिखा, जो लगभग एक सौ वर्ष तक पाठ्यपुस्तक का गौरव प्राप्त किये रहा । पहले बत्तीस साल मे इसके ८१ सस्करण छपे । इसी प्रकार इन्होने और भी बहुत-सी पुस्तके लिखी ।

बाद मे उन्होने ज्ञान-विज्ञान तक अपनेको सीमित न रखकर समाज-सुधार पर भी कई पुस्तके लिखी । दो पुस्तको मे (१८५५) उन्होने विधवा-विवाह का समर्थन किया । १८७१ और १८७३ मे उन्होने बहु-विवाह के विरुद्ध दो खडो मे एक पुस्तक लिखी । राजा राममोहन के बाद जिन लोगो ने समाज-सुधार का कार्य उठाया, उनमे उनके बाद विद्यासागर का ही नाम आता है । ऐसा अनुमान है कि जो रचनाए विद्यासागर के नाम से प्रचलित हैं, उनके अलावा भी उन्होने कुछ पुस्तके लिखी थी । इनमे कई पुस्तिकाए तो उन पडितो पर व्यग करते हुए लिखी गई थी, जिन्होने विधवा-विवाह का विरोध किया था ।

यद्यपि विद्यासागर ने बगला भाषा की जो सेवा की, वह बहुत ही सराह-नीय थी, फिर भी उस समय बहुत-से लोगो ने उनका विरोध किया और उन-की सेवाओ को विशेष महत्व देने से इकार किया ।

सबसे आश्चर्य की बात है कि बकिमचद्र ने नाम देकर और गुमनाम रूप से उनकी सेवाओ को तुच्छ प्रमाणित करना चाहा । उनका मुख्य वक्तव्य यह था कि विद्यासागर ने या तो सस्कृत से अनुवाद किया या अग्रेजी से, इस कारण उन्हे मौलिक लेखक का सम्मान नही मिलना चाहिए । पर यह बात सही नही है । विद्यासागर ने जिन पुस्तको का अनुवाद भी किया, उनका आक्षरिक अनु-वाद नही किया । उन्होने अपने ढग से उसी बात को लिखा । डा० सुकुमार सेन ने बकिमचद्र के विद्यासागर-विरोधी मतव्यो पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि बकिमचद्र विद्यासागर के यश के प्रति कुछ ईर्ष्या की भावना रखते थे,

तभी उन्होने ऐसा लिखा है। "वकिमचद्र स्वय कभी कवियश प्रार्थी नही थे, इस कारण वह अपने समसामयिक कवियो की प्रशसा करते हुए कु ठित नही होते थे, पर समसामयिक शक्तिशाली गद्य लेखको के प्रति वे कई बार अन्याय कर गए।"[१]

अन्य समसामयिक सुलेखक

इस युग के उल्लेखनीय कवियो मे **भूदेव मुखोपाध्याय** थे। १८५६ मे उनकी पहली पुस्तक 'शिक्षा-विषयक प्रस्ताव' प्रकाशित हुई। १८५८ मे 'पुरातत्व सार' नामक उनकी इतिहास-सबधी पुस्तक प्रकाशित हुई। उन्होने कई पाठ्यपुस्तके भी प्रस्तुत की। १८५७ मे 'ऐतिहासिक उपन्यास' नाम से उनकी दो ऐतिहासिक आख्यायिकाए प्रकाशित हुई। ये आख्यायिकाए अग्रेजी के आधार पर लिखी गई थी। पर भूदेव का महत्व उनके लिखे हुए उपन्यासो के कारण नही (यद्यपि यह कहा जाता है कि उनके उपन्यास 'अगुरीय विनिमय' की शैली पर ही बकिमचद्र ने 'दुर्गेशनदिनी' नामक अपना पहला उपन्यास लिखा था) और न उनकी लिखी हुई पाठ्यपुस्तको के कारण है, उनका महत्व तो उनके विचारोत्तेजक निवधो के कारण है। 'आचार प्रवध', 'पारिवारिक प्रवध', 'सामाजिक प्रबध', 'विविध प्रवध' और 'पुष्पाजलि' नाम से उनके कई निवध-सग्रह निकले, जो विशेष क्रातिकारी न होते हुए भी विचारोत्तेजक थे। जिस देश मे तर्क का इतना पतन हो गया था कि उसका अर्थ केवल शास्त्रार्थ' निर्णय करना रह गया था, वहा ये निबध एक नई दिशा की ओर सकेत कर रहे थे।

पहले ही **देवेंद्रनाथ ठाकुर** (१८१७—१६०५) का उल्लेख किया जा चुका है। वह 'तत्व-बोधिनी पत्रिका' के सस्थापक और उसके एक प्रधान लेखक थे। उनकी शैली वहुत सरल इसलिए थी कि उन्हे कुछ विचारो का प्रचार करना था, इस कारण वह सरल भाषा को तरजीह देते थे। वह धर्म पर ही लिखते थे। हा, उन्होने एक आत्मकथा लिखी है, जो वगला भाषा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है। यह पुस्तक १८६८ मे प्रकाशित हुई थी। देवेद्रनाथ ठाकुर तथा उनके ब्राह्म-समाज के साथियो को वगला भाषा की एक और सेवा करने का गौरव प्राप्त

---
१ वागला साहित्ये गद्य, पृ० ६८

है। वह यह कि उन्होने बगला भाषा मे व्याख्यान देकर उसे व्याख्यानोपयोगी बनाया। इससे भी बडी सेवा देवेद्रनाथ ठाकुर की यह थी कि उन्होने उस वातावरण को तैयार करने मे हाथ बटाया, जिसमे आगे चलकर बहुत बडे-बडे लेखक उत्पन्न हुये।

इन दिकपालो के अतिरिक्त बहुत-से साधारण लेखक बगला भाषा की सेवा मे तत्पर रहे और अग्रेजी तथा सस्कृत से बहुत-सी पुस्तको का अनुवाद हुआ। ऐसे लोगो मे कई विद्यासागर के शिष्य थे, कई 'तत्व बोधिनी पत्रिका' से प्रभावित थे और कई स्वतत्र कार्यकर्ता भी थे। इस इतिहास को उनके नाम गिनाकर भाराक्रात करने की कोई आवश्यकता नही मालूम होती।

भाषा की उन्नति मे साथ-साथ उसमे लेखिकाओ का होना स्वाभाविक है। डा० सुकुमार सेन के अनुसार १८५७ मे 'चित विलासिनी' नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वही आधुनिक काल मे महिला रचित प्रथम बगला पुस्तक है। लेखिका का नाम **कृष्णकामिनी दासी** बताया गया था। इस पुस्तक मे बगाल की कुलीन प्रथा की निंदा की गई थी। ऐसा सदेह किया जाता है कि कृष्णकामिनी दासी सभव है कि कोई महिला न हो, बल्कि किसी पुरुष का छद्म नाम हो। पुस्तक मे गद्य-पद्य दोनो थे।

१८६३ मे **कैलाशवासिनी देवी** ने 'हिदू महिला गणेर हीनावस्था' प्रकाशित की। इनकी और भी दो पुस्तके प्रकाशित हुई। इसके बाद कई और लेखिकाए सामने आई।

सौदामिनीसिंह ने १८६६ के प्रारभ मे 'एकजन-ब्रह्मवादिनीर युक्ति' नाम से एक पुस्तक छपवाई। **कामिनी सुदरी देवी** बगला की प्रथम महिला नाट्यकार है। उन्होने 'उर्वशी' नाम से एक नाटक लिखा था। **दयामयी देवी** ने १८६६ मे 'पतिव्रता धर्म' नाम से एक पुस्तक लिखी।

उन्नीसवी शताब्दी मे महिला लेखिकाओ द्वारा लिखित रचनाओ मे **श्रीमती रामसुदरी** लिखित 'आमार जीवन' एक उल्लेखनीय पुस्तक है। लेखिका ने पहले साठ वर्ष तक की अपनी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था पर सारा वृत्तात लिखा। बाद मे जब उनकी उम्र ८८ साल की हो गई, तब उन्होने बाद के २५ वर्षो का इतिहास लिखकर पहली पुस्तक मे जोड दिया। यह पुस्तक गद्य-पद्यमय है। पद्य उन्हीका लिखा हुआ है। बडी सरलता और सादगी के साथ

जीवन की छोटी-छोटी घटनाए लिखी गई है। उस समय के समाज के बहुत छोटे-छोटे चित्र इस पुस्तक मे एकत्र किये गए है। लेखिका उच्च शिक्षिता नही थी। अपनी चेष्टा से ही उन्होने लिखना-पढना सीखा था। घर बहुत वडा था और बच्चे भी वहुत-से थे, फिर भी उन्होने पहले पोथी पढना, फिर छपी हुई पुस्तक पढना और उसके वाद लिखना सीखा था। इस पुस्तक का साहित्यिक महत्व शायद अधिक न हो, पर उस युग के सामाजिक इतिहास के एक उत्सग्रंथ के रूप मे यह पुस्तक बहुत ही महत्वपूर्ण है।

१०

युगप्रवर्तक बंकिमचंद्र

बगला के प्रथम सफल उपन्यासकार **बकिमचद्र** थे, इसी हैसियत से उन्होने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। वह मुख्यत ऐतिहासिक उपन्यासकार ही समझे जाते हैं, क्योकि उनके अधिकाश उपन्यासो मे कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति पात्र-पात्री के रूप मे है, किंतु स्मरण रहे कि केवल दो-चार ऐतिहासिक व्यक्ति को पात्र बनाकर खडा कर देने से ही कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नही हो सकता। इसके लिए सबसे आवश्यक वात है कि उस समय के वातावरण की सृष्टि की जाय, चाहे पात्र एक भी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति न हो। इस दृष्टि से जाच की जाय तो मृणालिनी, दुर्गेश-नदिनी, चद्रशेखर तथा कपालकुण्डला को ऐतिहासिक उपन्यास नही कहा जा सकता। राजसिंह करीव-करीव ऐतिहासिक उपन्यास हो गया है, यद्यपि उसमे इतिहास के साथ काफी मनमानी की गई है। सर वाल्टर स्काट ने अपने उपन्यासो मे घटनाओ के क्रम मे वहुत गलती की है, फिर भी वह ऐतिहासिक आवोहवा पैदा करने की सामर्थ्य के कारण ऐतिहासिक उपन्यासकार माने गये है।

उपन्यासकार वकिम से धर्मतात्विक वकिम इतने दव गये कि वहुत-से लोग तो जानते ही नही कि वकिम ने धर्मतत्व पर भी अपनी लेखनी चलाई है, किंतु उनकी अपनी दृष्टि मे उन्होने धर्मतत्व पर एक नवीन विश्लेषणात्मक पद्धति

से जो कुछ लिखा है वह अधिक महत्वपूर्ण था । इसमे सदेह नही कि उनके युग को देखते हुए उनके धर्मतात्विक मत भी क्रातिकारी नही तो प्रगतिशील थे । उन्होने समाज के रथ को गतानुगतिकता के कीचड से निकालकर बुद्धिवाद के राजमार्ग पर चढाने की चेष्टा की, यद्यपि वह स्वय सोलहो आने बुद्धिवादी थे, ऐसा आज कहना कठिन है । फिर भी वह प्रगतिशील थे, इसमे सदेह का अवकाश नही । उन्होने लिखा था, "तीन-चार हजार वर्ष पहले भारतवर्ष के लिए जो कायदे-कानून बने थे, आज उनको हरफ-ब-हरफ मानकर चलना सभव नहीं । वह ऋषि स्वय यदि आज मौजूद रहते तो कहते, 'नही, ऐसा नही हो सकता, यदि तुम हमारी विविध-व्यवस्थाओ को पूर्ण रूप से कायम रखकर चलो तो उससे हमारे धर्म के मर्म का विरुद्धाचरण ही होगा ।' हिंदू-धर्म का वह मर्म भाग अमर है, हमेशा रहेगा और मनुष्यो का उससे कल्याण ही होगा, क्योकि मनुष्य-प्रकृति मे ही उनकी नीव है । सभी धर्मो मे विशेष विधिया सामयिक ही होती है । वे समय-भेद के अनुसार परिहार्य तथा परिवर्तनीय हैं ।"

वकिमचद्र के धर्मतत्व की मैंने अवतारणा इसलिए की कि उनकी साहित्य-साधना धर्मानुशीलन से बिल्कुल भिन्न पर्याय की वस्तु नही थी । यदि वे प्रत्यक्ष रूप से स्वजाति, स्वदेश तथा स्वसमाज से अपने साहित्य की प्रेरणा प्राप्त करते थे तो परोक्ष रूप से मनुष्य को अदृष्ट तथा मनुष्यता के आदर्श की खोज से ही उन्हे प्रेरणा मिलती थी ।[1] वकिमचद्र साहित्य मे आदर्शवादी थे । उन्होने लिखा है, "काव्य का मुख्य उद्देश्य नीतिज्ञान नही है, किंतु नीतिज्ञान का जो उद्देश्य है काव्य का भी वही उद्देश्य है, याने चित्तशुद्धि ।" उन्होने उत्तरचरित की समालोचना करते हुए और भी लिखा है, "जो लोग कुकाव्य निर्माण कर दूसरे के चित्त को कलुषित करने की चेष्टा करते है, वे चोरो की तरह मनुष्य-जाति के शत्रु है और उनको चोरो की तरह शारीरिक दड दिया जाना चाहिए ।"

ऊपर के उद्धरणो से स्पष्ट है कि वगला के प्रथम दिग्विजयी उपन्यासकार साहित्य मे किस मत को लेकर चलने के पक्षपाती थे, किंतु सौभाग्य से वह उपन्यास लिखते समय हमेशा अपने इस मत को स्मरण मे न रख सके । जिसे वह कला समझते थे, उन्ही सामाजिक शक्तियो ने उन्हे डिगा दिया, और उन्हे वहुत-कुछ

[1] आधुनिक वगला-साहित्य—श्री मोहितलाल मजुमदार

वास्तविकता से बाध रक्खा। अवश्य यह भी है कि अत तक चलकर उन्होने खीच-खाचकर अपने आदर्श को निभा ही दिया। उपन्यासो की भलाई के हक मे एक और भी अच्छी बात हुई, वह यह कि वकिमचद्र के सामने उपन्यास के आदर्श के रूप मे अग्रेजी के रोमाटिक लेखको की रचनाए थी। वगला के सुप्रसिद्ध आदर्शवादी कवि-समालोचक श्री मोहितलाल ने वकिमचद्र के उपन्यासो की इस प्रकार से सक्षिप्त आलोचना की है

"उनके पहले उपन्यास 'दुर्गेशनदिनी' मे साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ भी नही था। 'दुर्गेशनदिनी' वगला का पहला रोमास हे, जो अग्रेजी रोमासो के सुपरिचित आदर्श पर लिखा हुआ है। 'मृणालिनी', 'युगलागरीय' 'राधा-राणी' भी इसी एक ही आदर्श पर रचित है। हा 'मृणालिनी' की कल्पना मे देश-प्रेम ने पहले-पहल प्रवेश किया है। उनके द्वितीय उपन्यास 'कपालकुण्डला' को उत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। चौथा उपन्यास 'विपवृक्ष', 'चद्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' समाज-समस्या और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गये थे। 'आनन्दमठ' और 'राजसिंह' मे देश-प्रेम की प्रधानता है, 'देवी चौधुरानी' तथा 'सीताराम' मे धर्म समस्या प्रवल है, 'रजनी' मे निरा मनोविज्ञान तथा 'इदिरा' में गल्प-रचना का ही आनन्द है। देखा गया कि विशुद्ध उपन्यास अर्थात् जिनमे समाज-नैतिक तथा धर्म-नैतिक कोई उद्देश्य नही है उनकी सख्या वहुत कम है, ऐसी रचनाओ मे 'कपालकुण्डला' सवसे सुन्दर कृति है। जिनमे स्वदेश, समाज, धर्म या नीति से प्रेरणा ली गई है उनमे जगह-जगह पर कल्पना की चरम स्फूर्ति हुई है, चरित्र की महिमा तथा घटना-विन्यास की चतुरता के कारण वह नाट-कीय सौदर्य से मडित हो गये है। समस्या की खीचातानी मे बहुत-सी भयकर त्रुटिया रहने पर भी वकिम की जो कुछ सृजन-शक्ति है उसने मानो इन्ही समस्याओ के घात-प्रतिघात मे पडकर पत्थर पर घिसे हुए इस्पात के फले की तरह चिनगारियो की वर्षा की है।"

वकिमचद्र ने यूरोप के रोमाञ्चिक शैली के पौधे को भारत मे लाकर स्थापित ही नही किया, बल्कि उसको संपूर्ण रूप से यहा की आबोहवा का अभ्यस्त (Acclimatise) करके यही की मिट्टी से रस ग्रहण कर पल्लवित-पुष्पित होना सिखलाया। इसमे कोई सन्देह नही कि वकिम यूरोपीय साहित्य के ऋणी है, किन्तु इस ऋण के परिमाण के सबध मे लोगो का ज्ञान अक्सर अतिरजित है। एक

विद्वान् लेखक श्रीकुमार बनर्जी का कथन है कि इस बात का कोई प्रमाण नही कि बकिम जेन अस्टेन, डिकेस, थैकरे तथा जार्ज इलियट से परिचित थे। हा, स्काट के साथ उनका परिचय नि सदेह है। उनके एक उपन्यास मे लार्ड लिटन की छाया भी है, किन्तु "उनकी कला सपूर्ण रूप से मौलिक है और इन दिग्गजो का अनुकरण-मात्र नही।" हमने जो उपमा इस पैरे के प्रारम्भ मे दी है वह बिल्कुल सत्य है, उन्होंने पाश्चात्यो से यह तो सीखा कि उपन्यास का स्वरूप तथा ढाचा कैसा होना चाहिए, किन्तु इसके अलावा उनके उपन्यासो का माल-मसाला सभी स्वदेशी है। बकिम से पौराणिक-क्लासिक साहित्य युग का अवसान होकर आधुनिक बगला साहित्य का सूत्रपात होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया, वह उपन्यासकार बकिम के बारे मे ही है, पर बकिम एक राष्ट्र-निर्माता भी थे, यह उनके दो उपन्यासो 'देवी चौधुरानी' और 'आनदमठ' से विशेषकर 'आनदमठ' मे प्रमाणित होता है। ये उपन्यास-कला की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि के नही है, फिर भी इनमे लेखक ने एक नया तत्व पेश किया। 'आनदमठ' के सत्यानद तथा 'देवी चौधुरानी' के भवानीपाठक एक विराट आदर्श को लेकर चलते है। इन दोनो मे जिस प्रकार देशभक्ति, राजनैतिक दूर-दृष्टि तथा सगठन-शक्ति दिखाई गई है, वह देखने मे किसी प्राचीन युग के चित्र है, पर वास्तव मे लोगो के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते है। जिस युग का चित्रण इन दोनो पुस्तको मे किया गया है, उसमे इस प्रकार की देशभक्ति आदि की भावना नही थी।

इस प्रकार बकिम ने इतिहास के नाम पर या यो कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा कि ऐतिहासिक कहानी की आड मे एक राजनैतिक आदर्श लोगो के सामने रक्खा। यह कितनी बडी बात थी, इसे आज अच्छी तरह समझने और उसके मूल्याकन करने का समय आ गया है। अवश्य ही 'आनदमठ' या 'देवी चौधुरानी' को इस अर्थ मे ऐतिहासिक उपन्यास कहना उचित न होगा कि उनमे किसी ऐतिहासिक काल का वर्णन दिया गया है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि जिस आदर्श को जिस काल के माथे मढकर पेश किया है, उस काल मे वह आदर्श सभव नही था।

उस समय बगाल बल्कि सारा भारत क्षुद्र स्वार्थो के पीछे दौड रहा था, कोई सामूहिक भावना नही थी। पुराना साम्राज्य बिखर चुका था। यद्यपि यह

साम्राज्य नाम के लिए मुगल साम्राज्य था, तथापि छोटे-छोटे मुसलमान सामन्त इसके सबसे बडे दुश्मन साबित हुए। ऐसे समय मे बस एक आदर्श था, वह यह कि आगे आप, फिर बाप। सच तो यह है कि लोग अपने-आपको सम्हालने मे इतने लगे हुए थे कि वे किसी बृहत्तर बात के लिए समय या कर्म-शक्ति नही लगा सकते थे।

इस सर्वव्यापी बिखराहट के समय बकिमचद्र ने 'आनदमठ' मे सतान सप्रदाय की आदर्श निष्ठा रखी। सतान सप्रदाय की कुछ ऐतिहासिक नींव है, पर उसके नाम से जो देश-प्रेम, आदर्शवाद, निस्स्वार्थ भावना आदि दिखलाई गई है, वह उपन्यासकार बकिमचद्र को ऋषि बकिमचद्र, बल्कि और भी स्पष्ट शब्दो मे कहा जाय तो राष्ट्रनिर्माता बकिमचद्र की, मर्यादा प्राप्त होती है। इतिहास मे सतान सप्रदाय का जो चित्र मिलता है, उसमे उसके लोग लूट-खसोट करते हुए, अराजकता फैलाते हुए पाये जाते है। इस प्रकार लूट-खसोट करने के पीछे राजनैतिक उद्देश्य स्पष्ट नही था। हा, यह कहा जा सकता है कि असतोष प्रकट करने का यह एक उपाय था।

पर बकिमचद्र ने 'आनद मठ' मे सतान सप्रदाय को एक आदर्शवादी सुसगठित दल के रूप मे दिखलाया है। बकिमचद्र ने सतान सप्रदाय का सबध उसके पहले जो महान् दुर्भिक्ष हुआ था, उससे जोडकर यह दिखलाया कि दुर्भिक्ष के कारण सतान सप्रदाय पुष्ट हुआ था।

यह भी द्रष्टव्य है कि 'आनद मठ' मे दो बार अग्रेज़ सैनिक टुकडियो की हार कराई गई है। यह वह समय था जब १८५७ की स्वतन्त्रता की चेष्टा व्यर्थ होने की बात अभी लोगो के दिमाग मे ताजी थी, उसके दमन के रोगटे खडे कर देनेवाले उपाय अभी तक लोगो को याद थे, ऐसी अवस्था मे उपन्यास के पीछे के दरवाजे से ही सही आत्म-सम्मान तथा आत्म-गौरव को जाग्रत करना बडी भारी बात थी।

सबसे बडी बात यह है कि 'आनद मठ' के सबध मे जो बात ऊपर बताई गई है, बाद के लोगो ने उसे इसी रूप मे लिया। 'आनद मठ' एक उपन्यास होते हुए भी बाद के युग के क्रातिकारियो की कई पुश्तो के लिए पाठ्य-पुस्तक और प्रचार-पुस्तक के रूप मे हो गया। वन्देमातरम् उठते हुए राष्ट्रीय आदोलन का नारा बन गया। 'आनद मठ' को इस दृष्टि से

विचार करने पर उसे केवल एक उपन्यास के रूप मे देखने की प्रवृत्ति से हम बच जायेगे।

डा० श्री कुमार बद्योपाध्याय ठीक ही कहते है, "आनद मठ का वास्तविक गौरव वस्तुवादी उपन्यास के रूप मे नही है। इसने बगाल के पाठक-समाज पर जो व्यापक प्रभाव छोडा है, वह धर्म-ग्रथ के अतिरिक्त और किसी प्रकार साहित्य के भाग्य मे नही प्राप्त रहा। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि 'आनद मठ' ने आधुनिक बगाल को जन्म दिया है, आधुनिक बगाली के हृदय और मनोवृत्ति को गठित किया है, जो देशात्म-बोध आज प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति की साधारण मानसिक सम्पत्ति है, बकिम ने ही उसका पहला अकुर उगाया था। उन्होने ही यूरोप के देश-प्रेम के पौधे को बगाल के विशेष वातावरण मे, बगाली पूजा-सामग्री की सहायता से बगाली हृदय को भक्ति चदन-चर्चित करके बगाल मे प्रतिष्ठित किया। वर्तमान युग मे ऐसी कोई भी राजनैतिक सस्था बगाल मे नही है, जिसकी पहली प्रेरणा 'आनद मठ' से न आई हो। बगालियो की राजनीति-चर्चा की विशिष्टता राजनैतिक व्याख्यान की भाषा तक बकिम की कल्पना के रग से रगी हुई है। बकिम ने मूर्ति-पूजक बगालियो के मानसिक स्वर्ग मे एक नई देवी प्रतिमा की स्थापना की और बगालियो के हृदय की भक्ति को एक नये मार्ग मे परिचालित किया। विश्व-साहित्य मे जो थोडे-से युगातकारीग्रथ है, 'आनद मठ' को उनमे प्रधान स्थान प्राप्त है। वदेमातरम् आधुनिक बगाल का वेदमत्र है। इसलिए 'आनद मठ' को केवल साहित्य की दृष्टि से विचार करने पर इसकी सपूर्ण महिमा या प्रभाव समझ मे नही आ सकता। इसका स्थान साधारण साहित्य-लोक से बहुत ऊचा है।"

इस दृष्टि से देखने पर 'आनन्द मठ' की सच्ची महिमा समझ मे आती है। बगाल के बाहर भी जितने क्रातिकारी आदोलन हुए, उनमे 'आनद मठ' का महत्वपूर्ण स्थान रहा। मुझे स्मरण है कि जिन दिनो मैं क्रातिकारी बना, उन दिनो यानी १९२२-२३ के जमाने मे सबसे पहली किताब जो किसी नौजवान के हाथ मे उसके मन की गति जानने तथा उसके मन को ढालने के लिए दी जाती थी, वह थी 'आनद मठ'।

ाकोरी युग के पहले के जो क्रातिकारी थे, वे भी इस पुस्तक का उपयोग

इसी प्रकार करते थे। सच तो यह है कि उत्तर भारत का सारा क्राति-आदोलन लगभग १६२५ तक सतान सप्रदाय के आदर्श पर चलता रहा और उसमे धर्म का वहुत अधिक प्रभाव रहा। यहापर मैं यह वताने नही जा रहा हू कि किस प्रकार वाद का आदोलन धार्मिक भावना से मुक्त हो गया और उसने एक दूसरा आदर्श अपनाया।

मै समझता हू कि विश्व-साहित्य मे 'आनद मठ' ही एकमात्र उपन्यास है, जिसमे का एक गीत वाद को राष्ट्रीय गीत वन गया। यह एक अनहोनी ऐतिहासिक घटना है, पर यह केवल एक आकस्मिक घटना नही है। ऐसा नही कि लोगो ने उपन्यास को ताक पर रख दिया हो, और उसके अन्तर्गत गीत को अपनाया हो। नही, लोगो ने पुस्तक को भी एक धर्म-ग्रथ की तरह, नये युग की गीता की तरह, अपनाया, और साथ-ही-साथ उन्होने वदेमातरम् के नारे को अपनाया। मुझे डर है कि वदेमातरम् के कवि के रूप मे वकिमचद्र को जिस प्रकार स्मरण किया जाता है, वह उससे कही अधिक सम्मान और कृतज्ञता के अधिकारी है। वह केवल अपने साहित्यिक कार्यो के लिए नही, केवल वदेमातरम् के कवि होने के नाते नही, वल्कि एक कर्तव्यच्युत, पतित, पददलित जाति को एक अमृतोपम आदर्श का पता देने के लिए, त्याग और साधना का एक जीता-जागता सामूहिक चित्र उपस्थित करने के लिए हमारे पूज्य और श्रद्धेय हो चुके है। साहित्यकार के रूप मे उनका जो स्थान है, वह तो है ही।

डाक्टर सुवोध सेन ने वकिमचद्र के उपन्यासो को तीन वर्गो मे विभक्त किया है। 'राजसिह' एक सुवृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है, 'कृष्णकात का विल', 'विष-वृक्ष' आदि उपन्यासो मे सामाजिक और पारिवारिक जीवन का चित्र खीचा गया है। 'दुर्गेशनदिनी', 'कपालकुडला', 'मृणालिनी' आदि मे इतिहास है, पारिवारिक जीवन का चित्र भी है, किन्तु ये फिर भी ठीक-ठीक न तो ऐतिहासिक उपन्यास ही है और न पारिवारिक जीवन की कहानी है, क्योकि इनमे कल्पना का एक ऐसा ऐश्वर्य है जो पारिवारिक जीवन की वास्तविकता का उल्लघन कर गया है, साथ ही जिसने इतिहास के दावे को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नही किया है। कल्पना की यह जो समृद्धि है, यह न केवल हमारे गिनाये हुए तीसरी किस्म के उपन्यासो मे परिलक्षित हुई है, वल्कि वकिम के सामाजिक और ऐतिहासिक

उपन्यासो मे भी इसी समृद्धि का बोलबाला है। बकिम के ऐतिहासिक उपन्यास मे अतीत युग के युद्धविग्रह या सामाजिक जीवन का पुखानुपुख और वास्तविक चित्र नही दिया गया है। उनका ऐतिहासिक उपन्यास थैकरे के हेनरी ऐस्माड की श्रेणी के उपन्यास से सपूर्ण रूप से भिन्न है। उनकी कल्पना ने इतिहास को विचित्र वर्णसपन्न बनाया है। बकिम के पात्रो का प्रधान गुण यह नही है कि उनमे विभिन्न प्रवृत्तियो का समावेश नही, बल्कि एक प्रवृत्ति का ऐश्वर्य है। केवल दो-एक पात्रो मे ही उन्होने साधारण मनुष्य का चित्र खीचा है। ऐसे साधारण मनुष्यो मे सबसे पहले नगेद्रनाथ या गोविदलाल का स्मरण हो आयेगा।

डाक्टर श्रीकुमार के अनुसार बकिम मे पाप के प्रति स्वाभाविक वितृष्णा थी, वर्तमान युग के वस्तुवादी उपन्यासकारो की तरह पाप का विश्लेषण करना उन्हे पसद नही था। बकिमचद्र ने अपने कई उपन्यासो मे इतिहास का आश्रय लिया है, फिर भी उन्होने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास एक ही—'राजसिह'—लिखा है। उनके अपने मतानुसार भी 'राजसिह' ही उनका एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।[१] जहातक काल्पनिक जगत मे उडान भरने की बात है बकिमचद्र देवकीनदन खत्री की ही जाति के थे, किंतु बकिम तथा खत्री मे फर्क यह था कि एक ने परिष्कृत स्वरूप को अपनाया, दूसरा ऊल-जलूल कल्पना-जगत मे विचरता रहा, एक ने आधुनिक कला को अपनाकर कल्पना की उडान भरी, दूसरा केवल चडूखानो मे भटकता रहा। बकिम का मनोविज्ञान से कोई दृढ सबध नही था। उनके उपन्यासो मे मानसिक द्वद्व और परिवर्तन का चित्र बहुत कम है। जहा मानसिक परिवर्तन भी है, वहा वह बहुत-कुछ आकस्मिक है, लेखक उसको वर्णित परिस्थितियो मे स्वाभाविक करके दिखा नही पाये।

---

[१] शरत्चद्र—डाक्टर सुबोध सेन

: ११ :

कवि माइकेल मधुसूदन

एक नाटककार के रूप मे हम माइकेल का परिचय पहले ही दे चुके है। माइकेल मधुसूदन दत्त, जैसा कि उनके नाम के साथ लगे हुए माइकेल शब्द से स्पष्ट है, ईसाई धर्मावलम्बी थे, साथ ही उनका परिचय ग्रीक, लेटिन आदि साहित्य के साथ प्रत्यक्ष था। वह पहले अग्रेजी मे ही काव्य-रचना करना चाहते थे, पर मित्रो के समझाने पर वगला भाषा की ओर झुके और उसके श्रेष्ठतम कवियो मे हो गये। उनका महत्व कितना अधिक है यह इसीसे ज्ञात हो सकता है कि डा० सुकुमार सेन ने उन्हे आधुनिक वगला-काव्य का वाल्मीकि माना है।

माइकेल की जीवनी सक्षेप मे यह है कि "वह पाश्चात्य की करीव-करीव सभी प्रधान भाषाए जानते थे, पाश्चात्य मे उन्होने खूब भ्रमण भी किया था। पहले उन्होने अग्रेजी मे कविता लिखी, किन्तु वाद मे सुझाने पर वगला मे लिखने लगे। एक स्त्री के प्रेम मे पडकर वह ईसाई हो गये थे। कहना न होगा कि ऐसे व्यक्ति मे पाश्चात्य कितनी प्रवलता के साथ होगा, किन्तु वह चाहे कितना भी प्रवल हो, कवित्व उनमे प्रवलतर था, तभी वह न तो गुमराह हुए, न उन्होने हवा के सामने घुटने टेके, न उनका काव्य कही अजीर्ण रोगी का उद्गार ज्ञात होता है। माइकेल की काव्य-प्रेरणा मे सबसे प्रबल जो तत्व है वह है वाहरी वस्तु का वाहरी रूप। केवल विचित्र वस्तुओ का सग्रह कर उनको दूर मे स्थापन कर या पास मे सजाकर उनके दर्शन या स्पर्शन के आनन्द मे ही वह विभोर है। छोटी या बडी तस्वीर बात-की-वात मे वातो से आखो के सामने खडी कर देने मे, या कारीगर की तरह मूर्ति की सुषमा खोज निकालने मे उन्हे कितना आनन्द है, उनकी कल्पना मानो उल्लास की विह्वलता मे थिरकने लगती है। उपमा के वाद उपमा का जाल बिछाकर वे जिस रूप को प्रकाश करते है वह विचारो की झलक नही, वाहरी वस्तुओ के विन्यास का सौन्दर्य है। विषाद की प्रतिमा स्वरूपा बन्दिनी सीता के माथे पर सेदुर को वह गोधूलि के ललाट मे नक्षत्र रत्न की भाति देखते हैं। वह वस्तु को भाव के द्वारा या भाव को वस्तु के द्वारा स्पष्ट करने के आदी नही, वह तो एक वस्तु को स्पष्ट करने के लिए बहुत-सी वस्तुओ

को लाकर आख के सामने ढेर कर देते है, वह चित्र को चित्र से ही स्पष्ट करते है। आलोक और छाया इन दो ही वर्णों मे सगमरमर की मूर्ति जैसे अपनेको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उनकी बनाई हुई मूर्तिया अत्यन्त सरल और सामान्य सुख-दु ख की छाया और आलोक से हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है। इस-लिए देखने मे मिल्टन को अनुसरण करते हुए मालूम होने पर भी मधुसूदन मनुष्य के ससार को पीछे और नीचे छोडकर महाकाव्य के अत्युच्च कल्पलोक मे सीमाहीन दिग्देश मे अपनी कल्पना को भेज नही पाये। मनुष्य को ही उन्होने वडा करके देखा था। पुरुष का पौरुष तथा नारी के नारीत्व ने उनके मन की जीभ मे जो रस का सचार किया था, उसीकी व्याकुलता मे ये काव्य लिखे गये है। माइकेल को पढने से यह मालूम होत है जैसे इस गायनप्राण वगला कवि ने एक नये जगत का आविष्कार किया हो, वहा हृदय-समुद्र की वल खाई हुई लहरो की अलख फेन-रेखा वुलवुलो की माला मे विलुप्त हो जाती है, किंतु उसीके साथ दूर से आया हुआ जल का कलकल और भग्ननौका-यात्री का आर्तनाद एकात निकुज के वशी-रव को एक अपूर्व वेदना से प्रतिध्वनित कर देता है। कवि-कल्पना के इस नये अभियान ने नये साहित्य की गति को एक निर्देश दिया था, फलस्वरूप मन के सूक्ष्म लीला-विलासो से वेखवर होकर मनुष्य को देह के राज्य मे खडा करवाकर उसके स्वाभाविक आकार, प्रकार तथा रूप को देखने की आकाक्षा जगी। पाप-पुण्य से परे उसके प्राणो की उमगे नियति के अमोघ नियम से कैसी भीषण-मधुर हो उठती है, इस वगला कवि के चित्त मे उसीकी प्रेरणा जगी थी।"[१]

कवीन्द्र ने माइकेल के सवध मे लिखा है—"आधुनिक वगला के कविता-साहित्य मे माइकेल मधुसूदन ने जो इसके प्रथम द्वारमोचक थे, सवसे वढकर दु साहस दिखलाया। उन्होने जिस मिलटनी वाढ से दुरूह शब्द तरग उठाकर वगला भाषा को तरगित कर दिया, उससे वढकर अपरिचित और अनभ्यस्त वगाली पाठको के लिए कुछ भी नही था। यह विल्कुल अपरिचित और अन-भ्यस्त होते हुए भी इतना अपरिचित नही था कि वगाली पाठक इसे समझ ही न सके। वगाली शिक्षित समाज अग्रेजी साहित्य के जरिये इस विस्तृततर

---

[१] आधुनिक वगला साहित्य, पृष्ठ ९६

जगत् से परिचित हो चुका था। उस समय के शिक्षित बगाली मिलटन, शेक्सपियर की आज से ज्यादा चर्चा करते थे। इसलिए ज्योंही बगला भाषा के वाद्य-यत्र के जरिये वही परिचित ताल, लययुक्त जगत् उनके सामने आया तो वे वाहवाह करने लगे। मधुसूदन की प्रतिभा के कारण बगला काव्य के रचमच पर पहले-पहल प्राच्य-पाश्चात्य गले मिले।"

वगला साहित्य मे पाश्चात्य का प्रभाव इस प्रकार द्रुत गति से रग लाने लगा और अब भी ला रहा है, उसका श्रेय बहुत अश मे पद्य-साहित्य मे मधुसूदन को है। रवीन्द्रनाथ ने जो कहा है कि वे बगला पद्य-साहित्य के द्वारमोचनकारी है वह ठीक ही है। प्राक-पाश्चात्य वगला तथा भारतीय साहित्य मे कुछ विशेष विषय थे जैसे राम और कृष्ण की कथा, वैष्णव भक्ति का विभिन्न रूप, बहुत हुआ दो-चार राजे-महाराजे की कथा गा दी गई। तुलसीदास, सूरदास, चडीदास, विद्यापति, चद्रवरदाई, भारतचद्र, तुकाराम इन्ही को लेकर गाते रहे। इसके सब तरह के मिश्रण गाये, और लिखे जा चुके थे। भारतीय कविता-साहित्य इन्ही की चहार-दीवारी मे घूम-घूमकर कातर क्रदन कर रहा था। इस वास्टिल से उद्धार करने के लिए एक विचारगत क्राति की जरूरत थी। वह क्राति पाश्चात्य प्रभाव के कारण सभव हुई। मधुसूदन ही वे क्रातिकारी थे, जिन्होने इसका फायदा उठाकर इसको सभव किया। यह बात नही कि माइकेल ने राम, कृष्ण और पौराणिक गाथाओ को बिलकुल त्याग दिया, बल्कि सच बात तो यह है माइकेल ने अपनी श्रेष्ठ रचनाए पौराणिक कहानियो तथा व्यक्तियो के इर्द-गिर्द लिखी, किन्तु उनमे एक नया जीवन, एक क्रातिकारी रूप से अभिनव दृष्टिकोण, एक नई व्याख्या तथा नया तरीका ला दिया।

मधुसूदन की रचनाओ मे 'मेघनादवध' सबसे अच्छा है। इसमे हमारे चिर-परिचित राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मेघनाद, प्रमीला आते है, किंतु कोई यदि समझे कि ये हमारे पुराणो मे वर्णित तथा वैष्णव कोमल-कात-पदावली के व्यक्तित्व हैं तो बडी गलती होगी। नाम तो वे ही हैं, घटनाओ की परम्परा तथा कथानक की समाप्ति उसी तरह है, किंतु इनके व्यक्तित्व बिलकुल बदले हुए है। 'मेघनादवध' को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि राम-रावण का युद्ध निरवच्छिन्न रूप से भले-बुरे का युद्ध नही है, बल्कि दो उच्चाकाक्षी राजाओ का युद्ध है या ज्यादा-से-ज्यादा दो सभ्यताओ के सघर्ष का युद्ध है। माइकेल का मेघनाद लक्ष्मण से

कोई बुरा आदमी नही जचता, उसका वध कोई दैत्य का विनाश नही बल्कि एक शहीद की शहादत के रूप मे हमारे सामने आता है। पुस्तक पढते-पढते ऐसा मालूम होता है कि यदि हम लडकपन से राम-लक्ष्मण की जय और मेघनाद की पराजय चाहते न आते तो कदाचित हमे मेघनाद की जय से ही तृप्ति होती। माइकेल ने मेघनाद को करीब-करीब एक दूसरा अभिमन्यु बनाकर छोडा है। माइकेल की सीता अच्छी है, किंतु प्रमीला और भी अच्छी है। सीता से प्रमीला कुछ कम महिमामयी नही मालूम होती। प्रमीला चरित्र एक नाम के अतिरिक्त सपूर्ण रूप से माइकेल की ही सृष्टि है, पौराणिको को इसकी कल्पना भी नही थी। यह प्रमीला देशी और विदेशी सभी आदर्श की तिलोत्तमा है। मालूम होता है, कवि ने इस चरित्र को बनाने मे अपने वर्णागार के सब वर्ण खर्च कर डाले है। इस प्रकार परिचित नामो को कायम रखकर उनको एक नया चरित्र देकर माइकेल ने अपनी कविता के लिए, अपने पाठको के लिए तथा अपने विचारो के लिए अच्छा ही किया है। इस प्रकार वह जो बाते काव्यामोदियो तक पहुचाना चाहते थे, वह और भी सुगमता के साथ पहुच गई। माइकेल ने एक काव्य 'हेक्टरवध' भी लिखा है, किंतु वह बगाली पाठको के गले नही उतरा। भारतीय साहित्य के सौभाग्य से माइकेल ने ओडिसि तथा बाइबल से अपने नायक नही चुने, नही तो केवल नामो के ही कारण उनकी सफलता मे सदेह होता।

'वीरागना' काव्य माइकेल की एक दूसरी अमर रचना है। इसमे वीराग-नाओ के लिखे हुए पत्रो का सग्रह है। द्वारकापति कृष्ण विदर्भाधिपति भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का लिखा हुआ एक पत्र इसमे है, जो उन्होने तब लिखा था जब उनके भाई रुक्मी ने चेदीश्वर शिशुपाल के साथ अपनी बहन के विवाह की बात चलाई। इस पत्र की लिखनेवाली रुक्मिणी है, किंतु यह पत्र करीब-करीब वैसा ही है जैसे एक कालेज की लडकी अपने प्रेमिक को लिखेगी जिसके साथ वह भाग जाने मे ही समझती है कि सुखी होगी। रिझाने के सब ही तरीके है, लज्जा भी है, साथ-साथ निर्लज्जता भी। वही आग्रह और अपने प्यारे को सातवे आसमान पर चढाकर अपनेको उसकी अयोग्या समझना। उसमे यह नही लिखा गया कि मै लक्ष्मी हू, तुम नारायण, यह मूर्ख रुक्मी एक ऐसी बात करने जा रहा है जो असभव है।

वह लिखती है—

निशार स्वपने हेरि पुरुष-रतने
कायमन अभागिनी सपियाछे तारे,
देवी साक्षी करि, वरि देवनरोत्तमे
वरभावे। नारी दासी, नारे उच्चारिते
नाम तार, स्वामी तिनि

—रात मे स्वप्न मे मैने उस नर-रत्न को देखा, तवमे इस अभागिनी ने देवताओ को साक्षी करके इस देव तथा नरो मे उत्तम को वर रूप से वरणकर उन्हे देह तथा मन सौप दिया। मै नारी हू, दासी हू, उनका नाम उच्चारण नही कर सकती, क्योकि वह पति जो है।

एक स्त्री स्वाधीनतावादी को, जो नारी की स्वतन्त्रता की खोज मे जान हथेली पर लिये फिरती है, उसको शायद इसकी अतिम पक्तियो मे दासी शब्द खटके, किंतु यदि क्षमा किया जाय तो मै कहने का साहस करूगा कि यह स्वाभाविक है। हा, आजकल के प्रेम-पत्रो मे यदि उधर से अपने को दासी लिखा जाता है तो इधर से दास भी लिखा जाता है।

रुक्मिणी आगे लिखती है—

शुनो एबे दु ख-कथा। हृदय-मन्दिरे
स्थापि से सुश्याम-मूर्ति, सन्यासिनी यथा
पूजे नित्य इष्टदेवे गहन विपिने,
पूजिताम आमि नाथे। एबे भाग्य-दोषे
चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नामे,
(शुनि जनरव) नाकि आसिछेन हेथा
वरवेशे वरिवोरे, हाय अभागीरे

—अब जरा मेरी दु ख-कहानी सुनिये। हृदय-मदिर मे उस श्याम मूर्ति को रखकर मै उसकी उसी तरह पूजा करती थी जैसे कोई सन्यासिनी अपने इष्टदेव को गहन विपिन मे पूजती है। अव दुर्भाग्य के कारण सुनती हू, ऐसी अफवाह है कि चेदिश्वर शिशुपाल नामी कोई राजा मुझ अभागी के वर-रूप मे आ रहे हैं।

कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइसो ताहार अग्रे। प्रवेशि ए देशे

हरो कोरे—हरे लये देह तौर पदे
हरिला ए मन जिनि निशार स्वपने

—सुनती हू शिशुपाल काल की तरह जल्दी आ रहा है, आप उससे भी पहले आये, और इस देश मे प्रवेशकर मुझे हर ले जाय, और उन्हीको मुझे सौप दे, जिन्होने रात्रि के स्वप्न मे मेरा मन हरण कर लिया।

'नीलध्वज के प्रति जना' नामक पत्र मे हमे जना का जो चरित्र मिलता है, वह माता तथा पत्नी के रूप मे इतनी महीयसी है कि उसके सामने सब क्लासिकल चरित्र फीके पड जाते है। जब पाडवो ने अश्वमेध का अश्व छोडा तो माहेश्वरीपुरी के युवराज प्रवीर ने उस अश्व को पकड लिया, इसके फलस्वरूप अर्जुन के हाथ से वह मारा गया। माहेश्वरीपति महाराज नीलध्वज ने इसपर युद्ध न कर अर्जुन से सधि कर ली, इसपर पुत्रशोकातुरा रानी जना ने अपने पति को लिखा—

"राजतोरण मे रण-वाद्य बज रहा है, घोडे हिनहिना रहे है, हाथी चिंघाड रहे हैं, आसमान मे राजपताका फहरा रही है, राजसेना मस्त होकर हुकार छोड रही है, किंतु आखिर क्यो ? क्या तुम इसलिए सज रहे हो कि प्रवीर बेटा का प्रतिशोध लिया चाहते हो और अर्जुन के रक्त से मेरी शोकाग्नि को बुझाना चाहते हो ? यही तो महाराज तुम्हे फबता है, तुम क्षत्रियो के मणि तथा महाबाहु हो। जाओ मतवाले गजराज की तरह किरीटी के ऊपर सूडो को आस्फालन करते हुए टूट पडो और उसका गर्व रणस्थल मे मेटकर उसके कटे हुए मुड को ले आओ। उस मूढ ने अन्याय युद्ध मे एक बालक को मार लिया, जाओ महाबाहु, जाकर उसे विनाश कर डालो। मै इस ज्वाला को फिर भूल जाऊगी। जन्म मे मृत्यु तो खैर है ही, विधाता का यही विधान है। क्षत्रकुल-रत्न वीर प्रवीर समुख समर मे खेत रहकर स्वर्ग गया है, उसपर रोने की बात ही क्या है ! राजन्, तुम पृथ्वी को पालो, क्षात्रधर्म को अपने भुजबल से पालो तो सही।'

"किंतु यह क्या, जना ? तुम क्या पागल हो रही हो ? तुम्हारी सभा मे नर्तकी नाच रही है, गायक गा रहा है, वीणा की ध्वनि उमड रही है, तुम्हारे पुत्र का हत्यारा तुम्हारे सिंहासन पर बैठा है। अब शायद वह तुम्हारा सबसे जबर्दस्त मित्र है। तुम अब अपने अतिथिरत्न की बडी सेवा कर रहे हो। कितनी लज्जा

की वात है। दु ख की यह कहानी मै अव कहू तो किससे ? क्या माहेश्वरी-पुरीश्वर नीलध्वज आज पुत्र-शोक के मारे लुप्तवुद्धि हो चुके है ? जिस दारुण विपत्ति ने राजन्, तुम्हारा पुत्र हर लिया, क्या उसीने तुम्हारी वुद्धि का भी सफाया कर दिया ? नही तो भला मुझे समझाओ कि अर्जुन आज तुम्हारी पुरी का सम्मानित अतिथि किस नाते से हो रहा है ? कैसे तुम आज मित्र रूप मे उस कर का स्पर्श करते हो जो प्रवीर के रक्त से रजित हो चुका है। क्या क्षात्र-धर्म यही है ? तुम्हारा धनुष, तूण, अस्त्र, चर्म कहा है ? दुश्मन के सीने को चुभते हुए शरो का निशाना वनाने की वजाय क्या आज तुम उन्हे वातो से सभा मे तुष्ट कर रहे हो ? जव तुम्हारी ये वाते फैलेगी तो देश-विदेशो मे लोग क्या कहेगे ?

"मै जानती हू, लोग पार्थ को रथीश्रेष्ठ कहते है। झूठी वात, उसने भेष वदलकर स्वयवर मे लाखो राजाओ को उल्लू वनाया। ब्राह्मण समझकर उसके साथ किस राजा ने ढग से लडाई की होगी ? दुष्ट ने खाडव कृष्ण की सहायता से जलाया, फिर शिखडी की आड लेकर महापापी ने कौरवो के गौरव वृद्ध पितामह भीष्म को हराया। गुरु द्रोणाचार्य को उसने किस छल से मारा, जरा सोचो तो। जव पृथ्वी ने रुष्ट होकर महायशा कर्ण के रथ के पहियो को निगल डाला तो तव उस वर्वर ने कर्ण को मार डाला। मुझे वतलाओ तुम तो स्वय महारथी हो। क्या यह सव महारथीपना है ? यह तो व्याध का काम है कि छल से सिह को मारता है, किंतु सिह अपने रिपु को पराक्रम से ही परास्त करता है।

"राजन्, तुम क्या नही जानते हो। न मालूम आज किस कारण पार्थ के सामने तुम्हारा सिर झुका हुआ है। क्या ब्राह्मण आज चडाल के पैर की धूल लेगा ?.. किंतु यह सव उलहना व्यर्थ है। तुम आखिर मेरे वडे ही हो, यदि मै तुम्हारी भर्त्सना करू तो मै केवल पाप की भागी वनूगी। मै कुल-नारी हू, विधना का यही विधान है कि मैं पराधीन हू। मुझमे वह शक्ति नही कि अपनी शक्ति से अपनी इच्छा पूर्ण करू। दुर्दान्त अर्जुन ने मुझे पुत्रहीना कर दिया, मालूम होता है विधाता ने इस कौन्तेय को इस कारण पैदा किया वह लोगो के सुख का नाश करता फिरे। तुम पति मेरे प्रति दुर्भाग्य से वाम हो रहे हो। फिर मैं इस ससार मे जीऊ तो किसलिए और क्यो ? आज यह विपुल

जनसख्यावाली पृथ्वी मेरे लिए निर्जन हो चुकी है। इस जले हुए ललाट पर विधना ने जो लिखा है वह अब होकर के ही रहा।

"हाय मेरा प्रवीर। क्या इसीलिए तुझे मैंने दस मास दस दिन तक कष्ट सहकर गर्भ मे धारण किया? क्या इसी प्रकार मा का ऋण चुकाया जाता है? हे आखे, तुम बरस रही हो? कौन तुम्हारे आसुओ को पोछनेवाला है? हे मन, क्यो तू जलता है? अरे मणिहीन फणी, तेरे माथे की मणि तो पाडव के शर से खड-खड हो चुकी, अब वाबी के अन्दर मुह छिपाकर रोना ही तेरे लिए रह गया है। जाओ महाबाहु, अपने मित्र पार्थ के साथ जाओ, यह अभागी तो अब महायात्रा कर इस ससार से जाती है। मै क्षत्रकुलवाली हू और क्षत्रकुल वधू भी, कैसे मैं यह अपमान सह सकती हू! मै तो जाकर जाह्नवी के जल मे अपना प्राण दिये देती हू। देखू यदि कृतान्त के यहा जाकर मेरे शोक का अन्त हो। मैं हमेशा के लिए तुम्हारे चरणो से विदा मागती हू। जब तुम अपने प्रासाद मे लौटोगे तो यदि तुम 'जना कहा है?' करके पुकारोगे तो प्रतिध्वनि जवाब देगी 'जना कहा है?"

कहा वैयक्तिक स्वतत्रतालवलेशशून्य वैष्णव-कविता और कहा माइकेल की यह पग-पग पर अपने लिए स्वतत्र रास्ता निकालकर झूमती हुई चलनेवाली कविता! माइकेल ने अपने इन भावो के आत्मप्रकाश मे कठिनता न हो, इस कारण अतुकान्त को अपनाया, किंतु कृत्तिवास, काशीरामदास तथा पदावली के पयार-छन्द को अपनाया, साथ ही उसकी गति वदलकर उसमे नये जीवन-प्रवाह का सचार किया। वह युग ही ऐसा था कि सभी क्षेत्र मे नयेपन की गुजाइश थी। आज बंगला इस मर्यादा को पहुची है कि उसमे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कविता तथा स्थूल-से-स्थूल विज्ञान लिखा जा सकता है, किंतु मधुसूदन के युग मे भाषा नये युग के प्रयोजन, वल्कि कहना चाहिए नये युग के सतत वृद्धिशील प्रयोजन, के अनुसार पिछडी हुई थी। मधुसूदन को इसलिए वीणा धारण करने के लिए वीणा की लकडी काटनी पडी, तार बनाने पडे, तव वीणा पर आलाप शुरू किया। मधुसूदन की भाषा दुरूह है, उसमे सस्कृत के तत्सम शब्द, वडे-वडे समास वहुत है, किंतु "फिर भी" समालोचक मोहितलाल लिखते है, "माइकेल के शब्दो की दुरूहता ने बगाली पाठको को उतना नही भरमाया जितना रवीद्रनाथ की अनभ्यस्त शैली ने लोगो को पहले-पहल परेशान किया।"

मधुसूदन ने इसलिए छद को तो नही त्यागा, किंतु अपनी प्रतिभा की विपुल दृष्टि से उसे अपने भावो के अनुरूप कर लिया। पदावली साहित्य के युग मे, मधुसूदन के युग मे और आज भी बगला छद एक बहुत ही सरल वस्तु है। हिंदी छदो की तरह बगला छद को आयत करने के लिए किसीको पिंगल पढने की या दीर्घ अभ्यास की जरूरत नही, यह भी एक कारण है कि बगला मे कविता की इतनी उन्नति हो सकी। प्राचीन बगला मे, सच पूछा जाय तो, पयार, त्रिपदी, चौपदी आदि चार-पाच छद थे। इनके मिश्रण से जो छद होते थे वे मिश्र छद कहलाते थे। अवश्य भारतचंद्र जैसे कवियो ने सफलतापूर्वक कुछ सस्कृत छदो की भी बगला मे आमदनी की, किंतु ये छद बगला शब्दो की उच्चारण-पद्धति के साथ सामजस्यहीन होने के कारण दूसरे कवियो ने उन्हे नही अपनाया। त्रिपदी, दीर्घ त्रिपदी और चौपदी मे यति इकरस होते थे, फिर पग-पग पर तुक मिलाना पड़ता था, इस कारण मधुसूदन को जो बगला कविता उत्तराधिकार सूत्र मे मिली वह भाव-गद्‌गद् और रीढशून्य थी। मधुसूदन ने पयार को ही लिया, किंतु उसको नये तरीके से ढालकर उसमे नये सगीत की सृष्टि की। यह असाध्य साधन वह अपनी भाषा की ही बादौलत करने मे समर्थ हुए।[1]

माइकेल ने इस पयार को ही महाकाव्य के सुर मे बाध दिया। इस प्रकार माइकेल ने केवल विचार-जगत् मे ही एक बिल्कुल नया जगत् नही पेश किया, बल्कि उस विचार के लिए उपयुक्त वाहन का भी निर्माण किया। भाषा और छद यदि भावो से आगे निकल गये या पीछे रह गये तो कवि को सफलता नही मिलती, इसलिए अधिक या कम प्रत्येक कवि को अपनी भाषा तथा छद आदि का सृजन करना पडता है। इसीको हम किसी कवि की शैली कहेगे। मधुसूदन ने जैसे पौराणिक नामो को लेकर उनको बिल्कुल अपौराणिक आधुनिक बना दिया, उसी प्रकार उन्होने बगला छदो मे विशेषकर पयार को ग्रहण करते हुए उसमे ऐसे परिवर्तन कर दिये जो वैष्णव कवियो के लिए अकल्पनीय थे। पयार मे चौदह अक्षर होते है। "उसके आठ पैर होते है, किंतु उसको कितने प्रकार से चलाया जा सकता है, इसका प्रमाण माइकेल के 'मेघनादवध' काव्य मे मिलता है।" उस महाकाव्य की अवतारणा की प्रथम पक्तियो को ही लीजिये। इन पक्तियो

[1] आधुनिक बगला साहित्य, पृष्ठ ११५

मे उन्होने विभिन्न वजन का सुर अलापा है, किसी जगह पर भी पयार को उन्होने प्रचलित यति स्थान पर रुकने नही दिया। पहली पक्ति मे ही वीरवाहु की वीर-मर्यादा सुगभीर होकर वज उठी—

सम्मुखसमरे पोडि वीर चूड़ामणि वीरवाहु[1]

फिर मानो उनकी अकालमृत्यु का सवाद जैसे टूटी हुई रणपताका की तरह टूटे हुए छदो मे टूट पडा।

चलि जबे गेला यमपुर अकाले[2]

फिर जैसे छद ने झुककर मगलाचरण किया।

कह हे देवी अमृतभाषिणी[3]

इसके वाद असली वात जो सबसे महत्वपूर्ण है, परिणाम की सूचना की तरह जैसे आनेवाली आधी के सुदीर्घ मेघगर्जन की तरह क्षितिज की एक ओर से दूसरी ओर तक प्रतिध्वनित होती है—

कोन वीरवरे वरि सेनापति पदे
पाठाइलो रणे पुन रक्षकुलनिधि
राघवारि[4] यह माइकेल का चमत्कार है।[5]

अतुकात होने के कारण कवि को तुक खोजने के लिए कही अपने भावो को कुठित नही करना पडा।

: १२ :

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण लेखक

वकिमचद्र के साथ-ही-साथ उपन्यासकार रमेशचद्र का नाम लेने की परिपाटी है। इसका कारण यह है कि रमेशचद्र (१८४८-१९०९) वकिमचद्र

---

[1] वीर चूडामणि वीरवाहु सम्मुख समर में खेत रहकर
[2] जब अकाल ही यमपुर चले गये
[3] तो बताओ हे देवी अमृतभाषिणी,
[4] राघवारि रक्षकुलनिधि ने किस वीरवर को सेनापति पद में वरण कर भेजा।
[5] देखिये सबुजपत्र १३२५ में रवींद्रनाथ का छद लेख

के वहुत-कुछ समसामयिक थे, और दोनो साहित्यकारो ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर वगला भाषा को समृद्ध किया। ऐसा मालूम होता है कि १८७२-७३ मे वकिमचद्र और रमेशचद्र नौकरी के सिलसिले मे एक साथ हुए थे, तभी वकिमचद्र ने उन्हे वगला साहित्य की ओर प्रवृत्त किया। रमेशचद्र यह समझते थे कि वह शायद सफल उपन्यासकार न हो सकेगे, पर वकिमचद्र ने उन्हे समझाया और उनके सवध मे भविष्यवाणी की कि वह वगला के अच्छे उपन्यासकार होगे।

इसपर रमेशचद्र उपन्यास लिखने के लिए तैयार हुए और एक के वाद एक उनके छ उपन्यास निकले। इन उपन्यासो के नाम है—'वग विजेता' (प्रथम पुस्तक रूप मे प्रकाशन १८७४, पहले यह 'ज्ञानाकुर' पत्रिका मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था), 'माधवी ककरण' (१८७७), 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (१८७८), 'राजपूत-जीवन-सध्या' (१८७९), 'ससार' (वगला सन् १८९३ याने लगभग और 'समाज' (१८९४)। इनमे से प्रथम दो आपात दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास ज्ञात होने पर भी इतिहास की पृष्ठभूमि मे रोमाटिक उपन्यास मात्र है। 'राजपूत-जीवन-सध्या' और 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' सचमुच ऐतिहासिक उपन्यास हैं और इनमे, जैसा कि ऐतिहासिक उपन्यासो मे होता है, ऐतिहासिक पात्रो के साथ-साथ कल्पित पात्र भी है, पर ऐतिहासिक घटनाक्रम और वातावरण का ख्याल रक्खा गया है। रमेशचद्र दत्त एक प्रसिद्ध इतिहास-कार भी थे, इसलिए उनके लिए ऐतिहासिक वातावरण का निभाना वहुत आसान था।

यहापर हम एक क्षण के लिए रुककर पाठक का ध्यान इस ओर आर्कषित करना चाहते है कि यद्यपि वन्देमातरम् गान मे 'सप्त कोटि कठ कलकल निनाद कराले' आता है, फिर भी इस युग के दोनो देशप्रेमी उपन्यासकार वकिमचद्र और रमेशचद्र अखिल भारतीय देशभक्ति से अनुप्राणित थे। वन्देमातरम् गान जिस प्रसग मे आया है, उसमे कदाचित् त्रिश कोटि देना सभव नही था क्योंकि 'आनद मठ' की सारी कहानी वगाल के एक स्थानीय विद्रोह के इर्द-गिर्द प्रवाहित होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से तो सप्त कोटि का आदर्श भी उस ऐतिहासिक आदोलन पर लादना बहुत वडा वोझ था, यद्यपि जैसा कि मैं पहले ही वता चुका हू, इस प्रकार एक सीमित और छोटे-से आदोलन पर एक बृहत् आदर्श लादने मे बकिम का जो उद्देश्य था, उसे देखते हुए वह ठीक ही था।

बकिमचद्र के 'राजसिंह' और रमेशचद्र के 'महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात' तथा 'राजपूत जीवन सध्या' अखिल भारतीय देशभक्ति की उपज है, न कि प्रादेशिकता की। मध्ययुग मे राजपूतो को कोई विशेषता नही दी जाती थी, राणा प्रताप जैसे व्यक्ति की बात और है। समस्त राजपूत जाति को एक वीर जाति के रूप मे पेश करने और भारत के सामने एक आदर्श के रूप मे खडा करने का श्रेय कर्नल टाड (चाहे उनका इतिहास कसौटी पर कितना भी लचर सिद्ध हो चुका हो) और बगाल के इन दो उपन्यासकारो तथा उनके बगाली अनुकरणकारियो को बहुत-कुछ प्राप्य है। केवल यही नही, महाराष्ट्र को भी इसमे पहले-पहल शरीक किया गया। बाद को चलकर डी० एल० राय आदि नाटककारो ने इसी परिपाटी को कायम रक्खा। यहा यह बता दिया जाय कि इन उपन्यासो का अनुवाद फौरन हुआ और उसने उठती हुई अखिल भारतीय देशप्रीति को पुष्ट करने मे हाथ बटाया।

यहा एक बात यह भी बता देना उचित होगा कि इन उपन्यासो को केन्द्र बनाकर, बल्कि इन उपन्यासो से पुष्ट होकर जो अखिल भारतीय राष्ट्रीयता की धारा चल पडी, वह अनिवार्य रूप से हिंदू राष्ट्रीयता हो गई। 'आनद मठ' के सतान सप्रदाय के लोग सब विदेशी शासन के विरुद्ध थे, इस कारण वे मुस्लिम शासन के विरोधी थे। इसी प्रकार राजपूतो और मराठो का झगडा मुसलमान शासको से ही था। इसका नतीजा यह हुआ कि इस राष्ट्रीयता मे मुसलमानो का, विशेषकर हमारे देश के पिछडे हुए मुसलमानो का, कोई स्थान नही रहा। हमारे यहा की परिस्थिति मे यह कैसे आशा की जा सकती थी कि हमारे मुसलमान भाई इन रचनाओ मे से मुस्लिम विरोध को यह कहकर उडा देगे कि खुल्लमखुल्ला अग्रेजो का विरोध करना सभव नही था, इसलिए इतिहास की आड ली गई थी, वस्तुत लेखको का अभिप्राय मुसलमानो का विरोध करना नही था, क्योकि अब तो वे भी गुलाम हो चुके थे। सच तो यह है, जैसा कि मैंने अन्यत्र बहुत विस्तार के साथ दिखलाया है कि जिसे मुस्लिम काल कहा जाता है, उसमे भी उच्च वर्ग के थोडे मुसलमानो के अतिरिक्त बाकी सब मुसलमान हिंदुओ की तरह ही शोषित और पददलित थे, बल्कि पूर्ण सत्य तो यह है कि हिंदुओ मे भी सामत तथा उच्च वर्ग के लोग शासको के धर्मावलबी न होते हुए भी शासन मे साझीदार थे। इस पुस्तक मे इस प्रश्न पर

सक्षेप मे इतने से अधिक कहने की गुजाइश नही है ।

रमेशचद्र के बाकी दो उपन्यास सामाजिक थे । रमेशचद्र ने इन उपन्यासो मे गाव की गृहस्थी का बहुत सुदर चित्र खीचा है । इसपर डा० सुकुमारसेन का यह कहना है कि "उनकी तरह का जीवन नगरवासी धनी सतान के लिए ही उपयुक्त था । रमेशचद्र से पहले और किसीने भी बगला साहित्य मे ऐसा शात, कोमल, मधुर पल्लीचित्र नही प्रस्तुत किया ।"

रमेशचद्र दत्त ने उपन्यासो के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र मे भी बडा उपयोगी कार्य किया । उन्होने ऋग्वेद के बगला अनुवाद का प्रकाशन आरभ किया । इसके अतिरिक्त उन्होने सब धर्मशास्त्रो का निचोड भी हिंदूशास्त्र नाम से दो खडो मे प्रकाशित किया । रमेशचद्र ने अग्रेजी मे रामायण और महाभारत का सक्षिप्त अनुवाद किया । इसके अतिरिक्त अग्रेजी मे उनकी कई अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनसे अखिल भारतीय क्षेत्र मे भी वह बहुत प्रसिद्ध हो गये ।

बकिमचद्र के एक बडे भाई **संजीवचद्र** (१८३४-१८८९) अच्छे लेखक हो गये हैं । उन्होने दो उपन्यास, दो कहानिया, एक ऐतिहासिक आख्यायिका और अन्य कई फुटकर चीज़े लिखी है । सजीवचद्र भी बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, पर उनमे अपने छोटे भाई की तरह अध्यवसाय का अभाव था । 'जाल प्रताप चाद' नामक पुस्तक की भूमिका लिखते हुए उन्होने लिखा था—"हम लोगो का कोई इतिहास नही है । जिसे हम बगालियो का इतिहास करके पढते है, वह अग्रेजो का इतिहास है । बगभूमि पर अग्रेज़ो के कीर्ति-कलाप को बगालियो की वस्तु करके हम ग्रहण कर रहे है । इस भ्रम को दूर करने का समय अभी नही आया है । जब वह समय उपस्थित होगा तो कही इतिहास के लिए उपयोगी उपकरण का अभाव न हो इस आशा से एक युग की सामाजिक दो-चार बातो को लिख रखने की चेष्टा हो रही है, इसलिए इस समय के लिए जाली राजा को मैंने उपलक्ष्य बनाया है ।"

सजीवचद्र शक्तिशाली लेखक थे, यहातक कि यह कहा गया है कि सजीवचद्र मे रवीद्रनाथ का पूर्वाभास प्राप्त होता है । स्वय रवीद्रनाथ भी उनके प्रशसक थे, उन्होने सजीवचद्र के सबध मे लिखा था कि बहुत थोडे-से लोग ऐसे है जो छापे के हरफो मे मजलिस जमा पाते है, सजीवचद्र उन थोडे-से लोगो मे है, जो यह सामर्थ्य रखते है ।

वकिमचद्र के सवसे छोटे भाई **पूर्णचद्र** भी उपन्यासकार थे। उन्होने दो उपन्यास लिखे। समसामयिक उपन्यासकारो मे कई ऐसे हुए, जो उस युग मे प्रसिद्ध रहे। उदाहरणस्वरूप **दामोदर मुखोपाध्याय** (१८५३-१९०७) ने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे। **देवीप्रसन्न राय चौधुरी** (१८५४-१९२०) ने बहुत-से उपन्यास लिखे। इनके सभी उपन्यास शिक्षामूलक पर इकरस थे।

सुप्रसिद्ध ब्राह्म नेता **शिवनाथ शास्त्री** (१८४७-१९१९) ने भी कई उपन्यास लिखे। उन्होने कई काव्यो की भी रचना की थी। उनका पहला उपन्यास 'मझली वहू' १८७९ मे प्रकाशित हुआ था और अगले साल ही उसका दूसरा सस्करण निकल गया था। वकिमचद्र के किसी भी उपन्यास का पहला सस्करण इतनी जल्दी समाप्त नही हुआ था। उनका दूसरा उपन्यास 'युगान्तर' १८९५ मे और तीसरा उपन्यास 'नयनतारा' १८९९ मे प्रकाशित हुआ था। रवीद्रनाथ ने इनके उपन्यासो की बहुत प्रशसा की थी। पर शिवनाथ शास्त्री की सबसे मूल्यवान रचना उनका 'आत्मचरित्र' है। बगला मे बहुत-से लोगो ने आत्मकथा लिखी है, पर शिवनाथ शास्त्री की आत्म-कथा फिर भी महत्वपूर्ण है, क्योकि उस समय के समाज का बहुत सुन्दर चित्र उसमे प्राप्त होता है।

स्वर्णकुमारी देवी भी बगला साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यास लिखकर बहुत प्रसिद्ध हो गई हे। उनका पहला उपन्यास 'दीपनिर्वाण' पृथ्वीराज सयोगिता की कहानी लेकर लिखा गया था। इसके वाद तो उनके बहुत-से उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके उपन्यासो मे 'स्नेहलता' सर्वश्रेष्ठ है। उस समय के समाज मे नये विचारो के कारण जो आलोडन-विलोडन चल रहा था, उसका चित्र पेश किया गया है।

तारकनाथ विश्वास ने भी बहुत-से उपन्यास और कहानिया लिखी। इनके एक उपन्यास 'लीला' के सवध मे रवीद्रनाथ ने लिखा था कि इस पुस्तक को पढते-पढते कई गृहस्थियो के चित्र हमारी आखो के सामने आ जाते है और इसके पात्र प्रत्येक बगाली के लिए सुपरिचित है।

चडीचरण सेन (१८४५-१९०६) ने 'टाम काका की कुटिया' का अनुवाद करके ख्याति प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होने 'महाराज नदकुमार' (१८८५) आदि कई उपन्यास लिखे।

श्रीशचद्र मजुमदार ने चार उपन्यास लिखे। श्रीशचद्र की रचना मे सरलता से अपनी बात कहने का गुण बहुत है। इद्रनाथ बद्योपाध्याय (१८४४-१९११) ने व्यगात्मक उपन्यासो की रचना की। इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि बकिमचद्र की ख्याति ही स्थायी हो सकी और उनकी ख्याति के सामने उनके समसामयिक उपन्यासकार बहुत कुछ डूब गये, फिर भी बगला साहित्य मे उपन्यास और कहानियो की साधना बडी तेजी से हो रही थी और रवीद्र तथा शरतचद्र का पैदा होना कोई आकस्मिक घटना नही है।

रवीन्द्र की प्रतिभा के सबध मे आलोचना करने के पहले हम इस युग के अन्य साहित्य का थोडा-सा परिचय देगे।

देवेंद्रनाथ ठाकुर के साथियो मे **श्री राजनारायण वसु** (१८२६-१८९९) अपने युग के बहुत अच्छे वक्ता और लेखक थे। उन्होने बहुत-सी धार्मिक पुस्तके लिखी, इसके अलावा उन्होने बगला भाषा और साहित्य पर भी एक पुस्तक लिखी। उनकी भाषा मे बोल-चाल की भाषा का पुट बहुत अधिक है। उन्होने 'ग्राम्य उपाख्यान' नामक गाव के सबध मे एक पुस्तक लिखी।

देवेद्रनाथ ठाकुर के सबसे बडे लडके **द्विजेंद्रनाथ** (१८४०-१९२६) दार्शनिक विषयो के अच्छे लेखक हो गये है। १८७७ मे 'स्वप्न प्रयाण' नाम से जो काव्य प्रकाशित किया था, वह उच्चकोटि का था। उनका पहला दार्शनिक ग्रथ १८६६ मे प्रकाशित हुआ था।

इसी प्रकार **चंद्रशेखर वसु** ने भी बहुत-से धार्मिक ग्रथ लिखे। केशवचद्र सेन (१८३८-८४) का पहले उल्लेख आ चुका है। वह १८७० मे 'सुलभ समाचार' नामक दैनिक पत्र निकाल चुके थे। कई पुस्तको मे उनके व्याख्यान सगृहीत किये गए। केशवचद्र ने नवविधान ब्राह्म-समाज का प्रवर्त्तन किया और १८८० मे उन्होने 'नवविधान' नामक एक पत्रिका निकाली। केशवचद्र के साथियो मे कई अच्छे लेखक हुए, जिनमे **गिरीशचद्र** अरबी और फारसी के विद्वान थे। उन्होने शेखसादी के गुलिस्ता का अनुवाद किया। कुरान के प्रथम बगला अनुवादक वही है। इन्होने मुहम्मद की जीवनी और परमहस रामकृष्ण की जीवनी भी लिखी। **त्रैलोक्यनाथ सान्याल** ने चिरजीव शर्मा नाम से कई धर्म और नीति सबधी पुस्तके, दो उपन्यास और तीन नाटक लिखे।

स्वामी विवेकानद (१८६२-१९०२) ने बगला मे लिखने के उद्देश्य से कुछ

नही लिखा, पर वह बगला के बहुत अच्छे वक्ता थे और उन्होने जो कुछ थोडा-बहुत बगला मे लिखा, उसमे उनकी अपनी ओजपूर्ण शैली स्पष्ट हो जाती हे। उनके बगला व्याख्यानो का भी सग्रह प्रकाशित हुआ।

जीवनी-रचना के क्षेत्र मे भी बगला मे बराबर काम होता रहा। आत्म-चरित भी बहुत-से लिखे गये। जीवनी रचना के क्षेत्र मे श्री **योगेन्द्रनाथ विद्याभूषण** (मृत्यु १६०४) विशेष उल्लेख-योग्य है। उन्होने जान स्टुअर्ट मिल और इटली के देशभक्त मैजिनी और गैरीबाल्डी की जीवनी लिखी। ये पुस्तके १८८७ के लगभग प्रकाशित हुई। उन दिनो भारतीय देशभक्त इटली के देशभक्तो के उदाहरण से अनुप्रेरित हो रहे थे, उसीका नतीजा था इन जीवनियो का प्रकाशन। ये पुस्तके बगाल के क्रातिकारी आदोलन मे बहुत काम आई और पाठ्यपुस्तक के रूप मे पढी जाती रही।

सत्यचरण शास्त्री ने भी कुछ महत्वपूर्ण जीवनिया लिखी। डा० सुकुमार सेन के अनुसार अन्य उल्लेख योग्य समसामयिक जीवनीकारो तथा जीवनियो मे ये उल्लेख-योग्य है—**नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय** रचित राजा राममोहन राय का जीवन-चरित (१८८१), **महेन्द्रनाथ राय** रचित अक्षयकुमार दत्त की जीवनी (१८८५), **योगेन्द्रनाथ वसु** रचित माईकेल मधुसूदन दत्त की जीवनी, दूसरा सस्करण (१८६५), **बिहारीलाल सरकार** रचित विद्यासागर (१८६५)।

ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र मे कई लोगो ने इस युग मे अच्छा काम किया। **रजनीकात गुप्त** (१८४६-१६००) ने १८७६ मे सिपाही-विद्रोह के इतिहास का प्रथम खड प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होने जयदेव, पाणिनि आदि पर भी कई पुस्तके लिखी। **रामदास सेन** (१८४५-८७) ने ऐतिहासिक रहस्य, भारत रहस्य तथा उमेशचद्र राय ने सिक्किम का इतिहास (१८७५ मे) लिखा। **प्रफुल्लचन्द्र वद्योपाध्याय** ने (१८४६-१६००) ग्रीक और हिंदू तथा वाल्मीकि और उस समय के वृत्तात पर पुस्तके लिखी। **चद्रशेखर मुखोपाध्याय** ने १८७६ मे 'उद्भ्रात प्रेम' नाम से एक उच्छ्वास-पूर्ण शोकगाथा लिखी, जो लगभग ५० वर्ष तक बगाल मे बहुत जनप्रिय रही। **मीर मुसर्रफ हुसेन** ने करबला की कहानी लेकर 'विपाद सिंधु' नाम से एक पुस्तक लिखी।

भ्रमण पर भी अच्छी पुस्तके लिखी गई। एक काल्पनिक भ्रमण कहानी लिखी गई, जिसका नाम था 'देवताओ का मर्त्य मे आगमन'। इस पुस्तक मे

समसामयिक समाज की हँसी उडाई गई थी। आगे चलकर वगला साहित्य मे भ्रमण-सवधी पुस्तको को साहित्यिक ढग पर लिखने मे जो सफलता प्राप्त हुई, उसका बीज इसी युग मे पड चुका था।

यह वताने की आवश्यकता नही है कि उपन्यास के साथ-साथ कहानी-साहित्य की भी बरावर उन्नति होती जा रही थी। पर जिस प्रकार से उपन्यास के क्षेत्र मे वकिमचद्र, रमेशचद्र आदि महान् लेखको का उद्भव हुआ था, उस प्रकार कहानी-साहित्य मे कोई वडा नाम देखने मे नही आता। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशको मे नगेन्द्रनाथ गुप्त और स्वर्णकुमारी देवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यो तो वकिमचद्र ने भी 'युगलागुरीय', 'राधारानी' और 'इदिरा' तीन रचनाए प्रस्तुत की थी, जो वडी कहानियो की श्रेणी मे ही आती हैं। सजीवचद्र की एक रचना 'दामिनी' भी कहानी की श्रेणी मे आती है। डा० सुकुमार सेन का कहना है कि रवीद्रनाथ के पहले जो कहानिया प्रकाशित हुई थी, उनमे 'दामिनी' ही श्रेष्ठ है।

· १३ ·

कवि बिहारीलाल

इस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि का नाम बिहारीलाल चक्रवर्ती था। "मजे की वात यह है कि कवीद्र रवीद्र के अतिरिक्त और भी वहुत-से सम-सामयिक कवियो के उन्हे अपना काव्यगुरु करके मानने पर भी उनको माइकेल मधुसूदन के मुकावले मे वगाल के वाहर ही कम लोग जानते है। ऐसा ही नही, वल्कि वगाल मे भी वह कम प्रसिद्ध हैं। फिर भी वगला साहित्य मे विहारीलाल का स्थान माइकेल से कुछ कम नही है, वल्कि वाद को चलकर विहारीलाल की विशेष काव्य-साधना ही वगला साहित्य मे अधिक रग लाई। विहारीलाल की काव्य-प्रेरणा मधुसूदन के मुकावले मे और भी सरल और स्वत स्फूर्त थी, साथ ही वगाली जाति के भावो के अनुकूल थी। इस दृष्टि से आधुनिक वगला काव्य के इतिहास मे विहारीलाल एक व्यक्ति नही वल्कि युग-प्रवर्तक थे।"[1]

---

[1] विहारीलाल, श्री मोहितलाल मजुमदार के आधार पर मुख्यत लिखा गया।

विहारीलाल ने 'सारदामगल', 'प्रेम प्रवाहिनी', 'वन्धुवियोग', 'निसर्ग सदर्शन', 'वाउलविंशति', 'सगीतशतक' आदि कई एक काव्य-ग्रन्थ लिखे, किंतु आज वगाली समाज मे इनको पढनेवालो की सख्या बहुत ही कम है। बात यह है विहारीलाल की प्रतिभा मुख्यत गीति(Lyric)थी। गीत गाते-गाते वह इतना विभोर हो जाते थे कि वह भूल ही जाते थे कि उनके सामने श्रोता है। उनकी उडान अत्यत आत्मपरायण उडान है। उनके काव्यो मे गम्भीरता और स्वकेन्द्रीयता जितनी हृदयस्पर्शी है, भाव की मूर्ति उतनी स्पष्ट नही है। इस कारण वह साहित्य मे एक नवीन रीति के प्रवर्तक होते हुए भी साधारण कविता-प्रेमी पाठक के प्रिय नही हो सके। मधुसूदन के मुकाबले मे तो वह कम पढे ही जाते हैं, किंतु नवीनचद्र और हेमचद्र से भी वह कम पढे जाते हैं। यह प्रथम दृष्टि मे आश्चर्यजनक होते हुए इसका कारण स्पष्ट है, और वह यह कि नवीनचद्र और हेमचद्र चाहे कवि रूप मे इनसे कितने ही निकृष्ट रहे हो, किंतु उन्होने पलासी का युद्ध आदि ऐसा विषय लिया था जो कितना भी विगडता तो उसकी एक हद थी।

विहारीलाल की भाषा एक विशेष भाषा है। समालोचक कवि मोहितलाल के अनुसार उनके भाव शिशु की तरह सरल है तो उनकी भाषा भी शिशु की तरह नग्न अकृत्रिम है। विहारीलाल की यह भाषा ही जैसे उनकी काव्य-रचना की विशेष प्रतिभामयी भाषा है। विहारीलाल के काव्य 'सारदामगल' को पढने से हमे उनकी भाषा की कला पग-पग पर खूब देखने को मिलती है। कविवर कीट्स ने जिस प्रकार के कवि-स्वप्न को

> Upon the night's starred face,
> Huge cloudy symbols of a high romance

बतलाया है, उस प्रकार के रूप-रस की उत्कठा उनमे नही थी। उनके काव्यो मे विचार से वढकर भाव, कल्पना से वढकर प्रीति-विभोरता, जो नही है, उसकी उद्भावना से जो है उसीसे आनदलोक सृष्टि की साधना हम अधिक देखते हैं।

विहारीलाल की यह आत्मनिमग्नता कही इतनी अधिक हो जाती है कि वह पाठक के उपहास की वस्तु हो जाती है। समझ मे नही आता कि इसमे कवितापन कहा है। अपने वाल्यवन्धु पूर्णचद्र की मृत्यु पर वह एक कविता लिख गये, जिसमे वह मित्र की इसलिए प्रशसा करते दिखाई देते है कि वह एक दिन

गगा नहा रहे थे, ऐसे समय मे एक नाव डूब गई। उस नाव का मल्लाह बच गया किंतु उसका कपडा बह गया। वह किनारे पर कम पानी मे आकर थरथर कापने लगा, किंतु उसे हिम्मत न हुई कि किसीसे कपडा मागे। पूर्णचंद्र ने उसे अपना कपडा दे दिया और खुद अगोछा पहनकर घर चले आये। इस घटना को कवि ने नमक-मिर्च न मिलाकर ऐसे ही लिख दिया, जैसे मैंने उसका विवरण लिखा। कहना न होगा यह कोई कविता नही है, किंतु इससे वही बात साबित होती है जो मैं पहले लिख आया हू, याने कवि बिहारीलाल को अपने ही भावो की परवा है, श्रोताओ की नही। सौभाग्य से इस तरह की आत्मकेद्रित कविता उनकी रचना मे कम है। कुछ भी हो, बिहारीलाल की कविता इतनी सरल है कि हम सहज ही मे कवि के हृदय की धडकन को गिन सकते है।

हिमालय को कविवर बिहारीलाल किस प्रकार चित्रित करते है देखने की चीज है। नीचे जो कविता उद्धृत की जायगी उसमे पाठक देखेगे कि हिमालय कोई प्रस्तर स्तूप नही, बल्कि रक्तमासस्पर्शयुक्त एक विराट शरीर है, जिसके हृदय की धडकन की यह कविता मानो स्वरलिपि है। हम इस कविता मे साफ देख सकते है कि अब बगला साहित्य मे रवीन्द्रनाथ जैसी विभूति आने ही वाली है। बिहारीलाल की कविता मानो उस आनेवाली महान् प्रतिभा का पेशखेमा है। हम जरा कान खडे कर सुने तो हमे रवीन्द्रनाथ के आने की गडगडाहट सुनाई पडेगी।

असीम नीरद नय
ओ-इ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनत जलधि
व्येपे दिक दिगतर
तरंगिया घोरतर
प्लाबिया गगनागने जागे निरवधि

—यह हिमालय पहाड कोई सीमाहीन बादल नही है, बल्कि जैसे अनत समुद्र उमडकर खडा हो गया है, सब दिशाओ को बडे जोरो के साथ व्याप्त तथा तरगित करता हुआ मानो वह आकाशरूपी आगन को डुबोता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिबारे पारे
समुखे सारदाम्बरा
छडिए रयेछे धरा,
कटाक्षे कखनो जेनो हेरिछे ताहारे ।

—चरणो पर उसकी वसुन्धरा है, सिर पर आकाश है, सूर्य-चद्र फिर उसके लिए तुच्छ क्यो न हो, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रो को गिन सकता है । सामने सागराम्बरा धरा फैली हुई है, कभी-कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है ।

कतशत अभ्युदय
कतई विलय लय
चक्षेर ऊपरे जेनो घटे क्षणेक्षणे
हरहर हरहर
सुरनर थरथर
प्रलय-पिनाक-राब वाजे ना श्रवणे

—सैकडो अभ्युत्थान और पतन उसकी आखो के सामने हर-हर क्षण होते रहते हैं । हरहर-हरहर, सुरनर थरथर कापते है, किंतु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नही पडता ।

झटिका दुरत मेये
बुके खेला करे धेये
धरित्री ग्रासिया सिंधु लोटे पदतले ।
ज्वलत अनल छवि
ध्वकध्वक ज्वले रवि
किरन-जलन-ज्वाला माला शोभे गले ।

—आधी तो उसकी एक शरारती लडकी भर है, वह दौड-दौडकर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिंधु को ग्रसकर उसके पैर पर लोटती है । जलती हुई महान् आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणो की जलती हुई माला से उसका कठ सुशोभित है ।

कालेर कराल हासि
दमके दामिनी राशि
कक्कड़ दंते-दंते भीषण घर्षण
त्रिजगत त्राहि त्राहि
किछुई भ्रूक्षेप नाहि
के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

—काल की कराल हँसी की तरह विजली कोध जाती है, दात से दात पीस-कर काल मानो कडकड-कडकड शब्द करता है, तीनो भुवन त्राहि-त्राहि करते है, किंतु उसे किसी वात की परवा नही, हे योगनिमग्न व्योमकेश, तुम भला कौन हो ?

मानो कवि ने इस हिमालय मे भारतवर्ष को ही चित्रित कर दिया है, बाहरी प्रभाव के प्रति उदासीन, मुक्त, उदार, अपने मे आप समाहित ।

. १४ :

प्रमुख प्राक-रवीन्द्र कवि

कवि सुरेंद्रनाथ मजुमदार

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार इस युग मे कही-कहीपर बहुत अच्छी कविता लिख गये है। मुख्यत इन्होने अनुवाद ही किये है, किंतु इनकी एक मौलिक कविता मे कवि की वैयक्तिक स्वतन्त्रता कितनी उग्र मालूम होती है—

हे कवि-कल्पना माया सत्येर सोनालि छाया
काव्य-इंद्रजाल-भानुमती,
सुखे तुमि यथा इच्छा थाको क्रीड़ावती ।
चडिया पुष्पक-रथे
भ्रमो गिया छायापथे
कर इंद्रचाप-विरचन,
किम्बा करो परीसने चंद्रिका भोजन,
आमि ना करिवो देवी तव आवाहन ।

—हे कवि कल्पना रूपी माया, सत्य की सुनहरी छाया, काव्य-रूपी इंद्रजाल

की भानुमती, क्रीडाशीले, तुम्हे जहा भी रहना हो सुख से रहो। पुष्पक विमान पर चढकर चाहे छायापथ मे भ्रमण करो और इद्रधनुष बनाओ या परियो के साथ जाकर चादनी का भोजन करो, किंतु देवी, मैं तुम्हारा आवाहन नही करूगा—

विधातार ए ससारे यारे ना तुषिते पारे—
जे कविर महती कामना,
से कबि कोरिबे देवी तव उपासना।
तोमार मुकुर परे
हेरे से हरषभरे
छाया तार काया नाही जार—
ततो लोकातीत नय वासना आभार
लक्ष्य मम सामान्य ए सत्येर ससार।

—विधाता का बनाया हुआ यह ससार जिसे तुष्ट नही कर सकता, जिस कवि की कामना इससे महान् है, वही, देवी, तुम्हारी उपासना करेगा। वह तुम्हारे दर्पण मे आनद के साथ उस चीज की छाया देखकर खुश होता है, जिसका शरीर ही नही है ? मेरी वासना इस प्रकार लोकातीत नही है, मेरा तो लक्ष्य मामूली यह सत्य का ससार है।

ऊपर जो कविता उद्धृत की गई उसको हम पाश्चात्य कवियो का अनुकरण कहकर उडा नही दे सकते, क्योकि उन्नीसवी सदी मे पाश्चात्य कवि भी बहुत अश मे चादनी भोजन करते थे। आजकल के उस भारतीय साहित्य के सबध मे, जो आधुनिक दीखते हुए भी आधुनिक नही है, ऊपर उद्धृत की हुई कविता एक अच्छी समालोचना है। यह भी देखने की बात है कि सुरेन्द्रनाथ ने अपनी कविता को बदो के रूप मे लिखा है।

हरेक युग की कविता मे नारी की पूजा एक प्रधान चीज रही है। कविता की उत्पत्ति के फ्रायडीय सिद्धान्त को यह बात प्रतिपादित करती है। बगला के प्राचीन साहित्य मे राधा, यशोदा, कौशल्या के रूप मे नारी की पूजा बहुत हुई है, किंतु उर्वशी के रूप मे नारी की पूजा इसी युग की विशेषता है। हम रवीन्द्र-साहित्य की आलोचना के अवसर पर इस विषय पर आयेंगे, किंतु 'उर्वशी' लिखे जाने के पहले उर्वशी भाव से नारी-पूजा की एक बानगी हमे इन्ही सुरेद्रनाथ मजुमदार की 'महिला' कविता मे मिलती है—

वर्णिते ना चाइ ह्लद नदी सरोवर
सिधु शैल वन उपवन,
निर्मल निर्झर, मरु बालुर सागर,
शीत-ग्रीष्म-वसत वर्त्तन ।
हृदये जेगेछे तान,
पुलके आकुल प्राण
गावो गीत खुलि हृदि-द्वार—
महीयसी महिमा मोहिनी महिलार ।

—'मैं झील, नदी, तालाव, सिधु, पहाड, वन-उपवन, निर्मल झरना, बालू के सागर मरुभूमि या शीत, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के परावर्तन का वर्णन नही करना चाहता । मेरे तो हृदय मे तान जगी है, प्राण पुलकित हो रहा है, इसलिए मैं हृदय का द्वार खोलकर मोहिनी महिला की महीयसी महिमा गाऊगा ।

आगे मूल न देकर बाकी कविता का अनुवाद ही दिया जाता है—

—'वह मन की सुषमा का सविलास विग्रह है, आत्मा के आनन्द की प्रतिमा है, कविता के ध्यान का जैसे साक्षात् आकार है, माया की मुग्धमुखी मूर्ति है, हृदय के जितने काम्य है, उन सबका सग्रह है । भला मैं रमणी के सम्बन्ध मे आये हुए अपने विचारो को कैसे समझाऊ ?' वह इस ससाररूपी फणी का मत्र है, महौषधि है ।

इस कविता की कुछ पक्तिया यो है—

एलोकेशे के एलो रूपसी
कोन वनफूल, कोन, काननेर शशी

—बालो को लटकाकर कौन यह रूपसी आई है ? यह कौन-सा वनफूल है, किस कानन का चन्दा है ?

इस युग मे इतने कवि हुए है कि उनकी एक-एक पक्ति भी दी जाय तो एक बडी भारी पुस्तक हो जाय । इसलिए केवल कुछ ही कविताए देना सभव है । शिवनाथ शास्त्री की ख्याति मुख्यत एक सुधारक के रूप मे है, फिर भी उन्होने कुछ कविताए लिखी है । उनकी 'गभीर निशीये' नामक कविता मे रहस्यवाद का एक अस्पष्ट रूप मिलेगा ।

कवि देवेन्द्रनाथ सेन

कवि देवेन्द्रनाथ सेन तथा अक्षयकुमार बडाल रवीन्द्रनाथ के समसामयिक है अर्थात् थे, किंतु फिर भी कई दृष्टियो से उनकी कविता रवीन्द्र-युग के पहले की कविताओ के साथ अध्ययन योग्य है। इसलिए हम इस दौर मे ही उनकी कविता का नमूना देकर इस अध्याय को समाप्त करेगे। देवेन्द्रनाथ क्या है, यह उन्हीके अपने मुह से सुनिये—

चिरदिन चिरदिन रूपेर पूजारी आमि
रूपेर पूजारी
सारासन्ध्या सारानिशि रूपवृन्दावने वसि
हिन्दोलाय दोले नारी आनदे नेहारि
अधरे रगेर हास विद्युतेर परकाश
केशेर तरगे नाचे नागेर कुमारी
वासन्ती ओढना साजे प्रकृति राधिका नाचे
चरणे घुगुर बाजे आनदे झकारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उधारि
आमि से अमृत विष पान करि अहर्निश
ससारेर व्रजवने विपिनविहारी।

—हमेशा से, हमेशा से, मै रूप का पुजारी रहा हू, रूप का पुजारी। सारी सध्या और सारी रात रूप-वृन्दावन के हिडोरे मे झूलने का मजा लेती रहती है। मै इसको आनद के साथ देखता रहता हू। अधरो पर रगीली हँसी है, मानो विद्युत् का प्रकाश हुआ है, वालो की लहरो मे मानो नागकुमारी नाच रही है। ओढना वासन्ती रग का है, प्रकृति-रूपी राधा नाच रही है, कविचित्त मे कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृत-विष को मैं दिन-रात पीता रहता हू, इस प्रकार मैं ससार के व्रजवन मे विपिनविहारी हू।

देवेन्द्रनाथ सेन की रचनाए इस अमिट रूप-पिपासा से ओत-प्रोत है। 'लखनऊ का शरीफा' नामक कविता लीजिये। मामूली फलो को लेकर कवि-कल्पना किस प्रकार अबीर-गुलाव की पिचकारी भरती हुई अठखेलिया करती चलती है—

"मै अनार नही चाहता, जिसका रग अभिमान से निष्ठुर व्रज-सुन्दरियो के होठो की लालिमा से मिलता हे। मैं सेब भी नही चाहता, जो विरह-विधुरा जानकी के मुख-रुचि की पाण्डुरता लिये हुए हे। जरा-से रस से भरा हुआ अगूर, जो नई वहू के लज्जा से दिये हुए चुम्बन की तरह है, वह भी मैं नही चाहता। मैं गन्ने का स्वाद भी नही चाहता जो प्रौढ-दम्पतियो के प्रगाढ प्रेमालाप की तरह कठिन मे मधुर है। मुझे तो वस वह ऊची पैदाइश का शरीफा दो, जो लखनऊ के नवावो के उद्यान मे रस से लवरेज लटकता रहता है, किसी नवाव-जादी ने आकर छू भर दिया और फट पडा। अहा, यह मृत्यु भी कैसी विचित्र है, किसी रसिका की रसना के ऊपर मरकर रह जाना।"

'आखिर मिलन' नामक कविता लीजिये—

आखिर मिलन ओ जे—आखिर मिलन।
लोके ना बुझिलो किछु लोके ना जानिलो किछु
दम्पतिर हलो तबु शत आलापन
हलो मन-जानाजानि हलो मन टानटानि
आशाय चिकन हासि मनेर रोदन
विजयार कोलाकुलि आधारे श्यामार बुलि
प्रेमेर विरह-क्षेते चन्दन लेपन
ओई आखिर मिलन।

—यह तो आखो का मिलना है आखो का मिलना, न लोगो ने कुछ जाना, न लोगो ने कुछ कहा, फिर भी पति और पत्नी मे सैकडो बाते हो गई। एक ने दूसरे के मन को जान लिया, एक ने दूसरे को खीच लिया, आशा की चिकनी हँसी हो गई, या अभिमान का रोदन हुआ। दशहरे का मिलना हो गया, अधेरे मे जैसे श्यामा बोल गई, प्रेम और विरह के घाव पर चदन का लेप हो गया। वात यह है, यह आखो का मिलना था।"

कवि अक्षयकुमार बडाल

अब हम अक्षयकुमार वडाल की 'आह्वान' नामक एक कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। इस कविता मे प्रकृति के साथ कवि का कितना निकट सबध है, फिर उस सबध को किस प्रकार दार्शनिकता मे अनुवाद

किया गया। आधुनिक कविता केवल उपमा, उत्प्रेक्षा की अनवरत घनघटा नही है। यदि उसमे दार्शनिकता नही है, जीवन की सैकडो दुर्दात पहेलियो पर एक झलक रोशनी नही है, जीवन का स्पदन नही है तो वह कविता ही नही है। कविता वडी है, इसलिए हम केवल उसका अनुवाद ही पाठको के सामने प्रस्तुत करेंगे—

"देखो प्रिया, इस तरु-लता-पुष्प से भरी हुई तथा गिरि-नदी-सागर से समन्वित पृथ्वी को, यह नम्र देह से तथा मुक्त प्राण से आकाश की ओर ताक रही है, न इसमे कोई लज्जा है, न कोई छलना ही। फिर देखो उस महाकाश को, जो मेघो की राशि के साथ रोशनी तथा अधकार लेकर पृथ्वी के हृदय पर पडा है, न उसे घृणा है, न अहकार। ऊपर तो महाशून्य है और पैरो के नीचे भूमि है, बीच मे तुम और मैं हू। नेह है, भूख भी है, हृदय है और हम सुधा की तलाश कर रहे है। होना तो मृत्यु है, लेकिन हम अमरता की चाह करते है। दुख है, किंतु उससे बचत का उपाय भ्राति है, सुख है किंतु उसमे श्राति आ जाती है, त्याग है तो सग्रह भी है। जीवन क्या है, आधी मे सागर की तरह आमरण उठना-गिरना। मैं पूछता हू क्या तुम इसको निभा सकोगी ? मेरे हाथो मे हाथ रखकर क्या तुम मुझे समझ रही हो ? क्या तुम मेरे मन-प्राण सबकी थाह पा रही हो। यह न तो मिट्टी ही है, न शून्य ही है, पाप भी नही है, पुण्य भी नही है, यह तो आत्मा से आत्मा को अनुभव करना है।

"क्या तुम समझ रही हो कि इसमे कितना आनद है ? जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-मर्त्य के द्वारा मै तुम्हारा किस प्रकार आह्वान करता हू। चित्र मे, शिल्प मे, गान मे, मैं तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हू। देखती नही हो, हरेक पाषाण पर तुम्हारी रेखा है, तुम्हारे प्रणय का लेखा है, मरणशील जड मे तुम्हारी अमर महिमा है।

"प्रेम का सुधापात्र लेकर आओ मेरी देवी, आओ मेरी दासी, आओ मेरी सखी।

: १५ :

रवीन्द्र-काव्य

कवीन्द्र रवीद्रनाथ बगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नही, वल्कि एक युग है। वह अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविधता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताव्दी की दो-तिहाई से वगला साहित्य के आकाश मे जाज्वल्यमान रहे। उनकी प्रचण्ड दीप्ति के सामने पहले के साहित्यिक तथा कविगण टिमटिमाते-वुझते मालूम होते है, समसामयिकगणो की तो हालत जुगनुओ की तरह हो रही है। कभी मालूम होता है, इस अनत आकाश मे केवल रवीन्द्रनाथ ही है, कभी मालूम होता है साथ मे वे भी है। कवीन्द्र रवीन्द्र केवल वगला के कवि ही नही, नाटककार, उपन्यासकार, दार्शनिक, चित्रकार, समालोचक, राष्ट्रीय लेखक, भाषा-तात्विक, वैयाकरणिक, अभिनेता सभी है। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई विभाग वचा हो जिसमे उन्होने सफलता के साथ हाथ न लगाया हो। उनकी प्रतिभा जिस दिशा मे भी गई, उसी दिशा मे उसने नवीन पथ काटकर फूलो की फसल खिलाकर रख दी। कहने को कहा जाता है विहारीलाल उनके काव्यगुरु थे। वात यह है कि इस अभागे देश मे कान फूकनेवाला न हो तो कोई सिद्ध नही होता। वह स्वय भी इस वात को प्रतिभा के ही योग्य उदारता के साथ मानते है, किंतु सच बात तो यह है कि एक छत्ते मे कहा-कहा का शहद आकर एक सामजस्यपूर्ण मिठास मे परिणत हो गया है, यह मधुमक्खी स्वय भी नही कह सकती।

फिर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का काम केवल दूसरे फूलो से शहद लाकर साम-जस्यपूर्ण रूप से एक छत्ते मे इकट्ठा कर देना ही नही था, वगला-काव्य-साहित्य मे यदि इस कार्य को किसी वडे कवि ने किया है तो वह माइकेल है, न कि रवीन्द्रनाथ। माइकेल ने लिखा है, "मै ऐसा मधुचक्र (मधुमक्खी का छत्ता) वनाऊगा, जिसपर वगवासी गौरव करेगे।" उन्होने सचमुच एक छत्ता वनाया। स्मरण रहे इस काव्य-मधुचक्र का निर्माण कोई मामूली काम न था। अग्रेज कवि मिल्टन ने भी ऐसा ही किया था। पेरेडाइज लौस्ट (Paradise Lost)

मिल्टन की सबसे बडी तथा सुदर साहित्यिक कृति है। १७२७ मे प्रसिद्ध फ्रेंच समालोचक वालटेयर ने ही पहले-पहल बतलाया कि जिओवानी बेतिस्सा एन्ड्रीनी (Giovanni Battista Andreini) के 'एदोमो' (Adomo) नामक पौराणिक नाटक को (१८३८-३९) देखकर ही मिल्टन ने पेरेडाइज लौस्ट (Paradise Lost) महाकाव्य की परिकल्पना की। विलियम लौडर (William Lauder) नामक एक लेखक ने तो खुल्लमखुल्ला 'इन्क्वायरी इन टू दी ओरिजन आफ पेरेडाइज लौस्ट (Inquiry Into the Origin of Paradise Lost) मे मिल्टन को चोरी का दोषी बतलाकर सनसनी पैदा कर दी। एक उच्च कवि जूस्ट वान डन वोन्डल (Joost Van Den Vondel) की एक रचना 'ल्यूसीफर' (Lucifer) से भी इस मिल्टनीय महाकाव्य का सबध बतलाया गया। यह तो केवल दो-एक बाते हुई, इसी प्रकार इस महाकाव्य के सबध मे सैकडो बाते खोजनेवालो ने खोजी। फिर भी अग्रेजी साहित्य मे मिल्टन एक महाकवि ही माने गये, क्योकि उन्होने अगर कही से कुछ लिया तो उसको इतना परिवर्तित कर दिया कि उसकी आत्मा तक बदल गई। यह साहित्य का एक बहुत ही टेढा प्रश्न है कि दूसरो के भाव कहातक अपनाये जा सकते है। इसपर स्वय मिल्टन का ही मत सुन लिया जाय। उन्होने लिखा है—

"Such kind of borrowing as this if it be not bettered by the borrower, among good authors is accounted plagiary It is not hard for any man who hath a Bible in his hands to borrow good words and holy sayings in abundance, but to make them his own work of grace only from above"

—इस प्रकार का भाव-ग्रहण, जिसमे ग्रहण के बाद भाव सुन्दरतर नहीं हो जाते, अच्छे साहित्यिको की दृष्टि मे चोरी कहलाती है। किसी भी व्यक्ति के लिए यह आसान है कि हाथ मे बाइबल लेकर सुभाषित या पवित्र कहावते अधिक-से-अधिक ले डाले, किन्तु उनको अपनी बना लेना केवल ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है।

भावग्रहण करके उसे पचाना और सम्पूर्ण रूप से उसे अपना रक्त बनाकर उसे अपनी धमनियो तथा नसो मे प्रवाहित कर देना सशक्तता सूचित करता है, न कि किसी प्रकार की कमजोरी। केवल साहित्यकार ही नही, वैज्ञानिको ने भी अपने पूर्ववर्तियो से इसी प्रकार ग्रहण किया है।

माइकेल के सामने मिल्टन से कही व्यापक तथा विविध साहित्य खुले हुए थे। सस्कृत-साहित्य का काव्यभाग किसी भी समृद्ध भाषा से पीछे नही था, माइकेल के सामने वह सब साहित्य सुलभ था, जो मिल्टन के सामने था, इसके अलावा सस्कृत का विराट् काव्य-साहित्य भी था। याद रहे, गेटे सस्कृत की शकुतला पर सबसे ज्यादा मुग्ध हुए थे, यद्यपि उनके सामने पूरा विश्व-साहित्य था।

रवीन्द्रनाथ माइकेल नही थे, फिर रवीन्द्रनाथ को यदि कहा जाय कि वह प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के समन्वयकर्ता है तो यह भी गलती होगी। यह बात जरूर है कि प्राच्य और पाश्चात्य मे जो कुछ भी उत्कृष्ट है वह रवीन्द्रनाथ मे आकर एकत्र हुआ, किन्तु प्राच्य-पाश्चात्य का यह मिलन बहुत-से और व्यक्तियो मे हुआ, किन्तु वह रवीन्द्रनाथ तो क्या, नीम-रवीन्द्रनाथ तक न हो पाये। बगला-साहित्य मे ही बकिमचन्द्र को ही लीजिये, बकिमचन्द्र बहुत बडे साहित्यिक थे। रवीन्द्रनाथ के पहले बगला-साहित्य के नेता, पुरोधा, ऋत्विक वही थे। उनकी प्रतिभा से ही बगला साहित्य को आभिजात्य की मर्यादा प्राप्त हुई थी, किन्तु फिर भी वह रवीन्द्रनाथ नही थे। रवीन्द्रनाथ केवल बगला-साहित्य के ही एक युग के प्रवर्तक तथा पुरोधा है, यह बात नही, विश्व-साहित्य मे उनका दान एक अभिनव प्रकार का है। हमारे हिन्दी-साहित्य मे रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का परिमाण कम नही है। ऐसे ही सभी भारतीय साहित्य मे एक नये युग का प्रवर्तन रवीन्द्रनाथ से हुआ। केवल यही नही, यूरोपीय साहित्य मे रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बहुत-से कवियो मे स्पष्ट है, इसको बहुत-से यूरोपीय समालोचको ने भी माना है।

इस स्थान पर हम विशेषकर कवि रवीन्द्रनाथ से ही सम्बन्ध रखते है, किन्तु यह पहले ही बतलाया गया है कि वह एक युगातरकारी गद्यकार भी है। मजे की बात यह है कि यूरोप मे रवीन्द्रनाथ की ख्याति मुख्यत एक रहस्यवादी कवि के रूप मे है, किन्तु उनकी अधिकाश कविताए और कुछ भी हो, रहस्यवादी नही है। 'कथा ओ काहिनी', 'बलाका' आदि उनकी अनेक सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नही। वे रचनाए तो मध्याह्न-सूर्य की तरह स्पष्ट है। उनमे कोई रहस्य नही। गद्य मे तो रवीन्द्रनाथ शायद ही कही रहस्यवादी के रूप मे आते है। 'अचलायतन', 'गोरा', 'घरे बाइरे' किसीकी भी न

तो वनावट और न उद्देश्य ही रहस्यवादी है। वल्कि जिस ज़माने मे ये कृतिया पहले प्रकाशित की गई, उस समय कुछ लोगो ने यही शिकायत की कि इनमे प्रचार-कार्य वहुत ज्यादा है। समग्र रवीन्द्रनाथ को विश्लेपण करने पर देखा जायगा कि सव वाते कहने के वाद नेति-नेति कहते-कहते वह कलाकार भर रह जाते हैं।

"रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा मुख्यत गीतधर्मी है। यह वगला काव्य-प्रतिभा की विशेपता वताई गई है, किन्तु उसके मूल मे कल्पना की जो शैली है, वह भारतीय साहित्य तथा काव्य-पन्था के अनुरूप न होने पर भी भारतीय साधना के आदर्श से अनुप्राणित है। रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मानस-प्रकृति वकिमचद्र की भी नही है, वल्कि उस दृष्टि से देखा जाय तो वकिमचद्र भारत से कही वढकर यूरोप के मानसपुत्र हे। रवीन्द्र-काव्यो मे जो वात दिखाई पडती है उसमे भारतीय तत्वचिन्ता की प्रेरणा का एक वडा भाग है। भारतीय भाव-साधना की जो विशेपता रही हे वह यह हे कि उसने हमेशा समस्त जगत् को एक रस-चेतना मे अपने अदर कर लिया है, वह हमेशा भाव को लेकर तृप्त रही है। रूप की अरूप साधना ही इस प्रतिभा की विशेषता थी। रूप मे भाव को प्रत्यक्ष करना या रूप की भापा मे उसे प्रकाश करना कवि का काम हो सकता है, यह इस भावुकता-सर्वस्व जाति ने कभी सोचा भी नही था।"[1]

ऊपर की विश्लेपण-पद्धति को यदि हम सच माने तो कवित्व की दो मुख्य धाराए होती है, एक रूप की भाव-साधना, दूसरे भाव की रूप-साधना। मै समझता हू, मोहितलाल ने ऐसा लिखकर कविता के साथ अन्याय किया है, क्योकि भाव और रूप के अलावा भी कवि का मन एक तीसरी चीज है, जिसको हम भूल नही सकते। श्रेणी-विभाग के खव्त मे हमे यह नही भूल जाना चाहिए कि प्रत्येक कवि का हृदय भिन्न होता है। हा, हम चाहे तो कवि-हृदयो को भी श्रेणियो मे विभक्त कर सकते है, किन्तु फिर भी एक-एक कवि स्वय ही एक-एक श्रेणी है। मै पहले ही लिख चुका हू कि 'कथा ओ काहिनी', 'वलाका', 'गीताजलि' मे हम रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा का विभिन्न रूप देखते है। हा, हम

---

[1] आधुनिक वगला-साहित्य, पृष्ठ १७१

चाहे तो इन सब विशेष कवि-प्रतिभा को एक श्रेणी मे ले जा सकते है, किन्तु उस हालत मे हमारी श्रेणी बहुत व्यापक श्रेणी होगी। शायद हमे कवि कहकर ही सतोष करना पडे। रवीन्द्रनाथ की एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता 'उर्वशी' है, किंतु इस कविता मे विशुद्ध कविता ही है। रवीन्द्रनाथ को अग्रेजी 'गीताजलि' पर नोबुल पुरस्कार मिला, इसीपर वह रहस्यवादी कहलाये, किंतु मैं इस बात को गभीरता के साथ चुनौती देता हू कि वह केवल सौन्दर्यवादी कवि हैं। रवीन्द्रनाथ के गीतो का अक्सर झुकाव इसी ओर है, किंतु गीतो को छोड दिया जाय तो भी उनकी काव्य-रचना विराट् है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी रहस्यवादी रचनाओ को ही विश्व-साहित्य के दरबार मे पहले-पहल अग्रेजी अनुवाद मे पेश किया, यह कोई आकस्मिक बात नही थी। मालूम होता है कि वह जानते थे कि यह एक नई धारा है जिसकी यूरोप के विद्वानो मे कद्र होगी, इसलिए उन्होने खास करके इसी चीज को विश्व के सामने प्रस्तुत किया। किन्तु इससे यह निचोड, निकालना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही है, गलत है। इसके अलावा रवीन्द्र ने रहस्यवाद का जो रूप पेश किया है, वह बिल्कुल नवीन है और कला के जगत् मे वह उतना ही नया है, जितना विज्ञान-जगत् मे रेडियम है।

फिर रवीन्द्रनाथ जहा रहस्यवादी है वहा भी वह निरे रहस्यवादी इस अर्थ मे नही है कि रूप से भाव मे चले जाकर रह जाते है। इस माने मे तो बिहारीलाल उनसे अधिक रहस्यवादी जान पडेगे, क्योकि वह रूप से भाव मे गये और वही जाकर बैठ रहे। इसके विपरीत हम रवीन्द्रनाथ को 'भाव से रूप मे तथा रूप से भाव मे अनवरत आवागमन' करते देखते है। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद की यही विशेषता मालूम देती है। रवीन्द्रनाथ की यह भाव-साधना ऐसी है कि उसमे भारतीय अध्यात्मवाद को एक नवीन भोगवाद को समर्थन देने के लिए विवश किया गया है। रवीन्द्र-साहित्य मे मनुष्य-जीवन को एक महिमा प्राप्त हुई, जो प्राचीन साहित्य मे कही नही थी। हमारे प्राचीन साहित्य मे देवताओ के ज़रिये से मानव को देखने की प्रथा थी, स्वर्ग के देवताओ की नर-लीला ही एक शब्द मे सारे प्राचीन साहित्य का विषय है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के साहित्य मे हम मनुष्य के माध्यम से देवता को देखते है।

रवीन्द्र-प्रतिभा की एक वाक्य मे परिभाषा करने की चेष्टा करते हुए कवि मोहितलाल मजुमदार ने लिखा है, "रवीन्द्रनाथ की कल्पना-शक्ति के मूल मे

अतर और बाहर, भाव और वस्तु, विचार और अनुभूति की एक सामजस्यमूलक गीतिप्रवणता है। इसीसे उनके मन की मुक्ति है। इस मुक्ति के आनद मे उनकी कल्पना सभी विरोध तथा सभी सस्कारो को पार कर एक ऐसी रसभूति मे अधिष्ठान करती है, जहा जीवन का सब असामजस्य तथा वास्तविकता की सब विषमताए कवि के प्राण मे भावेक-परिणाम रागिणी मे समाहित होती है।" मुझे फिर कहना पडा, नेति। रवीन्द्रनाथ एक नाम होने पर भी इस नाम के अदर बीस विभिन्न कवि मौजूद है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी काव्य-लक्ष्मी को जो 'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे, तुमि विचित्र रूपिणी' कहकर वदना की है, असल में यह अक्षरश सत्य है। सचमुच कवि रवीन्द्रनाथ विचित्र है, और पाठको के प्राणो मे विचित्र रूपो से आते है। हम आगे उनके कुछ रूपो पर इस अध्याय मे रोशनी डालेगे।

वगला भाषा को रवीन्द्र ने जो कुछ दिया है उसकी तुलना नही है। उनकी प्रतिभा के वरद स्पर्श से वगला भाषा को जो सगीत और नमनीयता प्राप्त हुई, वह अतुलनीय है। वाद मे वगला को शायद ओर रवीन्द्रनाथ के समान प्रतिभाशाली पैदा करने का गौरव प्राप्त हो, किंतु वगला भाषा को रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार वदल गये, उस वदलने-वनाने का गौरव फिर किसीको नही मिलेगा। आज वगला मे रवीन्द्रनाथ के पैदा होने का फल यह हुआ है कि इस भाषा मे वैज्ञानिक भी लिखता है तो उसकी भाषा मे कविता का पुट होता है।

भाषा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इस प्रकार सर्वव्यापी होने पर भी, रवीन्द्र-धारा के वहुत ही कम सफल अनुयायी वगला भाषा मे पैदा हुए हैं। इसके वहुत-से कारण बताये गए है, किंतु मै समझता हू कि इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि रवीन्द्रनाथ ने स्वय ही अपनी शैली की सारी सभावनाओ को अपनी सुदीर्घ साहित्यिक आयु मे खत्म कर डाला। दूसरा कारण यह है कि सारे रवीन्द्र-साहित्य का मूल रवीन्द्रनाथ के विपुल व्यक्तित्व मे था। उसका चारो तरफ के समाज से उतना ही सवध था जितना एक तार से झूलते हुए गमले मे रोपे हुए पेड का जमीन के साथ होता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ मे प्राच्य और पाश्चात्य की सवसे अच्छी वाते थी। रवीन्द्रनाथ लडकपन से ही स्कूल से फरार रहे, किंतु उन्होने इग्लैड मे जाकर अग्रेजी का अध्ययन किया, देश मे भारतीय साहित्य का अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व जरूर चारो

तरफ के भारतीय समाज की ही उपज है, किंतु यदि जन-साधारण की दृष्टि से देखा जाय तो उससे उनका ऊपर बताये गए टब मे कंद पौधे की तरह कोई सीधा सबध नही है। हा, एक बात मे रवीन्द्रनाथ का सबध जनता से बहुत करीब है, वह यह कि उनकी सागीतिक आत्मा बिल्कुल बगाल की जनता की सागीतिक आत्मा के साथ अभिन्न है। जर्मन कवि गेटे की तरह जनता के सगीत से रवीन्द्रनाथ ने अनुप्रेरणा ली है, यह एक कारण है कि रवीन्द्रनाथ के काव्य मे एक मादक आकर्षण है, जिससे बचना मुश्किल है।

यह सबकुछ कह चुकने पर भी रवीन्द्रनाथ का गद्य तथा पद्य मध्यम श्रेणी का साहित्य है। कहा जाता है, हमारे देश मे केवल इसी श्रेणी का साहित्य हो सकता था, क्योंकि जिसको जनता कहते है, उसका अस्तित्व इतना निम्नकोटि का है, करीब-करीब पाशविक है कि वह उच्च साहित्य का विषय ही नही हो सकता। ऐसा जो लोग कहते है, वे कहते है। जिन लोगो मे न अभिसार है, न विरह की तड़प, न रिझाने की वृत्ति है, न प्रेमभिक्षा है, बस एक तरह से जबर्दस्ती काम-पिपासा शात करना भर है, उनमे प्रेम की कविता क्या हो सकती है?

यह एक बहुत ही टेढा प्रश्न है। मौलिक कारणो पर बिना गये इनपर कुछ फैसला नही हो सकता, फिर भी साहित्यिक ढग पर ही मैं एक बात कहना चाहता हू। वह यह कि कवीन्द्र ने ताजमहल पर एक सुन्दर कविता लिखी है। इसमे इस ऐतिहासिक इमारत को एक विरही के प्रेम-अर्घ्य के रूप मे न मालूम कितने तरीको से देखा, समझा और दिखलाया गया है। यदि कोई मान भी ले कि यह एक सम्राट् का अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम-अर्घ्य है, या उनके आसुओ का प्रस्तरीभूत रूप है, इत्यादि, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि एक गरीब स्त्री जो अपने स्वर्गगत पति की मिट्टी की कब्र पर जाकर रोज शाम को बिलानागा एक छोटा-सा दीया जला आती है, और जाकर चार आसू रो आती है, जिनसे सीचे जाकर एक गुच्छा दूब हरी बनी रहती है। उसका वह छोटा-सा मिट्टी का दीया, जो शायद उस स्त्री के पीठ फेरते ही बुझ जायगा, या वह घास का गुच्छा किस भाति उस ताजमहल से निकृष्ट है? क्या प्रेम के राज्य मे इस सिक्के का दाम उस सिक्के से कम है? क्या प्रेम के राज्य मे भी रुपयो से चीजे छोटी-बडी होती है? इसपर यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का दीया कला की वस्तु

नही, किंतु ताजमहल है। लेकिन इससे साफ हो जायगा कि ताजमहल की भावुकता-पूर्ण व्याख्या (जो कवीन्द्र की 'ताजमहल' नामक कविता का विषय है) से ताज-महल के वडप्पन का कोई सबध नही है। इस व्याख्या का खोखलापन इस बात से और भी जाहिर हो जाता है कि मुमताज के अलावा शाहजहा की और भी प्रियाए थी। इस बात के मालूम होने के बाद ताजमहलप्रेम के स्मारक के वजाय शायद गर्व की मीनार जचे।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे शायद रवीन्द्रनाथ के साथ कुछ अन्याय हो, इसलिए यह कह देना आवश्यक है कि दुनिया के ९० फीसदी साहित्य के विरुद्ध यह समालोचना की जा सकती है। जमाना बदल रहा है। भविष्य के कवियो की वीणाए दूसरे सुर मे बजेगी, इसमे सन्देह नही, किंतु बगला-साहित्य मे कुछ भी हो, उसके आदर्शो मे कितनी ही क्रांति हो, फिर भी भाषा के रूप मे रवीन्द्रनाथ बगला भाषा को जो सौंदर्य, नमनीयता और रूप दे गये, उसके ऋण से उऋण कम-से-कम कोई बगला-भाषी नही हो सकता।

इस अध्याय मे हम पहले भी कह चुके है और फिर भी कहते है कि रवीन्द्रनाथ केवल एक सौन्दर्यद्रष्टा कलाकार थे, जैसा कि यूरोप मे लोग कम समझते है और भारतवर्ष मे भी इस सम्बन्ध मे भ्रम है। मैंने यह भी बतलाया है कि इस भ्रम की उत्पत्ति अग्रेजी गीताजलि से हुई। अग्रेजी गीताजलि को पढकर लोगो ने कहा रवीन्द्रनाथ केवल अध्यात्मवादी कवि है, लोग इस भूल को वार-वार दुहराते गये, वस यह एक सत्य मान लिया गया। रवीन्द्रनाथ ने जो और हजारो कविताए लिखी थी, जिनसे अध्यात्मवाद से कोई सबध नही था, जो केवल सौंदर्य की एक-एक लडिया थी, उनको लोग भूल गये और रवीन्द्रनाथ एक अर्द्धधार्मिक कवि समझ लिये गए! मुझे आश्चर्य है कि रवीन्द्र-काव्य के बगाली समालोचको तक ने इस अजीब बात को कम लोगो मे आविष्कार किया और वे इस भूल के प्रवाह मे बहते चले गये। अग्रेजी मे ही golden boat (सोनार तरी) नाम से रवीन्द्रनाथ की कविताओ का एक अनुवाद निकला। इसमे शायद दो-चार कवितायें आध्यात्मिक ढग की हो, किंतु फिर भी रवीन्द्रनाथ पूरे नही समझे गए। दो-एक उदाहरण लिये जाय, पाठक स्वय ही अपनी राय कायम कर ले।

एक नक्षत्र की आत्महत्या

एक नक्षत्र आकाश से पागल की तरह समुद्र के काले पानी मे कूद पडा। करोडो दूसरे नक्षत्रो ने इस आत्महत्या को भीत तथा चकित होकर देखा। देखा कि किस भाति प्रकाश का एक परमाणु, जो उनके साथ था, बात-की-बात मे अधकार मे विलुप्त हो गया। यह जाकर समुद्र के चट्टानी गर्भ तक पहुच गया, जहा सैकडो नक्षत्र जिनका प्रकाश लुप्त हो चुका, बिखरे पडे हुए थे।

आखिर इस आत्महत्या की मर्म-कथा क्या थी ? केवल मै ही जानता हू कि उसकी इस रौनक मे कौन-सी बात उसे खाये जा रही थी।

यह अनवरत हँसी की यत्रणा थी। एक जलता हुआ कोयले का टुकडा अपने कालेपन को छिपाने के लिए हँसता है। जितना ही वह हँसता है उतना ही वह जलता है। उसी तरह यह नक्षत्र हँसा और उज्ज्वल हो गया। फिर जब जलने की यत्रणा उससे और बर्दाश्त नही हुई तो वह प्रकाश के जगत् से समुद्र के ठडे काले पानी मे कूद पडा।

करोड़ो उज्ज्वल नक्षत्रो ने इस पतित नक्षत्र की ओर देखा और वह घृणा से हँस पडे।

उन लोगो ने कहा—"भला हमे क्या हानि है ! आकाश तो उसी तरह उज्ज्वल बना है।"

यदि कोई तुला हुआ ही हो तो इस कविता का भी रहस्यवादी अर्थ हो सकता है, किन्तु जैसी यह है वह बिना व्याख्या के ही हमारी समझ मे आती है। इसकी किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय व्याख्या की जरूरत नही।

एक दूसरी कविता लीजिये—

प्रेतात्मा

जब वृद्ध मरने लगा तो सारा देश रोया-पीटा, सिर धुना और कहा—"प्रभो, तुम्हारे बगर हमारा काम कैसे चलेगा ?"

वृद्ध मन-ही-मन यह सोचकर परेशान हो रहा था कि यदि मैं मर गया तो इनको राहेरास्त पर कौन कायम रखेगा। हाय !

देवताओ ने जाति की प्रार्थना सुन ली और यह हुक्म दिया कि वृद्ध मरने पर प्रेत होकर देश मे रहेगा। मनुष्य तो मर जाते हैं, किन्तु प्रेत अमर होते हैं।

जाति की जान-मे-जान आई।

बात यह है कि जब दृष्टि भविष्य पर निबद्ध होती है तभी परेशानी होती है, जब आखें केवल भूतकाल पर रहती हैं तो परेशानियां खत्म हो जाती हैं। फिर तो सारी जिम्मेदारियो को भूतकाल के सिर मढ दिया जाता है और भूतकाल एक प्रेत के रूप मे जीता है।

फिर भी कुछ लोगो ने हर बात पर भूतकाल से अनुप्रेरणा लेने की बजाय सोचना चाहा। प्रेत ने उनके कान पकडकर खीचे, बात यह हे कि उसकी ककाल-लय उगलियो से कोई वच तो सकता ही नहीं था।

आखो को तथा मन को बन्द कर सारा देश प्रेत के नेतृत्व मे चलने लगा। बूढो तथा विद्वानो ने कहा—इसी प्रकार चलना ही पृथ्वी की पुरानी परिपाटी के अनुसार है। जीवन की उषा के समय दृष्टिशक्तिहीन सरीसृप भी इसी तरह चलते थे, पेड-पौधे अब भी ऐसा करते हे, इसीमे उनकी बुद्धिमानी है।

प्रेताविष्ट जाति ने वडे-बूढो की यह बात जो सुनी तो उनमे आनद की एक लहर दौड गई कि उनके बाप-दादे ऐसा ही करते थे और आदिम पृथ्वी के आदिम सरीसृप तक ऐसा ही करते थे।

देश के चारो ओर कारागार की तरह एक चहारदीवारी बन गई। हा, ये दीवारें अदृश्य थी, इसलिए कोई भी जानता नहीं था कि इनको कैसे पार किया जाता हे या इनसे कैसे भागा जा सकता है।

कैदी जाति प्रेत के नेतृत्व मे गुलामी करती रही। कडे परिश्रम का नतीजा यह हुआ कि विद्रोह का जोश जाता रहा। वह डरपोक हो गई। फलस्वरूप इस प्रेत के राष्ट्र मे चाहे स्वास्थ्य, अन्न, वस्त्र की कमी हो, किन्तु शाति की कमी नही रही।

ऐसे ही दिन बीतते गये। जाति सन्तोष मे रही, मानो वह प्रेत के गाडे हुए इस्पात के खूटे मे बधा हुआ एक भेड का बच्चा हो।

किंतु दिक्कतें पैदा होने लगी। पृथ्वी की किसी और जाति पर प्रेत का राज्य नहीं था, इसलिए दूसरे देशो मे उन्नति का रथ जल्दी-जल्दी आगे ही बढता गया। ऐसी जातिया थी, जिन्होने प्रेत की प्यास बुझाने के लिए एक भी बूद रक्त नही दिया था, इसलिए उनकी शक्ति का क्षय होने के कारण वे बिल्कुल जिन्दा थी।

बूढो ने भूतकाल की अपनी पोथियो तथा पत्राओं को देखा और एक स्वर से कहा—दोष न तो हमारा है, न तो हमारे शासक प्रेत का ही है, वल्कि समस्याओ का है। भला इन समस्याओ का क्या काम था कि ये होतीं ?

जाति ने जब बूढो की इन वारीक वातो को सुना तो उसे तसल्ली हुई।

किंतु दोष चाहे किसी का हो, समस्याओं की वृद्धि को कौन रोक सकता था ? कुछ दिनो के अंदर समुद्र पर से टिड्डियो की तरह विदेशियो के झुड आने लगे और फसलो से भरे खेतो को चाट डालने लगे। ये विदेशी व्यावहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे, इनमे काम करने की शक्ति थी तथा दूरदर्शिता थी। प्रेताविष्ट होने के कारण जाति ने या तो इनकी अवज्ञा की थी, या इनसे दूर रही, जिससे कि कही धर्म-नाश न हो जाय। तब बूढो ने फिर किताब खोली, और कहा—वे ही सौभाग्यवान हैं, जो दुनिया के रगडो-झगडो से दूर रहते है।

लोगो ने सुना, और उनके हृदय की तसल्ली हुई।

किंतु फिर भी वह प्रश्न जो लोगो को परेशान कर रहा था, हल नहीं हुआ—"फिर इन उजडे हुए खेतो से लगान कैसे दिया जाय ?"

कब्रिस्तान से हहराती हुई एक हवा आई, जैसे किसी प्रेत की हँसी हो। उसने कहा—अपनी इज्जत से दो, हृदय के रक्त से दो, अपनी आत्मा से दो।

जब प्रश्न आते है तो उनकी झडी-सी लग जाती है।

इसलिए एक दूसरा प्रश्न उठा—क्या प्रेत का राज्य चिरस्थायी है ?

दादे और दादिया धक से रह गई, कहा—हमने ऐसा प्रश्न कभी सात जन्म मे भी नहीं सुना था। भला यह भी कभी हो सकता है कि यह राज्य न रहे।

प्रेत के कर्मचारियो ने व्यग की हँसी हँसकर कहा—कोशिश करके देखो कि कभी ये अदृश्य दीवारें टूट भी सकती है।

सच बात तो यह है कि भूतकाल न तो मरा ही था न जिंदा था, बल्कि यह प्रेत रूप मे था। कभी न तो इसने देश मे कोई उथल-पुथल ही मचाई, और न वह देश को छोडकर चला ही गया।

एक या दो आदमी, जो दिन मे मुह इसलिए नही खोलते थे कि कही राजद्रोह न हो जाय, उन्होने रात को प्रेत से कहा—प्रभो, क्या अभी तुम्हारा जाने का समय नही हुआ ?

प्रेत हँसा और बोला—अरे सरल, हम कैसे तुझे छोड़कर जा सकते

है, जब तू हमसे जाने को नही कहता ?

उन लोगो ने कहा—प्रभो, हममे से बहुतेरे तुम्हारे जाने के नाम से घबडाते हैं।

प्रेत फिर हँसा।—"तुम्हारे भय के स्तम्भ पर ही मै राज्य कर रहा हू।" उसने कहा।

यदि कोई कहे कि इस कविता मे कुछ अस्पष्टता है तो हम नही मानेगे। यह तो बूढे धर्मपीडित भारतवर्ष का एक चित्र है, इसका उद्देश्य स्पष्ट है। कवि के हृदय मे भारतीयो के रूढिवाद से चोट लगी है, यह कविता उसीका स्फुरण मात्र है। फिर भी इस कविता मे उद्देश्य ही सबकुछ नही है। जिस कलामय तरीके से यह कहा गया है, वही उसे कविता बनाता है। हम इसी प्रकार की कवीन्द्र की सैकडो कविता दिखा सकते हैं, जहा केवल सौन्दर्यान्वेषण है।

रवीन्द्रनाथ की बहुत-सी कविताए ऐसी हैं, जिन्हे हम काव्यमय कहानी कह सकते हैं, इनमे किसी एक भाव को लेकर अत्यत कलामय चुभती हुई भाषा मे एक कहानी कही गई है, पाठक के हृदय मे एक टीस या आनद की लहर छोड जाती है। यह कहा जा सकता है कि इन कहानीमूलक कविताओ मे कवि अपनी कला के शिखर पर नही पहुचे, किंतु यह गलत है। आश्चर्य तो बल्कि इस बात से होता है कि दैनिक छोटी घटनाओ को लेकर कवि कैसे कला के उत्तुग सौध का निर्माण करते है।

डाक्तर जा बले बलुक नाको
राखो राखो खुले राखो
शिओरेर ओई जानला दुटो, गाये लागुक हावा।
ओषुध ? आमार फुरिये गेछे ओषुध खावा।
तितो कडा कतो ओषुध खेलाम ए जीवने,
दिने दिने क्षणे क्षणे।
बेंचे थाका, सेई जेनो एक रोग;
कतो रकम कविराजी, कतोई मुष्टियोग
इत्यादि[1]

---

[1] पूरी कविता न देकर आगे हम केवल उसका अनुवाद दे रहे है। पाठक इस कविता के छद को देखें।

"डाक्टर चाहे जो कुछ भी कहे, रहने दो, सिरहाने के उन दो जगलो को खुले रहने दो, जरा बदन मे हवा लगने दो। दवा ? दवा पीना मेरा खत्म हो चुका है। जिन्दगी मे मैने कितनी ही दवा खाई, रोज खाई, क्षण-क्षण खाई। वैद्य की दवा खाई, फुटकर दवा खाई, किंतु क्या फायदा ? जरा इधर-से-उधर हुआ नही कि फिर वही। यह अच्छा यह खराव, जो जो कुछ कहता था सबकी वातो को मानती हुई, घूघट काढकर मैने तुम्हारे घर मे वाईस साल काट दिये। तभी तो घर मे और घर के वाहर सभी मुझे लक्ष्मी कहते है, अच्छी वतलाते है। इस घर मे मै नौ साल की एक लडकी आई थी, फिर इस परिवार की गली से होकर तमाम लोगो की इच्छा का बोझ उठाती हुई मै अपने रास्ते के अत मे पहुची।

"सुख-दु ख की वात जरा सोचू, इतना समय नही था। यह जीवन अच्छा है, या बुरा, या और कुछ, कुछ आगा-पीछा सोचू इतना मौका कव मिला ! एक इकरस क्लात धुन मे काम का चक्का घूमता रहा। बाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के मे वधी रही, घुमनी मे अधी वनी हुई। मुझे मालूम ही नही हुआ मै क्या हू। मुझे यह भी मालूम नही हुआ कि यह पृथ्वी भी कोई चीज है और उसका कोई अर्थ भी हे। मैने यह कभी नही सुना कि मनुष्य की कोई वाणी है, जो महाकाल की वीणा मे झकृत हो उठती है। मै सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के बाद खाना है, और खाने के वाद पकाना है। बाईस साल तक मै एक ही चक्के मे बधी रही। अब मालूम होता है कि वह चक्का बद होनेवाला हे। तो होने न दो। अब दवा की क्या जरूरत ?

"बाईस वसत आये थे। गध से विह्वल दक्षिण वायु ने जल और स्थल मे एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्लाकर कहा होगा—खोलो, किवाडे खोलो—किंतु मै भला कव जान पाती थी कि वह कव आई और कव सिर टकराकर चली गई ! शायद वह धीरे-से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम मे कुछ गलती हो जाती थी, हृदय मे जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसीके पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन मे मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कही मुहल्ले मे शतरज खेलने जाते थे। जाने दो उन वातो को ! हाय, आज यह सव क्षणिक व्याकुलता की वाते क्यो याद आ रही है ?

'आज पहली बार बाईस वर्ष के बाद वसत इस घर मे आया है। जगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनद से सिहर-सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हू, महीयसी हू, मेरे ही सुर मे निद्रा-हीन चद्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बाधा है। यदि मैं न होती तो साध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा उद्यान मे फूलो का खिलना अर्थहीन होता।

'बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर मे कैदिन थी। फिर भी उसके लिए दु ख नही था। बात यह है कि सुधबुधहीनता मे दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहापर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानो इस जीवन मे ऐसी कहलाना ही मेरी परम सार्थकता थी। घर के कोने मे रहना, और वही से लोगो की इस किस्म की तारीफे सुनना। आज न मालूम कब मेरे बधन की वह रस्सी कट गई। आज वहापर, जहा जन्म तथा मृत्यु एक तटहीन मुहाने मे जाकर मिल गये है, मै देखती हू कि रसोईखाने की दीवारे जरा से बुलबुले की तरह विलीन होगई हैं। इतने दिनो मे, मालूम होता हैं, पहले-पहल विवाह की वशी विश्व-आकाश मे बज रही है। तुच्छ बाईस साल आज घर के कोने के धूल मे पडे रहे। मृत्यु की सुहागरात मे आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार मे प्रार्थी बनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नही है, इसलिए वह मेरी अवहेलना नही करेगा। मुझमे जो सुधा-रस है, वह आज उसे माग रहा है। ग्रहताराओ की सभा मे वह निर्निमेष नेत्रो से मेरे मुह की ओर टकटकी लगाये खडा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनत भिखारी, मेरे मरण, व्यर्थ बाईस वर्षों के काल के पारावार से मुझे पार कर दो।'[1]

इस कविता में कुछ भी अस्पष्टता नही है। इसमे नारी, विशेषकर भारतीय नारी की अत्यत मर्मभेदी कहानी है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमे चित्र है। सच है, इसमे नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नही सुनते, परतु उसे एक भाग्यवादी (Fatalist) की तरह अपने अत का आवाहन करती हुई पाते है, किंतु क्या यही हमारे यहा की नारी का सच्चा चित्र नही है? 'उर्वशी' तथा अन्य ऐसी कविताओ मे कवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रगीन चश्मो से देखा है, किंतु बगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति'

[1] पहली बार यह कविता सबुजपत्र (वैशाख १३२५) में छपी।

कविता मे दिखलाया गया है वह वास्तविक है ।

रवीन्द्र-समालोचना मे उनकी 'उर्वशी' की आलोचना एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहले उसे उद्धृत करेंगे, फिर अपना वक्तव्य देंगे । वह लिखते हैं—

"रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' नामक कविता भाषा, छद तथा चित्र-रचना के इद्र-जाल की दृष्टि से कितनी भी मनोहर हो, उसमे कवि अपनी मूल कल्पना से हट गया है । उर्वशी का जो चित्र इसमे प्रकट हुआ है, उसमे सौंदर्य देवी को कामना की देवी के रूप मे देखने मे किसीको आपत्ति नही हो सकती, वल्कि उसका यही रूप यहापर रग लाता है, किंतु बात तो यह है कि कवि ने उर्वशी को आदर्श सौंदर्य की आदि प्रतिमा रूप मे कल्पना कर ऐसे चित्र तथा विशेषणो का प्रयोग किया है कि उनसे विरोध की उत्पत्ति हुई है । कवि ने इस कविता में कामना को जो रूप दिया है, वह पाठक को मुग्ध करता है, किंतु इस कामना से ही उन्होने सौंदर्य का जो आदर्श खडा किया है, जरा सोचकर देखा जाय तो वह इस कल्पना का विरोधी मालूम होगा । इसलिए सौंदर्यतत्व की दृष्टि से मैं इस कविता का जरा विश्लेषण कर दिखाना चाहता हू ।

कवि कहते है—

आदिम वसतप्राते उठेछिलो मथितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र विषभाड लये वाम करे ।

'उर्वशी आदिम वसत के प्रात काल मे सागर को मथित कर उठी थी, उसके दाहिने हाथ मे अमृत का पात्र और वाये हाथ मे विषभाड था ।' अच्छी बात है, किंतु जहापर विषभाड की भावना थी वहा विशुद्ध सौंदर्यानुभूति की बात नहीं आ सकती, काम या प्रेम की ही बात वडी हो उठती है । सुन्दर वस्तु से हमेशा आनद ही मिलता है (A thing of beauty is a joy for ever), विशुद्ध सौंदर्य-प्रेम जहा है, वहा विष भी अमृत हो उठता है । उर्वशी का रूप जिस कामना को उद्रेक करता है, उसमे

मुनिगण ध्यान भाडि देय पदे तपस्यार फल
तोमार कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चचल
अकस्मात पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा,
नाचे रक्त धारा,।

—मुनियो का ध्यान भग हो जाता है, वह अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणो पे सौपते हे, तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चचल हो जाता है, अकस्मात पुरुष के हृदय मे चित्त अपनेको खो बैठता है, उसके रक्त की धारा नाच उठती है।

कवि किस सौदर्य की वदना कर रहे हे ? कवि ने जिसका उद्‌बोधन—

नहो माता, नहो कन्या नहो वधू

—'माता नही हो, कन्या नही हो, वधू नही हो'—कहकर किया हे, वह, चाहे उषा के उदय की तरह 'अनवगुठिता' और 'अकुठिता' हो, किंतु उसके कटाक्ष के आघात से यदि त्रिभुवन यौवन-चचल हो उठे तो भी माता, कन्या या वधू न होना उसके लिए गौरव की वस्तु नही हो सकती, वह मोहिनी है तथा समाधि के लिए विघ्नस्वरूपा स्वर्गवेश्या मात्र है, इसलिए उसका सर्वाग निखिल के नयन के आघात मे रोयेगा, यह अधिकतर सत्य है। इस प्रकार सौंदर्य का उदय केवल आदियुग मे हो नही, हर युग मे मानवचित्त मे होता रहता हे। यह सौंदर्य स्वर्ग का उदयाचल नही है, मर्त्य का उदयाचल और अस्ताचल उभयाचलवासी है। इसके लिए जो क्रन्दन है वह आदियुग से आजतक निरवच्छिन्न रूप से होता जा रहा है। इस कविता मे परस्पर-विरोधी कल्पना का और भी प्रमाण यह है कि जिसे कवि ने वालिका के रूप मे अधेरे सागर के नीचे अकलक हास्यमुख मे प्रवाल के पलग मे सोते देखा हे और जिसको योवन मे अपने कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन को यौवन-चचल करते देखा है उसीको कवि पूछते हे—

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कबे तुमि फुटिले उर्वशी ?

—वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर, हे उर्वशी, तू कब खिली ?

प्रश्न तो यह है रवीन्द्रनाथ की तरह कवि की कल्पना मे ऐसी गडवडी क्यो आ गई ? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि यूरोपीय काव्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण कवि अपने कवि-धर्म को भूल गया है, इसलिए कल्पना मे सामजस्य भी जाता रहा। यह उर्वशी न तो लक्ष्मी है, न वेद-पुराण की उर्वशी ही है, न रवीन्द्रनाथ के अपने मन की ही कोई सृष्टि हे। यह उर्वशी काम-जननी एफ्रोडाइट का नया यूरोपीय रोमाटिक सस्करण है—प्रेम की माता (Mother of love) साथ ही

सघर्ष की माता (Mother of strife)। यूरोपीय काव्य मे सौदर्य के साथ कामना तथा वेदना की अपूर्व उत्कठा ने मिलकर साहित्य को मनुष्य-जीवन की वास्तविकतम अनुभूति की अभिव्यक्ति मे परिणत किया है, जिसके मर्मस्थल से 'हमारे सबसे मधुर गीत वे है, जो सबसे वेदनापूर्ण भावना को व्यक्त करते है' (Our sweetest songs are those that tell of saddest thought) कवि की यह कातर उक्ति निकलती है। रवीन्द्रनाथ यहा सौदर्य के उसी आदर्श से आकृष्ट है, किंतु इस प्रकार होने पर भी रूप की यह पार्थिवता तथा इद्रिय-सर्वस्वता को उन्होने तहेदिल से ग्रहण नही किया है। इसलिए उनकी उर्वशी 'नन्दनवासिनी' तथा सुरसभा की नर्तकी होने पर भी वह उसे

'स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उषसी'

—स्वर्ग के उदयाचल मे तुम मूर्तिमती उषसी हो—यह कहकर ऋषि के ऋकमत्र से उसे वदना करते नही हिचकते। फिर उसीके नृत्य के सम्बन्ध मे कहते है—

छदे छदे नाचि उठे सिधु माझे तरगर दल
शस्यशीर्षे शिहरिया कापि उठे धरार अचल

—'उसके छन्द मे समुद्र मे लहरे नाच उठती है तथा शस्य के सिर पर पृथ्वी का आचल काप उठता है।' जो ऐसी कामना-लेशहीन प्राकृतिक सौंदर्य की महिमा मे महिमामयी हैं, जिसके 'स्तनहार से दिगन्त मे नक्षत्र बिखर पडते हैं', उन्हींके 'कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चचल हो जाता है' और 'पुरुष के वक्ष मे चित्त आत्महारा होता है और रक्त की धारा नाचने लगती है।' उर्वशी की कल्पना मे यह परस्पर विरोधी-भाव ने कविता मे रस के पूर्ण परिपाक होने मे बाधा पहुचाई है। कामना की जो दिशा इसमे स्पष्ट हुई है उसे पूर्ण रूप से प्रकट नही किया गया, उर्वशी के बाये हाथ मे कवि ने जो विषभाड दिया है उसमे अनन्त-यौवना उर्वशी का वह कटाक्ष का आघात और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आका तवो चरण-शोणिमा

—'जगत की अश्रुधारा से तुम्हारे तनु की तनिमा धुली है और तुम्हारे पगचिह्न त्रिलोक के हृदय के रक्त मे अकित है' तथा 'मुक्तवेणी विवसना' आदि कहने से कवि के मन मे जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही इस कविता का प्रधान

रस है। वह कामना और कामना की विषजर्जर क्रन्दन-उत्तेजना करने मे ही यहा मधुरतम गीत की सार्थकता है। जिस अंग्रेजी कविता का प्रभाव इस कविता पर है, मुझे ऐसा विश्वास है कि वह स्विनवर्न की 'एटलान्टा इन केलीडन' है। उसके सुविख्यात 'कोरस' (Chorus) से कुछ उद्धृत करने पर ही पाठक समझ जायेंगे कि मैंने इस प्रभाव की बात को क्यो कहा है, और यह भी समझेंगे कि स्विनवर्न की इस कविता मे रस कितना गाढ और उज्ज्वल हो गया है, इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कल्पना (चूकि वह रक्तमास का विक्षोभ तथा काम की प्रधानता स्वीकार नही करती) इद्रियार्थ को अतींद्रिय भावविलास मे कितनी ग्रस्त होकर रह गई है।

इस कविता को मैने सक्षेप मे उद्धृत किया। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' पर इस कविता का प्रभाव है या नही, यह प्रश्न इस क्षेत्र मे अप्रासगिक है। रवीन्द्रनाथ ने अनुकरण और स्वीयकरण (अपना कर लेने) मे जो भेद बताया है वह इस समय याद दिलाना चाहता हू। रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे स्विनबर्न की ऐफ्रोडाइट ने बहुत-कुछ आवेग पहुचाया है इसका यथेष्ट प्रमाण उद्धृत अशो से मिलेगा। स्विनबर्न की ऐफ्रोडाइट का सौदर्य जैसे—

An evil blossom blood red and bitter of fruit And the seed of it laughter and tears (अशुभ यह पुष्प रक्त-सा लोहित, फल कडवा, उसका वीज हास्य और अश्रु) ठीक इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की उर्वशी भी—

उठेछिलो मथितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभाड लये वाम करे[1]

स्विनवर्न की ऐफ्रोडाट ऐसे ही

Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years

—समुद्र से विना जड के उद्भुत महाकाल से विना कलम के उत्पन्न उसी तरह कवीन्द्र उर्वशी को प्रश्न कर रहे है—

---

[1] सागर को मथकर दाहिने हाथ में सुधापात्र और बायें हाथ में विषभाड लेकर उठी थी।

वृंतहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि —
कबे तुमि उठिले उर्वशी ?[1]

हा, स्विनवर्न की ऐफ्रोडाइट उर्वशी की तरह नर्तकी नही है, फिर भी उर्वशी के नृत्य के छन्द मे जैसे समुद्र की लहरे तथा शस्य शीर्ष मे धरा का आचल तरंगित हो उठता है, किंतु ऐफ्रोडाइट के सौंदर्य की व्याप्ति तथा विकास इसी तरह का है—

In the uttermost ends of the sea
The lights of thine eyelids and hair

—समुद्र के दूरतम किनारे तुम्हारे पलको और केशो की ज्योति। यहा ऐफ्रोडाइट से उर्वशी मे कवि-कल्पना अधिक स्फूर्ति पा सकी, किंतु

The lights of the bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air ?

—वक्षस्थल का प्रकाश सूर्य के रथचक्रो और वातावरण के उडते अगारो के बीच मानो दमक रहा है।

तव स्तनहार हते दिगतेर खसि पडे तारा[2]

ने रवीन्द्र की उर्वशी के सौंदर्य को स्निग्धतर कर दिया है, वायु की जलती शिखाओ के बीच से तारे छिटक पडते है, सैकडो गुना सुभावसमृद्ध हुआ है, फिर—

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire

—क्या तू अब भी नही बदलेगी और दया न करेगी, बल्कि निराशा साथ ही वासना का केन्द्र बनी रहेगी और—

जगतेर अश्रु धारे धौत तवो तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आका तव चरण-शोणिमा

---

१ हे उर्वशी, तू वृंतहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर कब उठी ?
२ तेरे स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र छिटक पड़ते हैं।

आदि की विचार-शैली भिन्न होने पर भी, या कही-कही जैसे

And the waves of the sea as she came
Clove, and the foam at hei feet
Fawning

—और जव वह आई तो समुद्र की लहरे फट गई और फेन उसके पैरो को दुलारने लगे।

तरगित महासिधु मत्रशात भुजगेर मतो
पडेछिलो पदप्राते, उच्छसितो फणा लक्ष शत
करि अवनत।[१]

एकदम समातराल होने पर भी, दोनो मे जो प्रभेद है, उससे 'उर्वशी' कविता दुर्बल हो गई है, कल्पना की जहा समता है वही पाठक मुग्ध होता है। दोनो के सौंदर्य का मूल कारण कामना है। इस कामना को ही रवीन्द्रनाथ ने एक स्निग्ध अतीद्रियता से मडित करने की चेष्टा की, किंतु वे असफल रहे, इसके विपरीत केंद्रीय भाव ही दो हिस्सो मे वट जाने के कारण रसाभास हुआ है।

सौंदर्य कल्पना की वह दिशा (जिसने मनुष्य की कामना को प्रदीप्त कर साहित्य के एक वडे भाग को उज्ज्वल किया है) इसमे प्रकट हुई है।"

मोहितलाल की उर्वशी समालोचना को मैं उद्धृत कर चुका, किंतु और भी थोडा उद्धृत करने की आवश्यकता है, जिससे उनकी पूरी वात पाठको के सामने आ जाय। वे कहते है—

"रवीन्द्रनाथ के काव्य मे ही सौदर्य का एक दूसरा आदर्श प्रकट है। मैं सक्षेप मे उसका उल्लेख करूगा, आलोचना जिससे बढ न जाय मै उसको उद्धृत नही करूगा, केवल दिशा भर बता दूगा। 'वलाका' की 'दुइ नारी' शीर्षक कविता मे रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी और लक्ष्मी दोनो के रूप का वर्णन किया है, फिर लक्ष्मी के सौंदर्य को ही तरजीह देकर उसी पर मुग्ध हुए है। 'चित्रागदा' काव्य मे चित्रागदा का स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर अर्जुन के चित्त मे जो चमत्कार पैदा हुआ था वह यो है—

---

[१] तरगित महासिधु मत्रशात भुजग की तरह पदप्रात में लोट रहा था, उसने अपने लाखों उच्छ्वसित फण-फणों को अवनत कर लिया था।

केनो जानि अकस्मात
तोमारे हेरिया बुझिते पेरेछि आमि
कि आनन्दकिरणेते प्रथम प्रत्यूषे
अन्धकार महार्णवे सृष्टि-शतदल
दिग्विदिके उठेछिलो उन्मेषितो हये
एक मुहूर्तेर माझे .
. चारिदिक हते
देवेर अगुलि जेनो देखाए दितेछे
मोरे, ओई तव आलोक आलोक माझे
कीर्तिक्लिष्ट जीवनेर पूर्ण निर्वापण।
या अन्यत्र
भाविलाम
कत युद्ध, कत हिंसा, कत आडम्बर
पुरुषेर पौरुष-गौरव, वीरत्वेर
नित्य कीर्तितृषा, शांत हये लुटाइया
पडे भूमे, ओई पूर्ण सौंदर्येर काछे
पशुराज सिंह यथा सिंहवाहिनीर
भुवन-वाछित अरुण चरणतले।

—'न मालूम क्यो तुमको देखकर अकस्मात मैंने जाना है कि प्रथम प्रभात मे से अन्धकार महासमुद्र मे एक किरण से सृष्टि का शतदल दिशाओ मे एक मुहूर्त मे उन्मेषित हो उठा था चारो तरफ से देवता की उगलियो ने मानो मुझे दिखला दिया कि तुम्हारे इस अलौकिक आलोक मे कीर्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्वापण हे। मैंने सोचा, तुम्हारे उस पूर्ण सौंदर्य के सामने कितने युद्ध, कितनी हिंसाए, पुरुष का पौरुष-गौरव, वीरता की नित नई कीर्ति की प्यास शान्त होकर चरणो मे लोटने लगती है, जैसे पशुराज सिह सिहवाहिनी दुर्गा के भुवन-वाछित अरुण चरणो मे लोटता है।'

मोहितलाल की राय मे रवीन्द्रनाथ मे सौंदर्य का यह दूसरा आदर्श है, उनके अनुसार यहा केवल कामना नही, पुरुष का पौरुष स्तम्भित हो जाता है, जैमे जीवन्मुक्ति होती है। वह कहते है, "यहा किसी कर्म-प्रवृत्ति हृदय-वृत्ति का अवसर

नही है, हम जिसको जीवन कहते है, वह द्वंद्व और विक्षोभ शान्त हो जाता है, क्षुद्र चेतना जैसे एक बृहत्तर चेतना मे लुप्त हो जाती है, इसीका नाम जीवनका पूर्ण निर्वापण है। इस सौंदर्य-प्रीति का नाम ही कलात्मक यतिवाद के रूप मे सौंदर्यवाद ज्ञात होता है।"

मैं मोहितलाल के अपने वाक्यो तथा उदाहरणो से ही दिखलाऊगा कि उनकी अग्रेजी काव्यमर्मज्ञता ने उनको पथभ्रष्ट कर दिया हे, और वह 'उर्वशी' को ठीक नही समझ पाये। मैं पहले यह देखना चाहूगा कि क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी और चित्रागदा मे कोई आदर्शगत भेद है, या उनमे उतना ही प्रभेद है, जितना दो यात्रियो मे आदर्शगत या मौलिक भेद न होते हुए भी होना चाहिए। चित्रागदा के सौंदर्य मे मोहितलाल जीवन का पूर्ण निर्वापण देखते है, किंतु मैं तो केवल एक प्रकार के जीवन (जिसमे वीरत्व की नित नई कीर्ति की प्यास वगैरह थी) का ही निर्वापण देखता हू, और एक दूसरे प्रकार के शायद हृदय के अधिकतर तडपनयुक्त जीवन का सूत्रपात देखता हू। यदि किसी नारी के रूप को देखकर अर्जुन की तरह पुरुषसिंह अपने पौरुष को भूल जाता है, अपने जीवन के अवतक के तरीको पर लात मारकर उस सुन्दरी रूपसी के चरणो मे लोटने को उद्यत हो जाता है तो इसे जीवन का पूर्ण निर्वापण कैसे कहेंगे ? मैं तो इसमे कामनामय सौंदर्य को ही देखता हू। मोहितलाल जिसको सौंदर्यवाद या कलात्मक यतिवाद कहकर चीख उठते हैं, मै तो उसमे अत्यत कामनामय सोदर्यानुभूति ही देखता हू, किन्तु इसमे मैं मोहितलाल को दोष नही देता, कामना लेशहीन सौंदर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव चीज है। इसलिए यदि 'उर्वशी' में रवीन्द्रनाथ कथित कल्पना से विचलित हो गये हैं तो यह प्रकट करता है कि दार्शनिकता के आवेश मे कवि अपने कवि-धर्म को भूलते-भूलते भी नही भूलते हैं। यदि मोहितलाल की बात मान ली जाय तो यही प्रमाणित होगा कि सौभाग्य से कविवर अपने अन्तर की पुकार पर ही चलते है, सौदर्य-विज्ञान की पुस्तको पर नही। मोहितलाल ने स्वय ही आगे चलकर माना हे, 'इसमे (सौंदर्यवाद) वास्तविक जीवन और जगत् के प्रति उदासीनता होती है, अतएव इसमे सृष्टि का पूर्ण सत्य नही है, यह भी सूक्ष्मतर इंद्रियविलास या अतींद्रिय भावविलास है।'

इससे स्पष्ट है कि कविता का यह दूसरा आदर्श अवास्तविक है, इससे जीवन का कोई सम्बन्ध नही है। यह अच्छा ही हुआ कि कविता के इस प्राण-

हीन सगमरमर निर्मित आदर्श को न अपनाकर रवीन्द्रनाथ ने तडपनयुक्त सजीव आदर्श को अपनाया। इसी आदर्श की प्राणरसपुष्टता के कारण ही 'उर्वशी' कविता नारी पर एक श्रेष्ठ कविता है। मोहितलाल ने यह जो कहा है, 'माता नही हो, कन्या नही हो, वधू नही हो' के साथ 'तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चचल हो जाता है' इसका सामजस्य नहीं हे, मेरी राय मे यह पूर्णत गलत है। 'उर्वशी' कोई गणित का सवाल नही है, वह एक जीती-जागती, तडपती-फडकती चीज है, फिर वह कवि-कल्पना मे कभी ऐसी, कभी वैसी मालूम होगी, इसमे आश्चर्य क्या है। जिसको हम प्यार करते है उस नारी के सम्वन्ध मे ऐसे भाव का आना-जाना आश्चर्यजनक नही है। कभी तो उसके कटाक्ष पर सारी पृथ्वी घूमती हुई मालूम होती है, कभी वह इतनी दूर की वस्तु मालूम होती है कि वह न तो माता, न कन्या, न वधू मालूम होती है। क्या यह वात कोई ऐसी अनहोनी है कि समालोचक मोहितलाल को मालूम नही थी ?

मोहितलाल ने कीट्स की प्रसिद्ध पक्ति को लेकर यह दिखाया है कि 'दाहिने हाथ मे सुधापात्र तथा वाये हाथ मे विषभाड, हाथ इसमे विषभाड का उल्लेख विशुद्ध सौदर्यानुभूति मे वाधक है। कोई भी व्यक्ति विद्वान्‌समालोचक से सहमत नही हो सकता। मैं तो समझता हू कि इस विपभाड की मौजूदगी ही सुधापात्र को और भी सुधामय वना देती है, यही प्रकृति का नियम है। मृत्यु के कारण ही जीवन मधुर है, विरह के भय के कारण ही मिलन प्रिय है, इसके कितने ही उदाहरण है, फिर यदि स्वर्ग रूपसी चिरयौवना उर्वशी के एक हाथ के सुधापात्र को मधुरतर वनाने के लिए कवि ने दूसरे हाथ मे विषभाड की कल्पना की है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? फिर यह केवल कल्पना ही नही है। क्या रूप और कामना की देवी, वह चाहे जिसके लिए जो नाम रखती हो, एक हाथ मे अपने प्रेमिक के लिए 'अमी' और दूसरे मे 'हलाहल' नही रखती ? एक हिन्दी कवि ने, जो शायद स्विनबर्न के परदादा के परदादा के परदादा से भी आगे थे, प्रिया के नयनो को अमृत, हलाहल और मद से भरा देखा है। मुझे डर है, विद्वान् समालोचक कीट्स की उस वात को ठीक-ठीक नही समझे। क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी कही पर आनन्द की चिरतन धारा नही है या आनद एक आत्मगत चीज है, इसलिए प्रेमिक तथा पुजारी की आखो मे क्या आनन्द होगा, यह साधारण नियम से

वताया नही जा सकता। सिसक-सिसककर विस्मल होकर मरने मे ही यदि किसीको आनन्द मिले तो ?

उर्वशी पर एक और वात, कहकर हम खत्म करेगे। मोहितलाल ने कहा है कि कवि ने जिसको अन्धकार सागर के नीचे प्रवाल के पलग पर अकलक हास्यमुख से सोते देखा है तथा यौवन मे जिसके कटाक्ष से त्रिभुवन को यौवन-चचल होते देखा है उसीको नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश सौदर्य के प्रतीक रूप मे कल्पना करते हुए जो प्रश्न करते है 'वृतहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर, हे उर्वशी, तू कव खिली ?' इससे कल्पना मे गडवडी आ गई है। मै नम्रतापूर्वक कहना चाहता हू कि समालोचक फिर गलत समझे है। यह याद रहे कि नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश शब्द समालोचक के है, फिर कवि जो प्रश्न पूछते है कव खिली, न कि कव पैदा हुई। कवि ने उसको कली की अवस्था मे देखा, फिर खिली अवस्था मे देखा, किन्तु प्रश्न यह है कि वह कव खिली। मैं समझता हू कि यह प्रासगिक प्रश्न है। सृष्टि मे इसी रहस्य को समझाने के लिए वैज्ञानिको ने सर्पनशील विकासवाद (Emergent Evolution) आदि कितने ही सिद्धान्त वनाये है।

अव रहा यह कि स्विनवर्न की कविता से रवीन्द्रनाथ को कहातक मसाला मिला, यह हमने पाठको के सम्मुख रख दिया, किंतु जो कुछ भी पेश किया उसी-से मालूम होता है कि उन्होने कुछ नही लिया। विशेषकर जहा वतलाया गया है कि

And the waves of the sea as she came

और जव वह आई तो समुद्र की लहरे इत्यादि का एकदम अनुवाद है, वहा तो हमे मालूम होता है।

मन्त्रशान्त भुजगेर मतो
फणा लक्ष शत
करि अवनत,

से कवीन्द्र का कथित अनुवाद उत्कृष्ट, गहराईयुक्त इतना सुन्दर है कि कथित मूल वडा दुर्वल मालूम देता है।

अव हम सरसरी तौर पर रवीन्द्रकाव्य पर दो-चार वाते और कहेगे। रवीन्द्रनाथ को लोग चाहे रहस्यवादी समझे और कहे, किंतु उन्होने मानो साफ-साफ चडीदासी वाणी को ही (जिससे वढकर कोई सक्षिप्त कविवाणी हो नही सकती) वार-वार कहा है—

सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई

—'सबसे बढकर सत्य मनुष्य है, उसके ऊपर कुछ नही है।' बार-बार रवीन्द्रीय वीणा से यह वाणी झकृत हुई है। रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है, 'स्वर्ग से विदाई'। इसमे मनुष्य ने स्वर्ग से कहा है—

थाको स्वर्ग हास्यमुखे, करो सुधापान
देवगण ? स्वर्ग तोमादेरि सुखस्थान
मोरा परवासी। मर्त्यभूमि स्वर्ग नहे
से जे मातृभूमि—ताइ तार चक्षे बहे
अश्रु जलधारा'

—'हे स्वर्ग, तुम प्रसन्न बने रहो, हे देवताओ, सुधापान करो। स्वर्ग तुम लोगो के सुख का स्थान है, हम तो यहा अपनेको प्रवासी पाते हैं। मर्त्यभूमि स्वर्ग तो नही है, किंतु मातृभूमि है, तभी तो उसकी आखो मे अश्रुजल की धारा बहती है।'

ऐसी स्वर्गविमुखता होते हुए भी रवीन्द्रनाथ का मनुष्य यहा लौटकर एक स्वर्गीय स्वप्न मे ही विभोर रहता है, जीवन की कठिन वास्तविकताओ से उसका जैसे कोई सम्बन्ध नही। वह यहा भी कामना करता है 'यदि धरातल मे दीनतम घर मे मेरी प्रेयसी जन्म ले, किसी नदी के किनारे गाव मे एक पीपल के पेड के नीचे, वह बालिका फिर अपने वक्ष मे मेरे लिए सुधा का भडार सचित कर रक्खेगी' इसी तरह की और बाते है। इसीसे रवीन्द्र-साहित्य आधुनिक होने पर भी सच्चे मानो मे पूर्ण क्रातिकारी नही है, फिर भी रवीन्द्रनाथ अछूतो के दुख से विक्षुब्ध मालूम होते है, वे राष्ट्र से कहते है, छुआछूत दूर करो, 'नही तो अपमान मे उनको सबके समान होना पडेगा, उन्हे दूर रखकर तुमने मनुष्य के हृदय के देवता की अवहेलना की है।' 'लकडहारा जहा लकडी चीरता है, किसान जहा हल जोतता है' वहापर रवीन्द्रनाथ के भगवान् भी हैं, किंतु इतनी सहानुभूति का ऐश्वर्य होने पर भी कवीन्द्र कभी भी इन दुखो की तह मे, जो एकदेशीय तथा वर्गीय समाज-व्यवस्था है, नही पहुच पाते।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के सपादन मे 'वगला-काव्य परिचय' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमे कवीन्द्र ने अपनी १७ कविताए दी है, किंतु इनमे से एक भी कविता किसी वाद को पुष्ट नही करती। इसी से यह निष्कर्ष तो नही

निकलना चाहिए कि वे अपनी उन कविताओ से जो, रहस्यवादी (Mystic) है, अपनी दूसरी कविताओ को अच्छी तरह समझते है, किंतु इससे यह अर्थ तो निकाला ही जा सकता है कि अपनी कविताओ मे कवित्व की दृष्टि से वह अपनी आध्यत्मिक कविताओ को विशेष महत्व देने के लिए तैयार नही है। सौभाग्य से बगला-साहित्य मे 'गीताजलि' ही रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ दान नही है। मोहितलाल ने लिखा है और मैं इससे सहमत हू कि रवीन्द्रनाथ की विशेषता यह है कि उन्होने प्राच्य भाव-साधना और प्रतीच्य रूप-साधना का सुदर समन्वय किया है। इसी कारण प्राच्य के रहस्यवाद ने उनके हाथो मे एक नया ही रूप धारण किया है। 'गीताजलि' की कविताए रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का उच्चतम स्फुरण नही है।

कुछ भी हो, यूरोप मे गीताजलि की कविताओ की ही-धूम रही। रवीन्द्र-प्रतिभा मे चूकि प्राच्य भाव-परायणता का और रूप-व्याकुलता का समन्वय है, इसलिए दोनो प्रकार के पाठको को उनकी कविता मे अभिनवत्व मिलता है।

मै पहले ही कह चुका हू कि रवीन्द्रनाथ को किसी वाद के विशेषण मे लाकर यह कहने की चेष्टा करना कि इसी वाद के वादी है, गलत होगा। पाश्चात्य मे टामस मान की तरह व्यक्ति हैं, जो कई बार काया पलट कर दूसरे ही कलाकार हो चुके है, उन्होने जैसे एक ही जीवन मे कई जन्म पाये, किंतु रवीन्द्रनाथ इसके विपरीत एक दूसरे ही तरह के व्यक्ति है। वह एक साथ कई जीवन जीते है। यदि सन् और तारीख मे देखा जाय तो इस बात की सत्यता मालूम होगी। एक ही समय मे वह कई तरह की कविता लिखते है। कही तो वह बिल्कुल फ्राइड-वादी है, कही रहस्यवादी, कही भावुक है, कही विचार का नूपुर छमछम बज रहा है। यह एक न्यारी ही दुनिया है।

हिंदी-जगत मे रवीन्द्रनाथ को लोग मुख्यत अग्रेजी के जरिये से जानते है, इसलिए वह हिंदी-जगत मे केवल विशेष ढग के कवि माने जाते है। बात यह है कि लोग अग्रेजी 'गीताजलि' को ही पढते है, जिसके कारण उन्हे नोबुल पुरस्कार मिला। दूसरी बहुत-सी पुस्तको को वह पढने का कष्ट नही उठाते। यदि वह 'गीताजलि' के अतिरिक्त 'सोनार तरी', 'बलाका' आदि पढे तो उनकी यह धारणा जाती रहे।

अत मे हम रवीन्द्रनाथ की 'एबार फिराओ मोरे' (अब मुझे लौटाओ)

कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते है। यह कविता एक नई ही वाणी को लेकर शखनाद कर रही है, जिसमे वह कही-कही आधुनिको से आधुनिक मालूम होते है। दो-तिहाई शताब्दी तक साहित्यिक क्षितिज मे बराबर रहने पर भी रवीन्द्रनाथ अपनी नवीनता को कायम रख सके, इसका कारण यह है कि उनका ग्रहणशील मन हमेशा नये युग को अपनाता रहा। किसी साहित्य-कार के लिए सबसे मुश्किल होता है भाषा-रीति मे परिवर्तन, किंतु वह इसमे भी पिछडे नही रहे। उन्होने बुढापे मे बगला की साधु भाषा को छोडकर आम बोलचाल की भाषा अपनाई। केवल यही नही कि उन्होने उसको इस्तेमाल किया, बल्कि उन्होने उसका पक्ष लेकर बडे जोरो की वकालत की। कई समालोचको को इस बात पर बडा आश्चर्य है, क्योकि उनकी पहले की सारी रचना साधु भाषा मे है और 'रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथत्व उसी भाषा मे है।' पहले ही मैं कह चुका हू कि रवीन्द्रनाथ मुख्यत भद्रलोक श्रेणी के कवि है, सभव है जब आम लोगो का साहित्य हो तो उसमे रवीन्द्रनाथ का स्थान यह न रहे, किंतु बगला भाषा को जो सौष्ठव तथा नमनीयता उन्होने दी है, वह रवीन्द्र-विरोधी कवि तथा साहित्यिक के लिए भी अनुकरणीय होगी। बगला भाषा का कोई भी लेखक इस ऋण से उऋण नही हो सकता। 'एबार फिराओ मोरे' कविता का भावार्थ इस प्रकार है—

"इस ससार मे जब सभी हर समय सैकडो काम मे लगे हुए हैं, उस समय हे कवि, तूने दोपहर की धूप मे एक पेड के नीचे बैठकर दूर जगलो की गध बहाकर लानेवाली हवा मे केवल बासुरी ही बजाई। अरे, आज तो तू उठ, कही आग जो लगी है। सुन, किसीका शख विश्ववासी को जगाने के लिए बज रहा है। कही से रोने की आवाज़ से सारा आकाश गूज उठा है। किसी अधकार कारागार मे बधन से टूटती कोई अनाथिनी सहायता माग रही है। दुर्बल की छाती पर चढकर मोटा-ताज़ा अपमान लाखो मुह से रक्त पी रहा है। स्वार्थ से उद्यत अविचार वेदना का परिहास कर रहा है।

"वे, जो लाखो मौन होकर सिर नीचा किये हुए खडे हैं, उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर सैकडो सदियो की वेदना की करुण कहानी है। जितना ही उनके सिर पर बोझ बढता जाता है, वे उसको उठाकर चलते रहते है जबतक जान रहती है, फिर मर जाने पर उसको अपने बच्चो के लिए छोड जाते हैं, न तो भाग्य को इसके लिए कोसते हैं, न ईश्वर की ही निंदा करते है, यहातक कि

मनुष्य को भी दोष नही देते, अभिमान नहीं जानते, केवल बस दो दाने अन्न खोटकर किसी तरह कष्टक्लिष्ट प्राण कायम रख सकते हैं। जब उस अन्न को भी कोई छीनना चाहता है तथा गर्व से अध-निष्ठुर अत्याचार से उसके हृदय पर चोट पहुचाता है तो वह यह भी नही जानते कि किसके द्वार पर न्याय-विचार की आशा से खडे हो, दरिद्र के भगवान् को बस एक बार पुकारकर वह चुपचाप मर जाता है।

"इन सब म्लान तथा मूढ मुखो मे भाषा देनी पडेगी, इन श्रात शुष्क भग्नहृदयो मे आशा प्रतिध्वनित करनी पड़ेगी, पुकारकर इन्हे कहना पडेगा—

"'अरे एक बार सिर उठाकर खडे तो हो जाओ। फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो, वह तुमसे भी डरपोक हैं। जभी तुम जाग उठोगे, वह भाग खडा हो जायगा। जभी तुम उसके सामने खडे हो गये तभी वह रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा सकोच से विलीन हो जायगा। ईश्वर उसपर विमुख हैं, उसका कोई सहायक नहीं, बस मुह से वह बडी-बडी बातें छाटता है। वह मात्र, वह मन-ही-मन अपनी हीनता को जानता है।'

"कवि, यदि तुममे प्राण है तो उठो, उसे साथ लेकर चलो और उसका आज दान करो। इस ससार मे बडे ही दु ख हैं, बडी व्यथाए हैं, बडी गरीबी है। हाय, यह तो बडा शून्य है, बडा छोटा है, बडा अधकार है। अन्न चाहिए, प्राण चाहिए, रोशनी चाहिए, खुली हवा चाहिए, शक्ति चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, आनद से उज्ज्वल आयु चाहिए और साहस से विस्तृत हृदय चाहिए। हे कवि, इस दीनता मे एक बार स्वर्ग से विश्वास तो ले जाओ।

"हे मेरी रगीन रगमयी कल्पने, अब मुझे लोटाकर फिर ससार के किनारे ले चलो, अब मुझे, हवा मे, लहरो-लहरो मे तथा मोहिनी माया मे न भटकाओ। निर्जन विशाद घने अतरवाली निकुज-छाया मे मुझे बैठाकर न रक्खो। दिन जाता है, सध्या हो आती है, उदास हवा मे वन सास लेकर रो पडता है। ऐसे समय मे मै निकल पडा जनता के बीच। जब मै जगत् मे आया था तो न मालूम किस माता ने मुझे यह बच्चो वाली बसुरी दी थी। उसीको बजाते-बजाते मै अपने सुर मे ही इतना मुग्ध हो गया कि मैं ससार-सीमा के बाहर चला-सा गया। दिन चले गये, रातें चली गईं। उस बासुरी से मैने सुर जरूर सीखा है, किंतु यदि मैं उस सुर की सहा‍यता से इस गीतशून्य अवसादपुर को

ध्वनित कर सकू, यदि मृत्युजयी आशा के सगीत से कर्महीन जीवन के एक कोने को यदि एक मुहूर्त के लिए ही तरगित कर सकू, दुःख यदि उसकी भाषा पा ले, अतर की गहरी प्यास यदि स्वर्ग के अमृत के लिए जग उठे तभी मेरा गान धन्य होगा, तभी सैकडो असतोषो को महागीत मे निर्माण प्राप्त होगा।

"कहो आज क्या गाओगे, क्या सुनाओगे ? कहो अपना दुःख झूठा है, अपना छोटा सुख भी, जो व्यक्तिस्वार्थमग्न होकर बडे जगत् से दूर है, उसने कभी जीना नही सीखा। विश्वजीवन की महान् लहरो पर नाचते-नाचते हमे निर्भर होकर दौडना पडेगा, सत्य को ध्रुवतारा बनाकर तथा मृत्यु से न डरकर। दो दिन के आसू सिर पर गिरेंगे, उसीमे हम उसके अभिसार मे चलेंगे जिसको मैंने जन्म-जन्म के लिए जीवनसर्वस्व-धन सौंप दिया। वह कौन है ? नहीं मालूम, फिर भी मालूम है, उसीके लिए रात के अधेरे मे यात्री मनुष्य युग से युगातर की ओर आधी तथा वज्रपात मे जा रहा है, अपने अदर के दीये को सावधानी से पकडकर सिर्फ मालूम है। जिसने कानो से उसकी पुकार सुनी है वह निडर होकर सकट के भवर मे कूद पडा है, उसने दुनिया पर लात मार दी है तथा अत्याचारो को सीना खोलकर ग्रहण किया है। मृत्यु के गर्जन को उसने सगीत की तरह सुना है। अग्नि ने उसको जलाया है, शूल ने उसको छेदा है, कुठार ने उसे छिन्न किया है, उसने अपनी सब प्रिय वस्तुओ को ईंधन बनाकर बिना कातरता के ही होमाग्नि जलाई है। हृत्पिड रूपी रक्तपद्म को उसने छिन्न कर चढा दिया है और अतिम बार सभक्ति पूजा की है और फिर भी मरकर अपनेको कृतार्थ समझा है।

"मैंने सुना है, उसीके लिए राजकुमार ने फटी कथडी पहन ली था और विषय-विरक्त रास्ते का फकीर हो गया था। मैंने सुना है, उसी लक्ष्य के लिए महाप्राण पल-पल मे जला है, उसके चरणो मे कुशाकुर घुस गये हैं, उसपर मूढ़ विज्ञपुरुषो ने अविश्वास किया है, प्रियजनो ने उसकी हँसी उडाई है, फिर भी उसने नीरव करुण नेत्रो से सभीको क्षमा कर दिया है, उसके अदर वह अनुपम सुदर लक्ष्य मौजूद था। उसीके लिए मानी ने मान तज दिया, धनी ने धन सौंपा, वीर ने प्राण दे दिये है।"

मैंने विशेषकर इस कविता को इसलिए उद्धृत किया कि इसमे कवि की कई तरह की कविताओ के नमूने एक साथ मिल जाते हैं। इसमे एक देखने की बात

है कि कवि अपने को सबोधित कर एक क्रातिकारी की तरह शुरू करते है, किंतु एक भाववादी कवि के नाते वह जल्दी ही निर्दिष्ट चीज़ो को छोडकर अनिर्दिष्ट या सूक्ष्म मे कूद पडते है। हमे नई कविता के दौर मे भी रवीन्द्रनाथ पर बात करने का मौका मिलेगा।

: १६ :

कथाकार रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ कवि रूप मे श्रेष्ठतर थे या कथाकार के रूप मे, इस प्रश्न का हा या ना मे उत्तर देने की कोई विशेष आवश्यकता नही मालूम होती। इतना ही कहना यथेष्ट है कि व्याकरण और भाषा-तत्व से लेकर जिस विषय पर भी उन्होने लिखा, उसमे वे सर्वोपरि हो गये।

उनकी गद्य-रचना पहले-पहल 'ज्ञानाकुर ओ प्रतिबिम्ब' नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। उस समय उनकी उम्र पद्रह वर्ष की थी। इस निबध मे वे समालोचक के रूप मे सामने आये। उन्होने ताजे प्रकाशित तीन काव्यो की आलोचना की थी। इसके बाद ६६ वर्ष तक वे बराबर अविरल गति से लिखते रहे। बगला भाषा को उन्होने क्या दान दिया, इसका अनुमान इस उद्धरण से हो सकता है—"रवीन्द्रनाथ ने बगला भाषा की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य इतनी अधिक बढा दी कि यह कहा जा सकता है कि किसी एक लेखक ने अकेले किसी भाषा की अभिव्यक्ति, सामर्थ्य इतनी नही बढाई। रवीन्द्र गद्य-रीति का यह मौलिक गुण है कि वे केवल बुद्धि को उद्‌बुद्ध करके निवृत्त नही होते, बल्कि मन के गहन अन्त पुर मे प्रविष्ट होकर चित्त की गभीरतम अनुभूति को जाग्रत कर देते है। इसी कारण रवीन्द्रनाथ की गद्य शैली मे वाक्यालकार के बीच मे उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, श्लेष और विरोधाभास का प्रयोग सबसे अधिक है। इनमे भी उत्प्रेक्षा की ही प्रधानता है। रवीन्द्रनाथ के गद्य मे आदि से अत तक उत्प्रेक्षा-प्रधान उक्तियो का बोलबाला है।"[1]

[1] बगला साहित्ये गद्य, पृष्ठ १५७

रवीन्द्रनाथ की गद्य रचनाओ को तीन युग मे बाटा गया है—(१) ज्ञानाकुर भारती युग याने पद्रह साल से बाईस साल की उम्र तक, (२) हितवादी-साधना-भारती-बगदर्शन-प्रवासी युग याने बाईस साल से इक्यावन की उम्र तक, (३) सबुज पत्र युग याने इसके बाद का युग। उनकी गद्य-शैली बराबर विकसित होती रही। पहला युग तो साधना का युग था, दूसरा युग अष्टसिद्धियो और नवनिधियो का युग कहा जा सकता है और तीसरे युग मे उन्होने युग की ढाल को देखते हुए एकदम से बोलचाल की भाषा अपनाली। उनकी प्रथम गद्य-रचना मे ही उनके अध्ययन की विशालता, राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय इतिहास की जानकारी, साथ ही काव्य और सगीत के सबध मे गहरा ज्ञान सूचित होता है।

उस लेख से कुछ वाक्य लीजिये—

"इसी गीतिकाव्य से फ्रासीसी राज्य-क्रांति को प्रोत्साहन मिला, गीति-काव्य के ही कारण चैतन्य के धर्म ने बगाल मे जड पकड ली और इसी गीति-काव्य के कारण बगालियो के निर्जीव हृदय मे जीवन का कुछ-कुछ सचार हो रहा है।

"शेक्सपियर दूसरो के हृदय का चित्रण करके दृश्य काव्य मे असाधारण हो गये है, पर अपने हृदय के चित्रण मे असमर्थ होने के कारण वे गीति-काव्य मे बहुत बडे नही हो सके। इसी प्रकार कविवर बायरन अपने हृदय के चित्रण मे असाधारण है, पर दूसरो के हृदय के चित्रण मे अक्षम है। गीति-काव्य अकृत्रिम है, क्योकि वह हमारे अपने हृदय-कानन का पुष्प है और महाकाव्य शिल्प है, क्योकि वह दूसरे के हृदय का अनुकरण मात्र है। इसी कारण हम लोग बाल्मीकि, व्यास, होमर, वर्जिल आदि प्राचीन कवियो की तरह महाकाव्य नही लिख सकेंगे, क्योकि प्राचीनकाल मे लोग सभ्यता के आच्छादन मे हृदय को गुप्त रखना नही जानते थे, इस कारण कवियो के लिए यह सभव था कि दूसरे के हृदयो को प्रत्यक्ष कर उन अनावृत हृदयो को सहज मे ही चित्रित कर सके।"

यह रचना पद्रह वर्ष के बालक रवीन्द्र की है। इसके बाद कुछ दिनो मे 'भारती' पत्रिका प्रकाशित हुई, और उसमे वे माइकेल के 'मेघनाद-वध' के आलोचक के रूप मे सामने आये। 'भारती' की तृतीय सख्या से रवीन्द्रनाथ का 'करुणा' नाम से एक उपन्यास चलने लगा। इसके बाद 'भारती' के तीसरे साल मे धारावाहिक रूप से यूरोप प्रवासी के पत्र प्रकाशित हुए, जो १८८१ मे पुस्तकाकार निकले।

अब हम कालानुक्रम से रवीन्द्र-रचना का परिचय देने की बजाय पहले उनके उपन्यासो का फिर उनके नाटको का सक्षिप्त परिचय देगे। कहानियो पर भी प्रकाश डालेगे। इस प्रकार जो कुछ कहा जायगा, उसमे हम कालानुक्रम का ख्याल रखेगे।

'वहु ठाकुरानीर हाट' और 'राजर्षि' नामक उपन्यास उनके वीस से चौवीस वर्ष के बीच की रचनाए है। अभी बकिमचद बगला साहित्य के गगन मे बहुत जोर से चमक रहे थे, ये दोनो उपन्यास उन्हीकी छत्रछाया मे लिखे गये। जिस समय उन्होने ये उपन्यास लिखे, उस समय वहिर्जगत के साथ उनका परिचय बहुत कम था, क्योकि उनका लालन-पालन ही इस प्रकार से हुआ था कि वे सबसे दूर अलग-थलग पले। अपनी जीवन-स्मृति मे उन्होने इस वात पर लिखा हैं, "न तो तव विद्या थी, और न जीवन की अभिज्ञता थी, इसलिए गद्य-पद्य जो कुछ भी लिखा, उसमे असली वस्तु से भावुकता कही अधिक थी। इसी कारण इन दोनो उपन्यासो के कथानक उलझनो से वर्जित, सरल, अजटिल हैं। कहीपर अतर्द्वद्व का झगडा नही है। ये दोनो पुस्तके ऐतिहासिक उपन्यास के आदर्श पर रचित है। श्री निहाररजन राय कहते है—"दोनो उपन्यासो मे विचित्रता और कोलाहल है जरूर, पर रगभूमि की छाया की तरह अस्पष्ट है। इनमे इतिहास का अर्थहीन आश्रय लिया गया है, उपन्यास की घटनाओ और चरित्रो मे इतिहास के जीवन और उद्दीपना के सचारित होने का कही कोई प्रमाण नही है।"

इन दो उपन्यासो मे फिर भी बाद के कवीन्द्र रवीन्द्र की विशेषता आ जाती है। कोलाहल की पृष्ठभूमि मे शाति और आनद के अस्तित्व से उपन्यासकार परिचित है और वह उसकी टोह मे रहते है। एक वात और। यद्यपि उन्होने ऐतिहासिक उपन्यास लिखा, फिर भी इसमे कई पात्र ऐसे आते है, जो उनके इर्द-गिर्द मौजूद थे और उन्होने उन्हे इतिहास की पोशाक पहनाकर पाठको के सामने प्रस्तुत भर कर दिया।

इसके बाद उन्होने 'चोखेर वालि' (आख की किरकिरी) और 'नौका डूबी' उपन्यास लिखे। 'आख की किरकिरी' के सबध मे यहातक कहा गया है कि "यदि किसी साहित्य मे एक उपन्यास ने उपन्यास के प्रचलित धर्म और प्रकृति

को वदलकर एकदम नये युग की सूचना करके नई वुनियाद डाली हो तो वह यही पुस्तक है।"

स्मरण रहे कि पद्रह साल वाद यह उपन्यास लिखा गया था। डा० निहारराय के अनुसार यह समाज-जीवन पर आश्रित पहला मनोविश्लेषणमूलक समस्यानिष्ठ उपन्यास था। "इसके पहले वगला साहित्य के उपन्यास प्रधानत घटना-निर्भर थे। घटना का सुदर यथातथ्य समावेश ही उपन्यास की विशेषता थी। कवीन्द्र के पहले दो उपन्यास इसी आदर्श के अनुसार थे, पर 'आख की किरकिरी' बिल्कुल इसके विपरीत थी। इसका कथा-भाग वहुत सक्षिप्त है, पर इसके चार चरित्रो के मनोविश्लेषण की धारा वहुत दीर्घ है। घटना का क्रम केवल मानसिक विकास का सहायक मात्र है। सारी कहानी एक सास मे कह डाली जा सकती है, पर वह तो आख्यान मात्र है। उसमे वास्तविक अनुभूति नही है। वास्तविक अनुभूति का सचार तो तव होता है, जव हम विनोदिनी और आशा, महेद्र और विहारी के चित्त की गहराइयो मे पैठकर उनकी चिंताओ तथा भावो की भीतरी क्रिया प्राप्त करते है। तभी हमे उनके प्रकाश्य कार्यों का वास्तविक अर्थ मालूम होता है। इस प्रकार का विश्लेषण, मनुष्य के विचित्र कर्म और विचार के कार्य कारण सवध को प्रकाश मे लाने का इस प्रकार का प्रयास तथा वस्तु के अर्तनिहित धर्म के सवध मे जिज्ञासा पहले-पहल 'आख की किरकिरी' उपन्यास से ही प्रवर्तित हुई।"[1]

'नौका डूवी' उक्त उपन्यास के दो साल वाद प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रोमाटिक ढग का हे। कई लोगो ने इसी कारण इसे पहले की रचना समझने की भूल की है। कहा गया है कि 'नौका डूवी' 'वग दर्शन' मासिक पत्र की माग को पूरा करने के लिए लिखा गया था। इसमे आकस्मिक घटनाओ की प्रधानता है। 'रमेश और कमला का जटिल सवध एक आकस्मिक विपर्यय पर निर्भर है। कमला और नलिनाक्ष का पुनर्मिलन भी इसी प्रकार से पूर्णत दैवी घटनाओ पर निर्भर हे। जिस भूल के कारण रमेश और कमला का जटिल सवध दिन पर दिन जटिलतर होता जा रहा था, वह इतना दीर्घ विलवित है कि वह जरा अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इस भूल को तोडना और सारी जटिलताओ

---

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका।

का अत करना कुछ ऐसा कठिन और असभव नही था। इसके अतिरिक्त हेम नलिनी के साथ विवाह के पहले रमेश ने कमला के रहस्य के उद्घाटन मे किसी प्रकार की इच्छा या चेष्टा नही दिखाई, इसका कोई युक्तिसगत कारण ढूढने पर नही मिलता। इतनी बाधाओ को पार करने के बाद ही उपन्यास के सूक्ष्म विश्लेषण और वस्तुनिष्ठा की बात प्रकट होती है।"

इन उपन्यासो के बाद रवीन्द्रनाथ ने 'गोरा' उपन्यास की रचना की। उस समय के अग्रेज़ी शिक्षित समाज मे जिस प्रकार के विचारो की उथल-पुथल और आलोडन-विलोडन चल रहा था, उसका सम्यक् प्रतिफलन इस उपन्यास मे मिलता है। अवश्य इसमे रोटी-दाल और शोषक-शोषित की समस्याओ का कहीं पता नही है, पर सुदर विचारो और आदर्शो के सघात का बहुत चित्र इसमे उपस्थित किया गया है। केवल यही नही, इसमे प्रगतिशील विस्तृततर विचारो की ही अत तक विजय कराई गई है। गोरा एक ऐसा युवक है, जिसके माता-पिता यूरोपीय थे। १८५७ के विद्रोह के समय यह अनाथ शिशु एक बगाली सज्जन के हाथ लगा और उन्होने उसे एक सनातन हिंदू बच्चे की तरह पाला। यह लडका बहुत ही मेधावी निकला और कट्टर सनातनधर्मी बना, यहातक कि वह कट्टरता की धुन मे बहुत-कुछ अजीब बाते करता है। उसके पालक पिता इन बातो को देखते हैं और स्वय कट्टर होते हुए भी यह नही चाहते कि वह कट्टर रहे। अत तक सारी बाते खुलती है और उपन्यास का अत बिल्कुल दूसरे ही ढग से होता है।

कई लोगो ने यह कहा है कि 'गोरा' मे रवीन्द्रनाथ ने ब्राह्म धर्म की विजय दिखलाई है, पर यह बात सही नही है। लेखक ने कट्टर ब्राह्म समाजी और सनातनधर्मी का चित्र खीचा है। इनमे कट्टर ब्राह्म समाजी का चित्र ही अधिक हास्योत्पादक है। इसी प्रकार और भी अन्य बाते इस दोषारोपण के विरुद्ध कही जा सकती है। प्रगतिशील विचारो की जो विजय इस उपन्यास मे दिखाई गई है, वह एक तरह से युक्तिवाद और बुद्धिवाद के सामने पुराने समाज का ढह जाना ही है। उसमे एक कट्टरता को दूसरी कट्टरता से बढकर दिखाने का प्रयास कहीपर नही है। श्री राय तो 'गोरा' की यहातक प्रशसा करते है कि 'जिस सुवृहत भाव-कल्पना के बीच 'गोरा' की दृष्टि है, उसका प्रसार बगला उपन्यास मे आजतक देखने मे नही आया। बगाली मध्यवित्त समाज की सकीर्ण और अल्पचेतन जीवनधारा को अवलम्बन बनाकर 'गोरा' ने बगला साहित्य मे जिस

प्रवाह का सचार किया था, उसमे नया गतिवेग अब भी दीख नही पडा। 'गोरा' ने बगला उपन्यास मे जीवन का जो समग्र रूप पेश किया था, उस समग्रता की दृष्टि के आगे चलकर बगला उपन्यास मे दूसरी बार दर्शन नही हुए।'

श्री राय के इन मतव्यो से सहमत होना सभव नही है। इसमे सदेह नही कि गोरा का उपजीव्य एक ऐसा विषय था, जो शताब्दियो मे सामने आता है। वह है हमारे सैकडो वर्ष पुराने समाज-शरीर का सामना पाश्चात्य से आये हुए नये विचारो से होना। यह एक बहुत बडा विषय था और इसमे सदेह नही कि बगाल की जमीन पर विचारो के सघर्ष को दिखाते हुए भी रवीन्द्रनाथ ने उस महान् विषय के साथ पूरा न्याय किया। पर हमारे सामने और भी बहुत-से विषय ऐसे है, जो इसीकी तरह महत्वपूर्ण है। उदाहरणस्वरूप पाश्चात्य विचारो के बुद्धिवाद ही नही, उनके विज्ञान और विज्ञान से प्राप्त सुख-सुविधाओ इत्यादि को अपनाते हुए भी उनके साम्राज्यवाद तथा शोषण-नीति का विरोध और उनसे छुटकारा प्राप्त करना, हमारे यहा की मेहनतकश जनता को उनके शोषको से मुक्त करना, इत्यादि। बाद के उपन्यासकारो ने इन विषयो को लेकर लिखा। हम उसके ब्यौरे मे नही जायगे कि तुलनात्मक रूप से वह कैसे रहे, पर मैने यह बताया है कि एक श्रेष्ठ कृति की प्रशसा करने का अर्थ यह हर्गिज नही है कि हम यह कह दे कि उसके बाद कोई उस रचना का अतिक्रम नही करेगा।

यहा एक बात और बता दे कि 'गोरा' जितना अच्छा उपन्यास है, उस दृष्टि से उसका उतना प्रचार नही है। इसका कारण यह है कि उसमे जो समस्याए उठाई गई है तथा विचारो का जो सघर्ष चित्रित है, वह आज दिलचस्प नही हो सकता, क्योकि उन विषयो को छेडते ही पहले के युग मे जिस वाद-विवाद के वातावरण की सृष्टि होती थी, वह अब नही होती। उन विषयो पर वह जोश-खरोश नही आ सकता और इसी कारण ऐतिहासिक रूप से भले ही यह दिल-चस्प हो, स्वय वे विचार अब बहुत-कुछ पालतू बन चुके है। पर मैं शायद 'गोरा' के अदर चलनेवाले विचार-सघर्षो पर अधिक जोर दे रहा हू। कलाकृति के नाते उसमे जो चरित्र-चित्रण है, सुदर वाक्य और विचार है, सूक्ष्म अतिसूक्ष्म मनोविश्लेषण है, व्यक्ति का विकास और परिवर्तन है, वह तो कही नही जा सकता। विचार की सामयिकतावाली धार भले ही कुछ भुथडी हो गई हो, पर कला की धार तो उसी प्रकार तेज बनी हुई है। इसके अलावा 'गोरा' हमारे

इतिहास का एक अध्याय है, पर साथ ही वह भारतीय उपन्यास साहित्य मे एक युगातर उपस्थित करनेवाली कलाकृति है।

'गोरा' के पाच वर्ष बाद 'चतुरग' और छ वर्ष बाद 'घरे वाइरे' याने 'घर और वाहर' की रचना हुई। अध्यापक राय का कहना है कि 'गोरा' के पहले जो उपन्यास रचे गये थे, उनमे तथ्य और घटना-विन्यास का क्रम इस तरह से सजाया गया है और उपन्यास के चरित्र-विकास के स्तर इस तरह से ग्रथित हुए हे कि पाठक के मन मे विभिन्न विच्छिन्न घटनाए और चरित्र समग्र रूप से सामने आते है, आशिक या खडित वर्णन के जरिये से जीवन का समग्र रूप प्रतिफलित होता है। श्री राय कहते है—"उपन्यास का बृहत्तर ऐक्य जीवन के खड-खड अशो को एकत्र गूथकर एक परिपूर्ण रूप प्रदान करता है। 'आख की किरकिरी' या 'गोरा' या वकिम के जिस किसी सार्थक उपन्यास से इस वात का दृष्टात अत्यत आसानी से दिया जा सकता है। उपन्यास की इस समग्रता का धर्म, बृहत्तर ऐक्य का धर्म 'गोरा' के वाद से उपन्यासो मे अनुपस्थित है। दूसरी वात यह है कि 'गोरा' और 'गोरा' के वाद वगला उपन्यासो मे चरित्र का विकास, विस्तृत घटना और मनोविश्लेषण के जरिये चेतना और वुद्धि के सामने पेश होता है। इस पर्व के उपन्यासो मे ये दोनो वाते अत्यत सक्षिप्त हैं, तथ्य का सन्निवेश विरल है और जो कुछ भी है, वह असम्पूर्ण है।"

दूसरे शब्दो मे उनका कहना यह है कि यह उपन्यास वुद्धि-प्रधान है और उसका रस और रहस्य मुख्यत वुद्धिगम्य है। भाषा मे भी सक्षिप्तता की ओर याने थोडे मे वहुत कहने की प्रवृत्ति है। यह विकास का एक स्तर था।

'चतुरग' के चार अश अलग-अलग कहानियो के रूप मे प्रकाशित हुए, पर दूसरी कहानी प्रकाशित होते ही यह समझ मे आ गया कि कहानिया विल्कुल अलग नही है। डा० श्री कुमार के अनुसार यह कोई उच्चकोटि का उपन्यास नही है, पर कुछ लोगो के अनुसार यह उनकी श्रेष्ठ रचना है। इसमे सदेह नही कि 'चतुरग' बहुत मामूली पाठको के समय काटने के लिए नही लिखा गया है। अत मे सवकुछ कह लेने के वाद श्री निहार रजन भी इस राय पर पहुचते है कि 'चतुरग' कोई महान् उपन्यास नही है। "इसमे वस्तु-भूमि की गहराई है, पर फैलाव नही है। मानव-ससार की विचित्र बहुमुखी तरग लीला के साथ इसका योग नही है। इसका जीवन-दर्शन खडित है, पर जीवन की समग्रता का

इस उपन्यास मे स्पर्श नही है। पर 'चतुरग' सुदर और सार्थक साहित्य-हृष्टि है। इसकी बुद्धि की दीप्ति, रहस्यमय सकेत, सूत्र के रूप थोडे मे वर्णन, ज्ञान-गर्भ इगितपूर्ण विवृति, इसकी सूक्ष्म मनोविश्लेषण की धारा और सबसे वढ-कर इसकी कवि-कल्पना के ऐश्वर्य ने इसे जो विशिष्ट और अभिनव साहित्यिक मूल्य प्रदान किया है, इसकी कुछ तुलना 'शेषेर कविता' के अतिरिक्त वगला साहित्य मे और कही नही प्राप्त है।"[1]

'घर और बाहर' उपन्यास पहले धारावाहिक रूप से 'सबुज' पत्र मे प्रकाशित हुआ। जब यह उपन्यास अभी निकल ही रहा था, तभी इसपर बहुत झगडा खडा हो गया। इस उपन्यास मे स्वदेशी आदोलन को केन्द्र बनाकर कथानक प्रस्तुत किया गया है, पर इसके नायक सदीप को स्वदेशी आदोलन का प्रतिनिधि मानना गलत होगा। उसे ऐसा माना गया है, तभी सारे झगडे खडे हुए हैं। प्रत्येक आदोलन मे भले-बुरे सब तरह के लोग होते है और सदीप इस आदोलन के एक अश का प्रतिनिधित्व करता है। वह बोलने मे बडा तेज है, पर स्वार्थी है। आश्चर्य की बात यह है कि स्वय रवीन्द्रनाथ स्वदेशी आदोलन के अन्यतम नेता थे, उनके व्याख्यानो और कविताओ से स्वदेशी आदोलन तथा उसके बाद के क्रातिकारी आदोलन को बडा बल मिला, पर उन्होने उसके कृष्ण-पक्ष को ही अपनी कला के लिए क्यो चुना ? इतना कह लेने के बाद भी यह मानना पडता है कि यह एक बहुत ही शक्तिशाली उपन्यास है।

'घर और बाहर' की रचना के लगभग बारह वर्ष बाद कवीन्द्र ने 'तीन पुरुष' नाम से एक उपन्यास लिखना शुरू किया, पर बाद को इसका नाम 'योगायोग' रख दिया। इसके बाद रवीन्द्रनाथ ने 'शेषेर कविता' नामक उपन्यास लिखा। पहले ही बताया जा चुका है कि यह उपन्यास काव्यधर्मी है। यह एक आश्चर्य की बात है कि 'गोरा' और 'घर और बाहर' मे रवीन्द्रनाथ ने उस युग को अपने सामने रखकर चरित्र चुना था, पर इन उपन्यासो मे किसी विशेष युग को या किसी विशेष टाइप को चित्रित करने की सीमाए नही है। 'शेषेर कविता' मनोविज्ञान-प्रधान है, यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, पर साथ ही इसकी प्रत्येक पक्ति मे काव्यमय वर्णन की प्रधानता है।

---

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका, पृ० ३३५

रवीन्द्रनाथ ने और भी कई उपन्यास लिखे, पर उनकी पृथक् आलोचना की गुजाइश यहापर नही है।

नाटक के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ ने पहले एक गीतिनाट्य लिखा, जिसका नाम 'वाल्मीकि प्रतिभा' है। रवीन्द्रनाथ वाद को वरावर जव भी इसके सम्वन्ध मे उल्लेख करते थे, वे कुछ सकुचाते थे, पर यह रचना उतनी निम्नकोटि की नही है, जितनी वह समझते थे। इन दिनो कविवर की उम्र १८-२० के लगभग थी और सगीत की चर्चा वडे जोरो के साथ चल रही थी। उसी काल मे 'काल मृगया', 'प्रकृतिर प्रतिशोध' तथा 'मायार खेला' की रचनाए हुई। इनमे से 'प्रकृतिर प्रतिशोध' मे कविवर सगीत से हटकर नाटक की ओर वढते हुए दृष्टिगोचर होते है। 'वाल्मीकि प्रतिभा' और 'काल मृगया' मे कविवर ने पौराणिक कथा को ही आधार रखा था, पर 'प्रकृतिर प्रतिशोध' की कहानी स्वरचित है। कहानी इस प्रकार है कि एक सन्यासी ने समस्त इद्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिए एक निर्जन गुफा मे रहना शुरु किया। वाद को इस सन्यासी ने एक असहाय वालिका के प्रति दयार्द्र होकर उसे अपने आश्रम मे आश्रय देना चाहा। सन्यासी उसे अपनी कन्या के रूप मे उसे वैराग्य का उपदेश देते हैं, पर वह यह सवकुछ नही समझती और ससार मे लौटना चाहती है। इस प्रकार दो आदर्शों का सग्राम होता है। अन्त मे सन्यासी को एक दिन कहना पडा कि आज से मैं सन्यासी नही हू, इत्यादि-इत्यादि। यह कविवर का पहला महत्वपूर्ण नाटक है।

'मायार खेला' नामक नाटक मे कोई खास विषय नही लिया गया। वस कई एक तरुण गाना गाते जाते हैं और उसीके अन्दर से उनका परिचय सामने आता जाता है।

इस युग के वाद उन्होने एक के वाद एक 'राजा ओ रानी', 'विसर्जन' और 'मालिनी' लिखे। प्रथम नाटक एक ऐतिहासिक घटना को छूकर चलता है। यो कहा जाय कि यह ऐतिहासिक घटना भी मनगढत है तो वह सत्य के अधिक निकट होगा।

नाटकीय दृष्टि से 'विसर्जन' मे अपेक्षाकृत नाटकीय द्वद्व अधिक है। वाद को जो 'मालिनी' नाटक लिखा गया, उसमे और इसमे वडी समता है। दोनों नाटको मे रूढिवाद के विरुद्ध कथानक प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ तो

रूढिवादी धर्म है और दूसरी तरफ मानव-धर्म का प्रतीक एक विशाल व्यापक धर्म या सिद्धात है। 'विसर्जन' का रघुपति और 'मालिनी' का क्षेमकर और 'विसर्जन' का जयसिह और 'मालिनी' का सुप्रिय करीब-करीब एक ही है। श्री राय के अनुसार इनकी भावना और गति भाषा और प्रकाश के बीच मे पृथकता बहुत कम है। 'मालिनी' के कथानक मे एक राजकन्या का द्वद्व दिखलाया गया है, जिसने बौद्ध अर्हत काश्यप से ससार-त्याग का पाठ प्राप्त किया है और वह उसी मार्ग मे चलना चाहती है, पर सनातन धर्म के अनुयायी इसका विरोध करते है। इसीपर समस्या खडी हो जाती है। सनातन धर्म के नेता क्षेमकर है। इसमे और भी जटिलता इस प्रकार उत्पन्न हो जाती है कि क्षेमकर का मित्र सुप्रिय यद्यपि अपने मित्र के साथ है, फिर भी वह यह नही चाहता कि राजकन्या को निर्वासन का दड दिया जाय। इसपर सुप्रिय और क्षेमकर मे वाद-विवाद होता है और अततोगत्वा सुप्रिय यह कहता है—"तुम्हारा स्वर्गधाम झूठा है और तुम्हारे देवता भी झूठे है। इस ससार मे व्यर्थ ही इतने दिन मैंने भ्रमण किया, कभी किसी शास्त्र से तृप्ति नही प्राप्त हुई, आज मैंने अपना धर्म पा लिया, जो हृदय के बहुत ही निकट है।"

रानी बराबर राजकन्या को समझाती है, पर राजा समझाते हुए भी कुछ तरह देते जाते है। उधर क्षेमकर बाहर से सेना मगाकर इस राज्य मे सनातन धर्म को पुन प्रतिष्ठित करने का षड्यत्र करता है। सुप्रिय इस बात को खोल देता है। क्षेमकर पकडा जाता है और उसे प्राणदड देना निश्चित होता है, मालिनी ने उसके लिए क्षमा-याचना की। इस प्रकार से नाटक मे कई रोमाच-कारी घटनाए आती हैं। इसके साथ ही आदर्शो के सघर्ष और कवितामय वर्णन के कारण यह नाटक बहुत ही सुन्दर ढग से विवर्तित होता है। अवश्य यह एक कवि की कल्पना है, पर इस कल्पना मे बडी उदात्तता है। यह नाटक बार-बार अभिनीत भी हुआ है।

इसके बाद रवीन्द्रनाथ ने 'गाधारीर आवेदन', 'सती', 'नरकवास', 'लक्ष्मीर परीक्षा' और 'कर्ण-कुती-सवाद' लिखे। इन नाटको मे भी मानव-धर्म की महिमा बार-बार गाई जाती है। 'लक्ष्मीर परीक्षा' नामक नाटक मे हास्य का स्रोत भी फलगू की तरह भीतर-भीतर चलता जाता है। ये नाटक मुख्यत पढने के लिए ही लिखे गये थे। इस प्रकार के नाटको के प्रवर्तक भी रवीन्द्रनाथ

ही थे। यह मानना पडेगा कि इन नाटको मे कविता के साथ-साथ नाटकीयता प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। 'गाधारीर आवेदन' नामक नाटक मे गाधीजी के प्रतीक धृतराष्ट्र के चरित्र मे एक तरफ मानव-धर्म के प्रति आकर्षण तथा दूसरी तरफ पुत्र-स्नेह का द्वद्व चलता है। गाधारी मे यह द्वद्व प्रत्यक्ष रूप से ऐसी प्रवृत्ति अपना चुका है कि स्नेह मे तो वह पुत्रो के साथ है, पर उसका मन धर्म के साथ है। क्या यह हृदय और मस्तिष्क का द्वद्व है या यह हृदय के एक अश के साथ हृदय के दूसरे अश का द्वद्व है? बात यह है कि यदि मस्तिष्क और हृदय का द्वद्व होता, तो उसमे वह गहराई नही आती, जो इसमे दिखाई पड रही है। गाधारी मे इस द्वद्व का अत इस रूप मे होता है कि वह पुत्रो को चाहते हुए भी आशीर्वाद पाडवो को ही देती है, पर धृतराष्ट्र मे यह द्वद्व अत तक सुलझता नही है।

'सती' नाटक मे भी इसी प्रकार धर्म और पितृ-स्नेह का द्वद्व दिखलाया गया है।

'कर्ण-कुन्ती सवाद' मे द्वद्व तो स्वाभाविक ही है, क्योकि कुन्ती का चरित्र ही ऐसा है। कर्ण वीर धर्म का प्रतीक है। कुन्ती जो उससे जाकर मिलती है, उसमे पाडवो की विजय-कामना थी, पर साथ ही इस स्वार्थ मे भी त्याग का बहुत गहरा पुट था, क्योकि कर्ण उसका पुत्र है और शायद सबसे अधिक वीर पुत्र। फिर द्वद्व क्यो न होता?

'नरकवास' की कहानी भी पौराणिक है। इन नाटक-नाटिकाओ के बाद रवीन्द्रनाथ ने 'व्यग कौतुक हास्य कौतुक', 'गोडाय-गलद', 'शेष रक्षा', 'वैकुठेर खाता', 'चिरकुमार सभा', 'तासेर देश' नाटक लिखे। प्रथम पुस्तक मे दो छोटी-छोटी नाटिकाए है। उन्होने भूमिका मे लिखा कि समस्या नाट्य (Charade) के ढग पर ये नाटिकाए लिखी गईं। इन दो नाटिकाओ मे शिक्षित समाज पर व्यग किया गया था। 'हास्य कौतुक' की नाटिकाओ मे भी विषय यही है। स्मरण रहे कि अबतक जिन नाटक तथा नाटिकाओ का उल्लेख किया गया है वे सब पद्य मे रचित थे। रवीन्द्रनाथ का पहला गद्य नाटक 'गोडाय गलद' याने जड मे ही गलत था, ब० सन् १२९९ (लगभग १८८६) मे प्रकाशित हुआ। यह प्रहसन के रूप मे था, पर इसमे पाच अक थे। इसे कॉमेडी की श्रेणी मे रक्खा गया है। पात्र और पात्रियो की बातचीत बहुत पैनी, हास्य से मधुर और उज्ज्वल है, पर

अभिनय की दृष्टि से यह उतना अच्छा नही था। बातचीत कुछ कम रहती तो अच्छा रहता। कविवर का ध्यान इस ओर गया होगा, इसलिए ३७ साल बाद इसका एक सशोधित रूप 'शेष रक्षा' नाम से प्रकाशित हुआ। 'शेष रक्षा' अभिनय की दृष्टि से बहुत ही सुदर, सयत रचना हो गई। हास्य रस भी पहले से सुसस्कृत हो गया और बातचीत भी सक्षिप्त हुई।

'वैकुठेर खाता' भी एक प्रहसन था। पर यह केवल प्रहसन नही था, क्योकि इसमे हास्य रस के अलावा करुण रस भी है। वैकुठ को हास्य का पात्र बनाया गया है, साथ ही उसके प्रति बडी तगडी सहानुभूति भी है।

'चिरकुमार सभा' पहले-पहल ब० सन् १३०७-१३०८ मे (लगभग १८९३) पहले-पहल प्रकाशित हुआ था, पर ब० सन् १३३२ (१८९७ ई०) मे कविवर ने उपन्यास को बदलकर एक नाटक की रचना की और उसका नाम 'चिरकुमार सभा' रक्खा गया। स्मरण रहे कि 'चिरकुमार सभा' उपन्यास उस समय लिखा गया था, जिस समय स्वामी विवेकानद का बगाल मे बडा जोर था और चिरकुमार सन्यासियो की धूम मची हुई थी। रवीन्द्रनाथ को यह आदर्श नही रुचा, इसलिए उन्होने इस पुस्तक की रचना की। पहले से ही रवीन्द्रनाथ इस आदर्श के विरोधी थे, यह 'प्रकृतिर प्रतिशोध' नामक प्रथम युग के एक नाटक मे ही स्पष्ट हो चुका था। 'चिरकुमार सभा' के युग मे ही उन्होने एक कविता मे भी यह लिखा था—'वैराग्य साधन से मुक्ति, सो वह हमारे लिए नही है।' अत तक रवीन्द्रनाथ इसी आदर्श पर डटे रहे। 'चिरकुमार सभा' प्रहसन बार-बार रगमच पर आया। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यद्यपि यह एक समसामयिक विषय को लेकर लिखा गया है, पर इसका व्यग कही भी उन लोगो की भद्दी हँसी नही उडाता, जो सन्यास धर्म को अपनाकर चल रहे है, बल्कि इसका इगित यही है कि यह धर्म हरेक के लिए नही है।

इसके बाद 'तासेर देश' प्रकाशित हुआ। इन नाटक मे व्यग्य की प्रधानता है और नौकरशाही तथा रूढिवाद पर फब्तिया कसी गई है। सब एक विशेष ढग से बोलते, उठते, बैठते है। कोई दुडी, तिडी, छक्का, पजा है, तो कोई गुलाम, बादशाह, बेगम। पर ऐसे देश मे भी अत तक दो व्यक्ति आते है और वह अपने साथ मुक्ति का गीत और साथ ही नियमो के प्रति विद्रोह ले आते है। कहना न होगा कि कवि ने इस प्रकार से रूढिवाद के विरुद्ध चोट पहले भी की

थी और वे आगे भी वरावर करते रहे। 'अचलायतन' नामक नाटक मे भी उन्होने वाद को इसी प्रकार मे समाज की रूढियो के विरुद्ध झडा वुलद किया था।

'तासेर देश' के वाद 'शारदोत्सव' प्रकाशित हुआ। यह एक तरह से ऋतु का आवाहन करते हुए प्रकृति के सौदर्य से ओत-प्रोत है। जो छोटा-सा कथानक है, उसमे कुल इतना कहने का प्रयास किया गया है कि आनद को उपभोग करने के लिए मनुष्य को त्याग करना पडता है याने त्याग आनद का एक दूसरा रूप है, वह रूप जिसके विना मनुष्य न तो आनद का अधिकारी होता है और न वह उसे उपभोग कर सकता है। स्वय रवीन्द्रनाथ ने अपने एक लेख मे इसका स्पष्टीकरण किया है कि वे इस नाटक मे क्या कहना चाहते थे। उनके शब्द ये है—"आत्मा का प्रकाश आनदमय है। इसी कारण जो व्यक्ति दुख या मृत्यु को स्वीकार कर सकता है, भय अथवा आलस्य अथवा सशय मे इस दुख के मार्ग से वचकर नही चलता, ससार मे वही आनद प्राप्त करता है। वाकी लोग आनद से वचित रह जाते है।" रहा यह कि कहातक कथानक के जरिये से यह विचार सामने आया है, इसमे थोडा-सा सदेह है, क्योकि उपनद अपने को शरत् के उत्सव से इस कारण अलग रखता है और दुख की साधना करता है कि वह अपने प्रभु का कर्ज़ अदा कर सके। क्या इस कथानक से यह वू नही आती कि सामत धर्म का निर्वाह करना चाहिए? वाद को यह 'शारदोत्सव' नाटक 'ऋण शोध' नाम से फिर से लिखा गया था।

'प्रायश्चित्त' नाटक व० सन् १३१६ (१८०२ ई०) मे प्रकाशित हुआ और यह 'वहुठाकुरानीर हाट' नामक उपन्यास से प्रस्तुत किया गया था, पर मूल उपन्यास से वहुत-सी वातो मे भिन्नता है। धनजय वैरागी जो 'प्रायश्चित्त' का एक मुख्य पात्र है, मूल उपन्यास मे नही है। इस चरित्र के सवध मे वताया गया है कि यही चरित्र 'मुक्ति धारा', 'फाल्गुणी', 'अचलायतन' आदि आधे दर्जन नाटको मे विभिन्न नाम से आता है। वह वैरागी, आत्म-विस्मृत, चिर-नवीन, निर्भय, सत्यवादी, अत्याचार-अविचार का चिरशत्रु है। श्री निहारराय तो यहातक कहते है कि यह पात्र मानो नाटक का सदा उन्मुक्त चौडा-सा झरोखा है, जिसके अदर की सारी वेदना, अटकी हुई दूषित वायु निकल जाती है और वाहर से स्वच्छ, सहज, सुनिर्मल आलोक की दीप्ति भीतर पैठती है।

वाद को 'प्रायश्चित्त' कुछ परिवर्तित होकर 'परित्राण' नाम से प्रकाशित हुआ। रवीन्द्र-साहित्य मे यह विशेष द्रष्टव्य है कि कविवर ने पहले की लिखी हुई कई रचनाओ को वाद मे नये रूप मे प्रस्तुत किया। 'शारदोत्सव' के 'ऋण शोध' नाम से प्रकाशित होने की वात तो हम पहले ही वता चुके है। 'अचलायतन' भी बाद मे परिवर्तित रूप से 'गुरु' नाम से प्रकाशित हुआ। 'राजा ओ रानी' का रूपातर 'तपती' नाम से प्रकाशित हुआ। 'राजा' नाटक 'अरूप रतन' नाम से परिवर्तित रूप मे प्रकाशित हुआ।

'राजा', 'अचलायतन' और 'डाकघर' ये तीनो नाटक 'गीताजलि' और 'गीति माल्य' के वीच मे लिखे गये थे। इसी कारण इनमे अतिमानवता या अति प्राकृतिक शक्तियो के सकेत के सवध मे वहुत अधिक उल्लेख मिलेगे। 'रूपरतन' नाटक की भूमिका लिखते हुए कविवर ने यह अति स्पष्ट कर दिया है कि जहा वस्तु आख से देखी जा सकती है, हाथ से छुई जा सकती है, भडार मे सचित हो सकती है, जहा धन, जन, स्याति है, वुद्धि का अभिमान है, वुद्धि के जोर से वाहर ही जीवन की सार्थकता प्राप्त करने की चेष्टा है, सचाई उससे परे की चीज है। कहना न होगा कि यह सारी वात नाटक का स्पष्टीकरण न करते हुए उसे ले जाकर और भी धुधलके मे डाल देती है।

'अचलायतन' नाटक उसी प्रकार से एक ऐतिहासिक नाटक वन चुका है, जैसे वकिमचद्र का 'आनदमठ'। शिक्षित याने अग्रेजी शिक्षित वगाली समाज के लिए यह एक जलती हुई मशाल के रूप मे हो गया। जो कुछ भी शास्त्र, आचार, नियम, विधान, मत्र, तत्र, वर्ण और जाति का अभिमान हमारी प्रगति के मार्ग को रोककर खडा है, वही 'अचलायतन' है और उसीके विरुद्ध यह नाटक मानो विद्रोह के लिए मनुष्य को ललकारता है, भले ही उस 'अचलायतन' के पीछे शताब्दियो की छाप हो। इस नाटक मे कथित छोटी जातियो याने अत्यजो को उठाने की वात भी आती है। अचलायतन की दीवार ढह गई और विद्रोह की जय हुई। नई निष्ठा और नई श्रद्धा का सूत्रपात हुआ। रवीन्द्रनाथ ने इस नाटक की व्याख्या करते हुए अपने ढग से कहा है—"मैं तो ऐसा समझता हू कि यूरोप मे जो लडाई (१९१४-१८) शुरू हुई है, वह इस कारण हुई है कि गुरु-जी पधारे है। उन्हे परम पुरातन धन की दीवार, मन की दीवार, अहकार की दीवार तोडनी पड रही है। उनकी अगवानी के लिए कोई प्रस्तुत नही था, पर वे

समारोह के साथ आयेगे, चाहे वे जब भी आवे । इसके लिए तैयारी बहुत दिनो से चल रही थी ।"

रवीन्द्रनाथ ने यह व्याख्या नाटक-रचना के बहुत दिनो बाद लिखी । ऊपर जो शब्द दिये गए है, उनका स्पष्ट अर्थ समझना तो मुश्किल है, पर क्या उनका इगित १९१७ की रूसी समाजवादी राज्य-क्राति से था ? बात यह है कि कई बार अनुप्रेरित अवस्था मे साहित्य-सृजक ऐसी बाते कह जाता है, जिसका पूरा अर्थ वह भी नही समझता । घटनाए ही उनका अर्थ स्पष्ट करती है ।

'डाकघर' एक रहस्यमय काव्यधर्मी नाटक है । यह नाटक शातिनिकेतन मे तीन दिन के अदर लिखा गया था । इसका प्रथम अभिनय जोडासाको वाले मकान मे हुआ था और दर्शको मे महात्मा गाधी, मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, लाजपतराय और खापर्डे आदि नेता थे । यह नाटक रहस्य और सकेत इस प्रकार से ओत-प्रोत है कि इसकी सामाजिक व्याख्या करना कठिन है । शायद इसी कारण प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ने इस नाटक की व्याख्या रचयिता की जीवनी से करनी चाही है । बात यह है कि बचपन मे उनका जीवन भी बडा अवरुद्ध था और वे सैकडो विधि-निषेधो के अदर पले थे । वह थे तो रुद्ध गृह के वासी, पर प्रत्येक घटना उनके मन मे तरगमाला की सृष्टि करती थी । वे सबकुछ देखते थे, मन भीतर-ही-भीतर रोता था और मिलन सभव नही होता था ।

'डाकघर' के चार वर्ष बाद 'फाल्गुणी' की रचना हुई । 'शारदोत्सव' की तरह यह भी ऋतु को लेकर लिखा गया है । स्मरण रहे कि इस बीच कविवर यूरोप की यात्रा कर आये थे । इसमे भी आनद और यौवन की वही व्याख्या की गई है, जो इससे पहले की पुस्तको मे दृष्टिगोचर होती है । स्वय कविवर ने 'फाल्गुणी' की व्याख्या करते हुए कहा है—"जीवन को सत्य करके जानने के लिए मृत्यु के बीच से उसका परिचय चाहिए । जो मनुष्य डरकर मृत्यु से बचकर जीवन से लिपटा हुआ है, जीवन पर उसकी यथार्थ श्रद्धा नही है, इसी कारण उसने जीवन को नही प्राप्त किया है । इसी कारण वह जीवन के मध्य मे रहकर भी प्रतिदिन मृत्यु की विभीषिका से मरता है ।"

इन्ही दिनो कविवर ने 'बलाका' नामक सग्रह की कविताए लिखी थी, जिनमे इसी प्रकार के स्वस्थ और ओजस्वी विचार प्रस्तुत किये गए थे । 'बलाका' बहुत

दिनो तक क्रियाशील क्रातिकारियो की पाठ्य-पुस्तक के रूप मे काम आता रहा, पर इस कारण उसका साहित्यिक मूल्य कुछ कम नही है। 'फाल्गुणी' के पहले कवि ने 'वैराग्य साधन' नाम से एक छोटी-सी नाटिका लिखी थी, जो एक तरह से 'फाल्गुणी' की भूमिका या व्याख्या थी। इन दिनो कविवर की उम्र ५४ हो चुकी थी, पर उन्होने स्वय 'फाल्गुणी' मे बाउल का अभिनय किया। कहते हैं, यह अभिनय बहुत ही सुदर हुआ था। इसमे सदेह नही कि 'फाल्गुणी' ने कविवर के साहित्य मे एक और मजबूत कडी की सृष्टि करने के साथ ही रूढिवाद के विरुद्ध हमला बोला।

'फाल्गुणी' के सात वर्ष बाद 'मुक्तधारा' नामक नाटक लिखा गया। 'मुक्तधारा' मे कुछ और ही राग अलापा गया है। एक आलोचक का कहना है कि जिस समय वे 'फाल्गुणी' लिख रहे थे, उस समय महायुद्ध (१९१४-१८) जारी था। उन्होने उसमे शक्ति और यौवन का प्राचुर्य देखा था और उन्हे यह आशा थी कि रात्रि की तपस्या से दिन की रोशनी सामने आयेगी, मृत्यु से अमृत प्राप्त होगा, इत्यादि। इस बीच महायुद्ध का अत हुआ था, पर कवियो और मनीषियो का स्वप्न सत्य नही हुआ था, बल्कि पूजीवाद ने अपनी जकड और भी कडी करनी चाही थी। वे इस बीच एक बार विश्व-भ्रमण भी कर आये थे। इसी बीच जलियावाला बाग हत्याकाण्ड हुआ था। उन्होने सर की उपाधि त्याग दी थी, गाधीजी का असहयोग-आदोलन इस बीच आकर जा भी चुका था और सत्याग्रह का युग शुरू हो गया था।

इन्ही परिस्थितियो से गुजरकर जब वह सुदीर्घ भ्रमण से देश मे लौटे तो उन्होने ६ महीने के अदर 'मुक्तधारा' और दो साल के अन्दर 'रक्त करवी' की रचना की। 'मुक्तधारा' पर केवल बाहरी घटनाओ की ही छाया है, ऐसा मानना असम्भव है। इसमे जहा यात्रिकता या यत्र-सभ्यता के प्रति क्रोध है, वहा शासक-जाति की दुष्टता और पराधीन जाति के दुःख का भी चित्रण है। यात्रिकता के प्रति कविवर का जो विद्वेष है, वह कुछ-कुछ गाधीवादी बल्कि गाधीजी के पहले भी इस प्रकार के मत रखनेवालो के टर्रे पर चलता है, मानो यत्र का ही दोष है, जबकि दोष उस समाज-व्यवस्था का है, जिसमे यत्र एक वर्ग-विशेष के शोषण का साधन बन जाता है। इसी कारण 'मुक्तधारा' मे अभिजित यत्र को तोड डालता है, पर यत्र को जिन लोगो ने शोषण के लिए प्रयुक्त किया, उनके

विरुद्ध कुछ नही करता। फिर भी 'मुक्तधारा' नाटक के रूप मे सफल है।

'रक्त करवी' भी करीब-करीब उन्ही विचारो को लेकर चलता है, जो 'मुक्तधारा' का उपजीव्य है। पहले 'रक्त करवी' शिलाग पर रचित हुआ था और इसका नाम 'यक्षपुरी' रखा गया था। इसकी कहानी इतनी-सी है कि कुछ लोग लोभ तथा अन्य कारणो से अपने ही बनाये हुए जेलखानो मे वद है और जेलखाने के सीखचो से बाहर जीवन की प्रतीक स्वरूपा नदिनी उन्हे बुला रही है। वह जेलखाना ही यक्षपुरी हैं। यक्षपुरी के राजा ने नदिनी को उसी प्रकार से पाना चाहा, जिस प्रकार से वे स्वर्ण तथा धन-सम्पत्ति प्राप्त करते है, पर प्रेम और सौंदर्य को ऐसे थोडे ही पाया जाता है। 'रक्त करवी' गीतधर्मी है, साथ ही उसमे रोमान्स का वातावरण है।

'रक्त करवी' की रचना के बाद कविवर ने कुछ पुरानी कहानियो और नाटको को नये रूप मे पेश किया। 'कर्मफल' नामक कहानी का नाट्य रूप 'शोध बोध' हुआ और 'शेषेर रात्रि' कहानी का नाट्य रूप 'गृह-प्रवेश' हुआ। नाटक रूप मे 'शोध बोध' अधिक सफल रहा। इसके बाद उन्होने जिन रचनाओ को नये रूप मे रक्खा, उनका पहले ही किसी-न-किसी रूप मे उल्लेख आ चुका है।

ब० सन् १३३० के (लगभग १९१६ ई०) 'प्रवासी' मे कविवर का एक नाटक 'रथयात्रा' नाम से प्रकाशित हुआ था, इसीका परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप 'रथेर रशि (रथ की रस्सी) हुआ। इसे श्री निहार रजन ने आधुनिक लोकतान्त्रिक भारतीय गण मन का घोषणापत्र वतलाया है। भारतीय समाज-व्यवस्था का रथ चल नही पाता, पुरोहित का मत्र, क्षत्रिय का शौर्य, पूजीपति की पूजी याने शास्त्र, शस्त्र, सब उसे चलाने मे असफल रहे। इतने मे बाढ के पानी की तरह शूद्रो का दल आया, जो अपनी एकता के बल से उसे चलाने मे समर्थ हुआ, पर रथ पुरानी लीक पर न चलकर नये प्रशस्त मार्ग मे चल पडा। शूद्र शक्ति की जय हुई। इतने मे आये कवि। लोगो ने उनसे पूछा कि यह क्या हुआ? तब कवि ने बताया—"उनका सिर बहुत ऊचा था, महाकाल के रथ की चूडा पर ही उनकी दृष्टि निबद्ध थी, नीचे की तरफ उनकी आख देखती ही नही थी, इसीलिए उन्होने रथ की रस्सी की अवज्ञा की। मनुष्य के साथ मनुष्य को जो बधन बाधता है, उसे उन्होने नही माना, इस कारण पूजा धूल मे गिरी और भक्ति मिट्टी मे ही पडी रही। रथ की रस्सी बाहर पडी रहती है। वह रहती है मनुष्य और मनुष्य मे बधी हुई, देह से देह

और प्राण से प्राण मे युक्त। वही अपराध जमा हो गया और बधन दुर्बल हो गया। सब लोग मिलकर कहो कि जो इतने दिनो तक मरे हुए थे, वे जी उठे और जो इतने दिनो तक तुच्छ थे, वे एक बार सिर उठाकर खडे हो।"[1]

इस प्रकार यह नाटक पुरोहितवाद, पूँजीवाद तथा इस प्रकार के सब शोषक वादो के विरुद्ध जन-विद्रोह की आवाज को बुलन्द करता है।

इसके बाद 'कविवर दीक्षा' मे भी त्याग की महिमा गाई गई है। इसके बाद जो नाटक तथा नाटिकाए लिखी गई, उनमे गीति और नृत्य नाट्यो की ही प्रधानता है। ऐसे नाटको मे 'नटीर पूजा', 'नृत्य नाट्य', 'चित्रागदा', 'शाप मोचन' विशेष उल्लेखनीय है। इनमे से 'नटीर पूजा' ही इधर के सब नाटको मे अधिक सफल माना गया हे। इन नाटको मे कथानक का विकास भी सुन्दर ढग से होता है। रानी लोकेश्वरी के मन मे जो द्वन्द्व है, उसीका चार अको मे जिस प्रकार विकास दिखलाया जाता है, वही इस नाटक की सफलता के लिए काफी उपकरण होता, पर इसमे और भी तत्त्व है।

इस प्रकार से हमने रवीन्द्रनाथ के नाटको का जो थोडा-सा वर्णन दिया है, उससे उनके नाटको ने बगला के साहित्य ही नही, सास्कृतिक जीवन मे भी कैसी महान् क्राति उपस्थित की, इसका पूरा अनुमान नही किया जा सकता।

अब हम बहुत ही सक्षेप मे कहानियो के क्षेत्र मे उनके योगदान का उल्लेख करेगे। सच तो यह है कि रवीन्द्रनाथ से ही बगला साहित्य मे कहानी की प्रतिष्ठा हुई। इस सबध मे कुछ आकडे इस प्रकार है। हम इस प्रसग को 'रवीन्द्र साहित्येर भूमिका' से उद्धृत करते है—"उनकी अधिकाश कहानिया मोटे तौर पर ब० सन् १२९८ से १३१० के बीच रचित हुई। अवश्य इसके बाद भी कई प्रसिद्ध कहानियाँ १३१४ से १३२५ के अदर लिखी गई थी, पर उनकी अधिकाश कहानियो का मूल धर्म १२८९ से १३१० तक की रचनाओ मे प्राप्त होगा। 'पोस्ट-मास्टर' कहानी १२८९ मे लिखी गई थी।" इन दिनो कविवर ने जमीदारी पर देख-रेख का भार लिया था और वह दिनभर पूर्व बगाल की नदी मे नाव पर ही काटते थे। इन्ही दिनो उन्हे गाव के जीवन से घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मौका मिला। १८९४ के २७ जून को उन्होने शिलाईदह से एक पत्र मे लिखा

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका—पृ० १६४

था—"आजकल ऐसा मालूम होता है कि यदि मैं कुछ भी न कर कहानिया लिखू तो उससे मुझे कुछ-कुछ मानसिक सुख प्राप्त हो और यदि मैं इसमे सफल रहू तो दस-बीस पाठको को भी सुखी कर सकू। कहानी लिखने का एक सुख यह है कि जिनकी बात मैं लिखूगा, वह हमारे दिन और रात के खाली समय को एकदम भर देगे, मेरे अकेले मन के साथी होगे, वर्षा के समय मेरे बन्द कमरे की सकीर्णता दूर करेगे और धूप के समय पद्मा तट के उज्ज्वल दृश्य के बीच मेरी आख के सामने घूमते रहेगे। इसीलिए आज सवेरे मैंने गिरिबाला नाम से एक उज्ज्वल श्याम रग की एक छोटी अभिमानी लडकी को अपने कल्पना राज्य मे अवतरित किया है।"

इस अवसर पर 'मेघ ओ रौद्र' कहानी लिखी गई। इसी प्रकार श्री राय ने दिखलाया है कि दो साल पहले याने २६ जून सन् १८६२ मे शाहजादपुर की कोठी मे गाव के पोस्टमास्टर साहब आये थे। इस तरह 'पोस्टमास्टर' कहानी लिखी गई। हम यहापर उनकी कहानियो की विस्तृत आलोचना नही कर सकते, पर इतना बता दे कि कई लोग यह समझते है कि उन्होने कहानिया उसी प्रकार एक-एक शब्द जोडकर लिखी, जैसे कविता लिखी जाती है, इस कारण वह कला की दृष्टि से किसी भी अश मे निकृष्ट नही है। यदि वर्ग की दृष्टि से विचार किया जाय, तो रवीन्द्रनाथ स्वय अभिजात वर्ग मे पैदा हुए थे, उसीमे वह पले और बडे हुए, पर वह साहित्य के क्षेत्र मे मध्यवित्त समाज के ही प्रतिनिधि हैं। एक बात और है, वह यह कि कहानी-रचना के आदि पर्व मे वह मानो केवल वैयक्तिक जीवन को केंद्र बनाकर चलते है।

रवींद्र-साहित्य की भूमिका का यह उद्धरण देखिये—"लेखक ने सबकुछ लगाकर सिर्फ हमारे हृदय को ही छूना चाहा है। हमारी बुद्धि और समाज-चेतना को उद्बुद्ध करने की तरफ उनका ध्यान उतना अधिक नही है। मध्यवित्त तथा गरीब तबके के लोगो के दु ख-दर्द, अपमान, अत्याचार, अविचार, अन्याय, असगति वह सब कुछ दिखाते हैं और उनका वास्तविक परिचय हमारे निकट लाते है, परन्तु इन सबके पीछे समाज और राष्ट्र-व्यवस्था का निर्मम, निष्ठुर, साथ ही अचेतन अविचार हो सकता है, इस सम्बन्ध मे वह हमे कोई इगित नही देते। 'नष्ट नीड' कहानी से सामाजिक चेतना का आरम्भ होता है।"

उनकी कहानियो की सख्या बहुत अधिक है। बीच-बीच मे वर्षो ऐसा हुआ

है कि उन्होने कोई कहानी नही लिखी। इसमे कोई सदेह नही कि रवीन्द्र-साहित्य मे कहानियो का स्थान बहुत ही उच्च है। डा० श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय ने विश्लेषण करके दिखलाया है कि प्रधान रूप से निम्न उपायो के द्वारा उन्होने हमारे रोजमर्रा के सामान्य जीवन पर रोमास की असाधारणता तथा दीप्ति ला दी है—

(१) प्रेम,
(२) सामाजिक जीवन मे सम्पर्क की विचित्रता,
(३) प्रकृति के साथ मानव-मन का निगूढ अन्तरग सम्पर्क
(४) अति प्राकृत का सम्पर्क।

प्रेम की विचित्र लीला 'एक रात्रि', 'महामाया', 'समाप्ति', 'दृष्टिदान', 'माल्यदान', 'मध्यवर्तिनी', 'शास्ती', 'प्रायश्चित्त', 'मानभजन', 'दुराशा', 'अध्यापक' और 'शेषेर रात्रि' इत्यादि कहानी मे देखी जा सकती है। दूसरे पर्याय मे 'काबुली वाला', 'पोस्ट मास्टर', 'मास्टर मशाय', 'पण रक्षा', 'कर्म-फल' आदि कहानिया आती हे। तीसरे पर्याय मे 'सुभा', 'अतिथि', 'तारापद', 'समाप्ति' आदि कहानिया आती हैं। चौथे पर्याय मे 'निशीथे', 'मणिहारा', 'ककाल', 'क्षुधित पाषाण' इत्यादि कहानिया है।

१७

शरतचन्द्र

जिस समय रवीन्द्रनाथ बगला के साहित्य-गगन मे बहुत जोर-से चमक रहे थे, उन्ही दिनो शरतचन्द्र का एकाएक आविर्भाव हुआ। बहुत-से साहित्यकार ऐसे होते है, जो धीरे-धीरे चमककर बाद को मध्याह्न सूर्य की तरह चमकते है, पर शरतचन्द्र जिस समय चमके, उस समय एकदम से मध्याह्न सूर्य की ही तरह चमके। बात यह है कि वह प्रारम्भ मे बिलकुल आत्मज्ञान-सम्पन्न कलाकार नही थे और एकलव्य की तरह अपने गुरुओ से भी दूर नीरव साधना कर रहे थे।

१८७६ ई० के १५ सितम्बर को बगाल के हुगली जिले के एक छोटे-से गाव

देवानन्दपुर मे शरतचद्र का जन्म हुआ। उनके पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय साहित्य और कला के अनुरागी थे। उन्होने चित्रकारी की, उपन्यास भी लिखा, किन्तु कभी कोई रचना पूरी नही कर पाये। कुछ दूर तक जाकर वह अपनी रचना को असम्पूर्ण छोडकर आगे वढ जाते थे और दूसरा काम उठा लेते थे। इसी प्रकार वह कल्पना-विलासी जीव थे। उनकी कोई रचना पूरी नही हुई।

शरतवावू उनकी नौ सतानो मे एक थे। घर मे वच्चो का ठीक-ठीक शासन नही होता था याने कभी जव वालक शरत पढाई-लिखाई छोडकर इधर-उधर चल देते थे तो कोई विशेष शोर नही मचाता था, पर जव वह लौटकर आते थे तो खूव मार पडती थी और वह पढने के लिए भेजे जाते थे। इस प्रकार वह वार-वार भागते और वार-वार पढने के लिए भेजे जाते थे। ऐसे वालक के लिए भविष्य मे साहित्य-जगत के शीर्ष स्थान मे पहुचने की कल्पना नही की जा सकती थी, पर जीवन मे ओत-प्रोत जिस तरह के साहित्य की शरतवावू ने वाद मे चलकर रचना की, उसके रचयिता होने के लिए कदाचित् इसी प्रकार का जीवन होना आवश्यक था। 'देवदास' और 'श्रीकात' के लेखक के लिए ग्राम-जीवन की पूरी जानकारी ही नही, अनुभूतिपूर्ण व्यावहारिक जानकारी भी आवश्यक थी। 'देवदास' की पार्वती और 'श्रीकात' की राजलक्ष्मी कपोल-कल्पित चरित्र नही हैं। ऐसे ही वहुत-से चरित्रो की चाभी उनके वचपन के जीवन मे मिल सकती है।

उन्होंने अपने वचपन के सम्वन्ध मे जो थोडे-वहुत सस्मरण लिखे हैं, उनसे इस प्रकार की वहुत-सी वातो पर रोशनी पडती है।

किसी प्रकार वह १८ साल की उम्र मे एट्रेन्स की परीक्षा मे पास हो गये। इन्ही दिनो उन्होने 'वासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला, परतु यह रचना उनके मन के मुताविक न होने के कारण, उन्होंने उसे फाडकर फेक दिया। उनके पिता मोतीवावू तो किसी रचना को प्रस्तुत करते-ही-करते वीच मे निराश होकर छोड देते थे, पर पुत्र ने रचना समाप्त तो कर ली। इस प्रकार शरत ने अपनी कई रचनाए फाड डाली। वहुत-से लोग यह समझते हैं कि शरतवावू एकाएक परिपूर्ण तथा परिपक्व प्रतिभा के अधिकारी होकर साहित्य क्षेत्र मे आये, यह गलत है। असल मे उनकी नीरव साधना चलती रही।

वह रवीन्द्र साहित्य के साथ-साथ थैकारे, डिकेस आदि उपन्यासकारो का अध्ययन करते रहे। हेनरी उड के प्रसिद्ध उपन्याम 'ईस्टलीन' के आधार पर उन्होने 'अभिमान' नाम से एक उपन्याम लिखा था, साथ ही उन्होने मेरी कारेली के 'माईटी ऐटम' पुस्तक का वगला अनुवाद किया था, पर उनके छपने की नौवत नही आई।

यह सब उनकी साधना के सोपान थे। वह इस प्रकार लिखते जाते थे, पर साथ ही राजू नामक अपने एक मित्र के साथ वीच-वीच मे कई-कई दिन गायव भी रहते थे।

वह लगन के वडे पक्के थे। इसका एक उदाहरण यह दिया जाता है कि उन्होने अपने एक साथी से कहा कि आज रात को मेरे पास कोई पढने के लिए न आना। जव सवेरा हुआ और उनके साथी उनसे पढने के लिए पहुचे तो वह वोले—हमने तो तुम लोगो से अभी कहा था कि कोई मेरे पास आज मत आना, फिर तुम लोग क्यो आये ?

तव लोगो ने उनसे कहा कि महाराज, रात खतम हो गई और सवेरा हो गया। इसपर उन्होने जगला खोला, तव उन्हे पता लगा कि पढते-लिखते रात वीत गई हे। इस प्रकार हम देख सकते है कि जीवन के साथ घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ वह सारी रात आखो मे भी विता देने मे अग्रगण्य थे। भाषा की साधना तो उन्होने पुस्तको से ही की।

रवीन्द्रनाथ का प्रभाव उनपर वहुत अधिक पडा। लिखने की साधना उन्होंने वरावर जारी रक्खी। वह जीवन-सग्राम की थपेडो के कारण वीच ही मे कालेज की पढाई छोडने के लिए वाध्य हुए। उन्होने वकिम ग्रथावली का पारायण किया। इस सम्वन्ध मे पारायण शब्द इच्छापूर्वक प्रयुक्त हुआ है, क्योकि उन्होंने स्वय लिखा—"वकिम को मैंने इतनी वार पढा कि उनकी पुस्तके जैसे कण्ठस्थ हो गई।"

इसी प्रकार वह जव वर्मा चले गये तो उनके साथ कवीन्द्र की कुछ पुस्तके काव्य और कथा-साहित्य था। इन पुस्तको को भी उन्होने वार-वार पढा। उन पुस्तको को पढते जाते थे और उनपर विचार करते जाते थे। इसीके साथ-साथ वह अग्रेजी साहित्य का भी अध्ययन करते जाते थे। यहा यह वताने की

आवश्यकता नही है कि किस प्रकार से उन्होने कौन-सी पुस्तक लिखी और कैसे-कैसे लिखी।

बर्मा मे रहते समय वे बगचद्र दे नामक एक व्यक्ति के सपर्क मे आये। यह आदमी विद्वान् था, पर साथ ही शराबी और उच्छृखल था। इन दिनो शरतचन्द्र ने भी बहुत उच्छृखल जीवन बिताया। शरतचन्द्र इन दिनो ३० रुपये मासिक के क्लर्क थे और वह मेस मे रहते थे। इन्ही दिनो उन्होने 'चरित्रहीन' लिखा, जिसमे मेस-जीवन का वर्णन है, साथ ही मेस की नौकरानी से प्रेम की कहानी है।

साहित्य-जगत् मे शरतबाबू का प्रवेश बडे अजीब ढग से हुआ। शरतचन्द्र जब बर्मा से भारत आये थे तो वे अपनी कुछ रचनाओ को भारत मे एक मित्र के पास छोड गये थे। इस मित्र के कोई और मित्र थे। शरतबाबू को बिना बताये १८०७ मे 'बडी दीदी' का धारावाहिक प्रकाशन शुरू हो गया। दो-एक किस्त निकलते ही लोगो मे सनसनी फैल गई और वे कहने लगे कि शायद रवीन्द्रबाबू नाम बदलकर लिख रहे है। यह खबर कवीन्द्र तक पहुची। कवीन्द्र ने उन किस्तो को पढा, पढकर उनकी प्रशसा की और यह साफ कह दिया कि मै इनका लेखक नही हू।

शरतबाबू को इसकी खबर साढे पाच साल बाद मिली कि उनकी कोई रचना प्रकाशित हुई है। बात यह है कि छापनेवालो ने शरतबाबू को अक भी नही भेजा था। पर इसके बाद भी उन्हे अपना 'चरित्रहीन' छापने मे बडी दिक्कत हुई। 'भारतवर्ष' मासिक पत्र के सम्पादक द्विजेन्द्रलाल राय ने इसे यह कहकर छापने से इकार कर दिया कि यह सदाचार के विरुद्ध पडता है। सबसे आश्चर्य यह है कि द्विजेन्द्रबाबू ने ऐसा किया था।

जो कुछ भी हो, अब उनकी गाडी चल निकली और एक के बाद एक 'पडित मोशाय', 'बैकुठेर विल', 'मेज दीदी', 'दर्प चूर्ण', 'पल्ली समाज', 'श्रीकात', 'अरक्षणीया', 'निष्कृति', 'मामलार फल', 'गृहदाह', 'शेष प्रश्न' आदि निकलते चले गये। उन्होंने बगाल के क्रातिकारी आदोलन को लेकर 'पथेर दावी' उपन्यास लिखा। यह पुस्तक पहले 'बगवाणी' मासिक पत्र मे प्रकाशित हुई। जब यह पुस्तक धारावाहिक रूप मे निकल रही थी, तभी इसपर सरकार की कोप-दृष्टि पड चुकी थी। पुस्तकाकार छपने पर तीन हजार का सस्करण तीन महीने मे

समाप्त हो गया। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया।

जो कुछ पहले लिखा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट हो चुका है कि शरतबाबू अपने लिखने का उपकरण जीवन से लेते थे, उन्होने विशेषकर अपने जीवन से बहुत-सी बाते ली। वे स्वय एक यशस्वी आवारागर्द थे। 'चरित्रहीन' का सतीश, 'श्रीकात' का श्रीकात, 'पल्ली समाज' का रमेश, 'देवदास' का देवदास पक्के आवारागर्द हैं। इसी प्रकार 'बडी दीदी' का सुरेद्र, 'दत्ता' का नरेद्र, 'गृहदाह' के सुरेश और महिम आवारागर्द नही तो उनका रुझान आवारागर्दी की ओर है। 'पथेर दाबी' का डाक्टर एक क्रातिकारी है, पर एक क्रातिकारी इसके सिवा क्या है कि उसकी आवारागर्दी क्राति को लाने के लिए है।

यह सभी मानते है कि शरतचन्द्र के पुरुष पात्रो से उनके उपन्यासो की नायिकाए हृदय पर अधिक प्रभाव डालनेवाली हैं। शरतचन्द्र की जनप्रियता केवल उनकी कलात्मक रचना अथवा नपे-तुले शब्दो या जीवन से ओत-प्रोत घटनावलियो के कारण नही है, वल्कि उनके उपन्यासो मे नारी को जो हमेशा के परम्परागत बधनो से मुक्ति मिली, वह सबसे बडी बात है। भारतीय नारिया धर्म, गतानुगतिकता तथा पैसे के सयुक्त मोर्चे के कारण युगो से पिसी जा रही थी। अब शरत की रचनाओ मे उन्हे मुक्ति मिली। युग-युगातर को उनके पैरो की भारी बेडिया जैसे झनझना कर टूट गई। उन्होने भी जाना कि जीवन मे उनका भी कुछ भाग है, जो सर्वदा गौण ही हो, ऐसा नही। शरतचन्द्र की पुस्तको मे बार-नारियो का चरित्र भी सहानुभूतिपूर्वक चित्रित हे। हमे उनको देखकर ऐसा मालूम होता है कि वे भी मनुष्य योनि की सदस्या है, उनमे भी वैसा ही धडकता हुआ दिल है, जो किसीसे निकृष्ट नही।

डा० कैलासनाथ काटजू ने शरतचन्द्र पर एक लेख मे लिखा था—"मेरा अनुमान है कि शरतबाबू ने अपनी कला का परिचय अपने नारी पात्रो मे ही दिया। उनके नारी पात्र अपनी विशिष्टता लिये हुए जैसे एक के बाद एक हमारे मनश्चक्षु के आगे घूम जाते है और उनमे से कौन अधिक श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है, क्योकि प्रत्येक नारी पात्र अपने स्थान पर एकदम अद्भुत है। इनमे से सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक आकर्षक कौन है, यह हर पाठक अपनी रुचि और भावना के अनुसार ही तय कर सकता है। यह बहुत-कुछ आदमी के अपने स्वभाव पर भी निर्भर करता है। जहातक मेरा सबध है, मैं तो १९४१ मे

'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी से प्रथम साक्षात्कार होने पर ही अपना दिल उसे दे बैठा हू। यह एक तरह पहली दृष्टि मे प्रेम होने की-सी बात है और मुझे यह कहने मे गर्व है कि इस बात को आज १५ वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी जैसे राजलक्ष्मी मुझे अपना बंदी बनाये हुए है।"[1]

डा० काटजू साहित्य के विद्वान के रूप मे प्रसिद्ध नही है, पर वह अपने ढंग के एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है, इसलिए उनकी प्रतिक्रिया को हम उच्च शिक्षित वर्ग की प्रतिक्रिया मान सकते हैं। केवल उच्च शिक्षित ही नही, किसी प्रकार पढ-लिख लेनेवाला प्रत्येक भारतीय शरतबाबू के उपन्यासो को पसन्द करता है। शायद यह कहना अत्युक्ति न होगी कि सारे भारत मे शरतबाबू की पुस्तको का जितना प्रचार हुआ, उतना प्रचार रविबाबू की पुस्तको का भी नही हुआ। पर जब हम इससे आगे बढते है याने विश्व-साहित्य मे देखते हैं तो रविबाबू के साहित्य का प्रसार शरत-साहित्य से कही अधिक हुआ। क्या इसका कारण केवल यही है कि रविबाबू को अग्रेजी मे अनुवाद करनेवालो का अधिक सहयोग मिला या इसका कारण यह है कि शरतबाबू मे भारतीय तत्व बहुत अधिक है?

उपन्यासकार के रूप मे शरतबाबू रविबाबू से श्रेष्ठ रहे, इसमे कोई सन्देह की गुजाइश नही है, पर शरतबाबू मे हम एक कमी भी देखते हैं। जिस गरीबी के कारण शरतबाबू एफ० ए० की परीक्षा मे नही बैठ पाये, जिस गरीबी के कारण उन्होने एक तरह से अपने भाई तथा बहनो को रिश्तेदारो मे बाट-सा दिया तथा जिस गरीबी मे वह बराबर गोता खाते हुए इधर-से-उधर धक्के खाते फिरे, उसकी तथा मध्यवित्त श्रेणी की सबसे बडी समस्या बेकारी का उनके उपन्यासो मे कही पता नही। 'बडी दीदी', 'दत्ता', 'देवदास', 'पल्ली समाज', 'गृहदाह', 'बाम्हन की लडकी', 'शेष प्रश्न' कही भी कोई बेकारी से पीडित नजर नही आता। 'पल्ली समाज' मे गरीबी का कुछ चित्रण अवश्य है, पर गरीबी के अनिवार्य नतीजे के रूप मे ग्रामवासियो के दुर्गुणो को जैसे एक-दूसरे से ईर्ष्या, बेईमानी, झूठी गवाही तथा कुसस्कारो पर जोर न

---

[1] नया समाज, फरवरी १९५६

देकर शरतबाबू ने इनको मुख्यत अशिक्षा के मत्थे मढा है, जो सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नही है ।

इस कमी के अतिरिक्त शरतबाबू ने समसामयिक मध्यवित्त समाज का बहुत सुन्दर चित्रण किया है । शरतचन्द्र बहुत अशो मे एक क्रातिकारी थे, पर उनके क्रातिकारित्व मे भी अपरिवर्तनवादिता का पुट बहुत गहरा है । 'चरित्रहीन' उपन्यास को ही लिया जाय । उसमे सतीश और सावित्री मे परस्पर गहरा प्रेम होते हुए भी उनका मिलन नही होता । सतीश तो सरोजिनी से मिला दिया जाता है, पर सावित्री का क्या होता है ? शरतबाबू अपने इस आदर्शवाद को बहुत अच्छी तरह छिपा लेते है और यह दिखलाया गया कि सावित्री ने जान-बूझकर सतीश को सरोजिनी के हाथो सौप दिया । इससे सावित्री का चरित्र जिस गौरवमय रग मे रगा जाकर पाठक के सामने आता है, वह अनोखा है, पर साथ ही यह एक दकियानूसी गौरव है, प्रेम की विजय होकर भी नही होती या यो कहा जा सकता है कि उसकी विजय का धोखा होता है, क्योकि प्रेम की विजय केवल अफलातूनी सतह पर ही होती है ।

यही बात 'देवदास' की पार्वती के साथ, बल्कि पार्वती और देवदास दोनो के साथ होती है । आजन्म प्रेम का क्या नतीजा दिखाया गया है ? यही न कि दोनो मे मिलन नही होता और वह इस कारण कि जिस किसी तरह भी हो, पार्वती का विवाह एक दूसरे व्यक्ति से हो चुका है । यहा प्रेम का तकाजा तो यह है कि पार्वती अपने विवाहित पति को छोड देती या तलाक दे देती और हृदय के पति के साथ विवाह कर लेती । पर जैसा कि मैंने पहले लिखा था 'यदि शरतबाबू अपने उद्‌भावनशील मस्तिष्क से कोई तरीका निकालकर पार्वती को देवदास के निकट पहुचा देते तो वह हिंदू विवाह की भयानक ट्रेजेडी को अपनी कला के मुकुर मे कैसे दिखा पाते ? इसलिए उन्होने पार्वती और देवदास के प्रेम को वही पहुचा दिया है, जहा पहुचाने से घर-घर मे होनेवाली हिंदू विवाह की ट्रेजेडी को बिल्कुल मूर्त कर पाते । इस प्रकार हम एक अजीब परिस्थिति मे पहुचते है और वह यह कि पार्वती और देवदास का मिलन न कराने पर ही प्रेम की जय के लिए सबसे बडा मुकदमा बनकर तैयार होता है । इस प्रकार हम है और नही भी, इस विरोधाभास-पूर्ण मत पर हमने उनकी कला के सबध मे पहुचते है ।

उनके उपसहार बिल्कुल आदर्शवादी है। प्रेम की जो पराकाष्ठा होनी चाहिए, वहातक पाठक को पहुचा देते है, पर उसे इस भोडेपन से विजय मे परिणत नही कराते कि असली मामला ही बिगड जाय। 'देवदास' मे तलाक के लिए एक उचित मुकदमा प्रस्तुत होता है। 'चरित्रहीन' विधवा-विवाह के लिए एक तर्क पेश करता है, यद्यपि उसमे सरोजिनी के बीच मे आ जाने के कारण अच्छी तरह उभर नही पाया। 'पल्ली समाज' मे विधवा-विवाह का तर्क 'चरित्रहीन' से कही साफ है।

क्या कारण है कि शरतबाबू अपने युग की सबसे बडी समस्या गरीबी, शोषण, बेकारी की ओर उतना नही झुके ? उसका कारण यह है कि उन्हे नर और नारी के प्रेम मे समाज के शासन-दड की निर्दय मूर्ति दिखाई पडी। यह तो कलाकार की बात है, उसे सबसे अधिक कौन-सी बात क्षुब्ध करती है। रहा यह कि पराधीनता की ज्वाला का अनुभव वह कर चुके थे, इसीका नतीजा यह था कि उन्होने 'पथ के दावेदार' नामक उपन्यास लिखा। जैसा कि बताया जा चुका है, यह उपन्यास जब्त भी हो गया था। 'महेश' आदि कुछ कहानिया भी उन्होने लिखी थी, जिनमे शोषण का प्रश्न बहुत उभरकर सामने आया है।

१८

अन्य उपन्यासकार तथा लेखक

कुछ ऐसे उपन्यासकारो का भी परिचय दे देना उचित होगा, जिन्हे अति आधुनिक उपन्यासकारो मे हम नही गिन सकते, पर वे इसी शताब्दी के आरभ की ओर प्रसिद्ध हुए और अच्छे उपन्यास लिख गये। ऐसे उपन्यासकारो मे **प्रभातकुमार मुखोपाध्याय** का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है। रवीन्द्र और शरत् के चकाचौंध मे जिन उपन्यासकारो को बगला मे और इसलिए बगला के बाहर उचित सम्मान न मिल सका, उनमे वे प्रमुख है। प्रभातबाबू ने कई उपन्यास लिखे। उनका पहला उपन्यास 'रमा सुन्दरी' ब० सन् १३०९-१० मे 'भारती' पत्रिका मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। इसमे एक स्त्री

रमा सुन्दरी का चरित्र-चित्रण है, जो विवाह के पहले तक बडी ही नटखट, साहसी रहती है, उसमे स्त्री का स्वभाव विल्कुल नही है, पर विवाह के बाद ही वह स्नेहशीला पत्नी बनकर रह जाती है।

बाद को प्रभातबाबू ने 'नवीन सन्यासी', 'रत्नदीप', 'सिन्दूर कौटा', 'जीवनेर मूल्य', 'मनेर मानुप' आदि बहुत-से उपन्यास लिखे। कहानिया लिखने मे उन्हे विशेप सफलता मिली। उनकी अधिकाश कहानिया हास्य रस की हैं। कुछ कहानिया अवैध प्रेम के सबध मे भी है। उनकी कई कहानिया स्वदेशी आदोलन पर है। रवीन्द्र के बाद कहानियो की धारा को अक्षुण्ण रखने मे उन्हे एक बडी कडी मानना पडेगा।

बगला के गद्यकारो मे **प्रथम चौधरी** बहुत ही प्रमुख व्यक्ति हो गये है। यो तो उन्होने कहानिया लिखी और वे कहानिया अपने समय मे बहुत प्रसिद्ध भी हुई, पर बगला-साहित्य मे उनका सबसे बडा दान बोल-चालवाला गद्य है। उन्होने सपूर्ण रूप से बोलचाल की भाषा को अपनाकर एक नई शैली की स्थापना की, जिसका प्रभाव सारे साहित्य पर पडा। उनकी 'चारयारी कथा' चार कहानियो का सग्रह है, पर उनमे एक अतर्निहित योगसूत्र भी है। आज यदि उनकी रचनाओ को पढा जाय तो यह नही पता लग सकता कि वे क्यो अपने समय के साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव डालने मे समर्थ हुए। बोल-चाल की भाषा को साहित्य मे सुप्रतिष्ठित करना यह उन्हीके उद्यम और अध्यवसाय का काम था। इस सबध मे उनकी सेवा कितनी बडी है, यह श्री कुमार वन्द्योपाध्याय के इन वाक्यो से ज्ञात होगा—

"मुख्य रूप से उन्हीके समर्थन के कारण बोल-चाल की भाषा साहित्य की ड्योढी पर एक भिखारी की तरह नही, बल्कि समान शक्तिशाली प्रतिद्वद्वी की तरह साधु भाषा के सिहासन के आधे अश पर अधिकार जमाकर बैठ गई है, यहातक कि रवीन्द्रनाथ ने भी उनकी उक्ति व दृष्टात से अनुप्राणित होकर अपनी परवर्ती रचनाओ मे बोल-चाल की भाषा का प्रचलन किया। इसलिए उपन्यासकार की दृष्टि से उनका स्थान उतना ऊचा न होने पर भी हमारी जडीभूत विचारधारा मे नये स्रोत का वेग पहुचाना और बुद्धि प्रधानता युक्त मनोवृत्ति प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हे मिलना चाहिए। इस विषय मे वे अग्रेजी साहित्यकार चेस्टरटन के समतुल्य है। यद्यपि उनमे चेस्टरटन की तडित प्रभा

की तरह चकाचौंध कर देनेवाली बुद्धि की असिक्रीडा का अभाव है।"

राजशेखर वसु उर्फ परशुराम अपने ढंग के एक ही लेखक थे। कभी वे धर्म पर व्यंग करते हैं तो कभी समाज-व्यवस्था पर, तो कभी चिकित्सा-प्रणाली पर, कभी राजनीति पर। उनकी बहुत-सी रचनाओं का हिंदी में अनुवाद हुआ है और बराबर होता जाता है। उनकी रचना को एक विशेष श्रेणी में लाना संभव नहीं है, क्योंकि हास्य से संबद्ध सभी प्रकार के अस्त्र उनके निकट मौजूद थे।

श्री केदारनाथ बन्द्योपाध्याय हास्य रस के एक बहुत प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। बंगला-साहित्य में वह हास्य रस के कदाचित् सबसे प्रसिद्ध लेखक माने जाते हैं, पर उनका हास्य रस-भाषा से इस प्रकार बंधा हुआ है कि वह बंगला के बाहर प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सके।

: १९ :

दीनबन्धु के बाद बंगला नाटक और रंगमंच

हमने बंगाल के रंगमंच पर दीनबन्धु मित्र के समय तक लिखा था। इस अध्याय में उसके बाद का विवरण लिखा जायगा।

महाराजा सर (उस समय केवल बाबू) यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने अपनी पाथुरिया घाटावाली हवेली में पाथुरिया घाटा रंगमंच स्थापित किया। २५ साल तक यह रंगमंच उनके भारतीय तथा यूरोपियन मित्रों का मनोरंजन करता रहा। यतीन्द्र मोहन ने १८५८ में 'विद्या सुंदर' के अश्लील अंशों को निकाल कर एक संस्करण प्रकाशित किया था। १८६५ में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। कुछ अंश निकालने के अतिरिक्त कुछ अंश जोड़े भी गये थे। ६ जनवरी १८६६ को 'विद्यासुंदर' का अभिनय हुआ। आगे भी कई बार इसका अभिनय किया गया। कहा जाता है कि उन्हीं अभिनयों के एक मौके पर रीवा के राजासाहब उपस्थित थे और वह अभिनय से इतने खुश हुए कि उन्होंने काश्मीरी शालों का एक गट्ठा मंगाकर अभिनेताओं में बांटना चाहा, पर उन्हें

बताया गया कि ये अभिनेता शौकिया अभिनय करनेवाले है, अतएव ये किसीसे कुछ लेते नही है। १३ जनवरी १८६६ के अग्रेजी पत्र 'वगाली' मे इस अभिनय की वडी लम्बी प्रशसा निकली।

वाद के प्रसिद्ध अभिनेता अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी इन अभिनयो से वहुत प्रभावित हुए और उसका शिक्षारभ यही से हुआ।

अगला प्रहसन 'वूझले कि ना' (समझे कि नही) का अभिनय १५ दिसवर १८६६ को हुआ। १८६९ मे प० रामनारायण तर्करत्न द्वारा अनूदित 'मालती माधव' तथा १८७० मे यतीन्द्र मोहन लिखित 'उभय सकट' ओर 'चक्षुदान' का अभिनय हुआ। इन नाटको मे से प्रथम मे वहु-विवाह के विरुद्ध लिखा गया था। 'रुक्मिणी-हरण' नाम से एक नाटक भी खेला गया।

लार्ड मेयो की हत्या के कारण यह रगमच वद कर दिया गया, पर १८७३ की २० फरवरी को फिर यह खुला और उस अवसर पर लार्ड नाथव्रुक आदि कई वडे अग्रेज़ अधिकारी आये। 'उभय सकट' खेला गया।

इसके वाद १८८१ मे राजा सौरेन्द्र मोहन ठाकुर द्वारा लिखित 'रसाविष्कार वृन्दक' प्रस्तुत किया गया। इसमे विभिन्न रसो का समावेश करने के लिए कई अलग-अलग भाग थे। यह पाथुरिया घाटा मे खेला गया। इस रगमच को अच्छे-से-अच्छे सगीतज्ञ का सहयोग प्राप्त हुआ तथा सगीत मे कई नये प्रयोग किये गए। इसमे कोई सदेह नही कि पाथुरिया घाटा रगालय मुख्यत एक व्यक्ति का होने पर भी राष्ट्रीय सस्था के रूप मे हो गया।

वगला के रगमच के विकास मे महर्षि देवेन्द्रनाथ तथा उनके परिवार का दान वहुत ही महान है। सच तो यह है कि कला तथा साहित्य के क्षेत्र मे ठाकुर-परिवार का दान वहुत ही अधिक रहा। पहले ही इसका कुछ उल्लेख आ चुका है। द्वारकानाथ के पुत्र गिरीन्द्रनाथ ने 'वावू विलासी' नाम से एक नाटक की रचना की थी। इसी प्रकार उनके दूसरे पुत्र नगेन्द्रनाथ ने एक रगालय खोलने की चेष्टा की थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वात तो यहा छोड दी जाती है, पर ज्योतिरिन्द्रनाथ भी अच्छे नाटककार थे और उनके लिखे हुए नाटक 'पुरुविक्रम', 'अश्रुमती' और 'सरोजिनी' बार-वार खेले गए और वहुत सफल रहे।

ठाकुर-परिवार ने जोडासाको रगालय स्थापित किया। इसमे ठाकुर-परिवार के कई लोगो के अलावा अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी भी अभिनय करते थे। यहा खेलने

के लिए बहु-विवाह के विरुद्ध एक नाटक प्रस्तुत करने के लिए विज्ञापन दिया गया, जिसमे कहा गया कि चुने जाने पर नाटककार को २०० रुपये पुरस्कार दिये जायगे। यह पुरस्कार 'नवनाटक' लिखने पर रामनारायण को मिला। यह १८६५ के लगभग की बात है। 'नवनाटक' के बाद 'मनोमयी', 'अलीक बाबू', 'हिंदू महिला' आदि नाटक सामने आये। १८८१ के २६ फरवरी को रवीन्द्रनाथ का नाटक 'वाल्मीकि प्रतिभा' खेला गया।

ऊपर जिन नाट्यशालाओ की बात लिखी गई, उनके अतिरिक्त शोभा बाज़ार मे भी एक नाटक समाज था, जिसने कई नाटक खेले। बाद को बहु बाजार रगालय की स्थापना हुई। इसमे सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार मनमोहन बसु सामने आये। इनका पहला नाटक 'रामाभिषेक' १८६८ के आरभ मे खेला गया। इसके बाद उन्होने 'सती' नाटक लिखा, जो १८७२ मे खेला गया। फिर १८७४ मे उन्हीका 'हरिश्चन्द्र' और बाद को कन्हाईलाल का 'जानकी हरण' नाटक भी जनप्रिय हुआ। स्मरण रहे कि नये लोगो के इन नाटको के साथ-साथ पुराने नाटको का अभिनय भी जारी था।

बगला नाटको के क्षेत्र मे **गिरिशचन्द्र घोष** एक महान विभूति हो गये है। १८६७ मे उनकी उम्र २२ या २३ के लगभग थी। जिन नाट्यगृहो या रगालयो की बात कही गई, उनमे साधारण लोगो का प्रवेश सभव नही था। इसी से जोश मे आकर गिरिश घोष ने नया नाट्यगृह खोलने का प्रण किया। वह उन दिनो एक क्लर्क थे। पहले उन्होने माइकेल मधुसूदन रचित 'शर्मिष्ठा' को जात्रा के रूप मे दिखलाया। इसके लिए उन्होने कुछ नये गीत लिखवाने चाहे, पर जिन महाशय को यह काम सौंपा गया था, वह पहले तो राजी हो गये, पर बाद मे समय पर गीत न दे सके, तब गिरिशबाबू ने मजबूरी से स्वय गीतो की रचना की। ये गीत सफल रहे। इस प्रकार वह अपनी रचना-शक्ति से भी परिचित हो गये। धीरे-धीरे इसी से बाग बाजार शौकिया नाट्यशाला का जन्म हुआ। गिरिशचन्द्र दूसरे के नाटको मे कुछ गाने अवश्य जोड देते थे।

धीरे-धीरे इस नाट्यशाला की इतनी ख्याति हुई कि गिरिशचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हो गये। अवश्य ही गिरिशचन्द्र को कई अन्य गुणी लोगो का सहयोग प्राप्त हुआ था, जिनमे दीनबन्धु सबसे प्रमुख है। बाद को गिरिशचन्द्र और दीनबन्धु बगला के सार्वजनिक रगमच के पिता माने गये। अर्द्धेन्दु को भी यही से चमकने

का मौका मिला। 'सधवार एकादशी' (सधवा की एकादशी), 'विये पगला बूडो' (व्याह के लिए पागल बुड्ढा) आदि कई नाटक इसमे खेले गये। इन्ही दिनो एक अग्रेज नाविक भी आ गया, जिसके सबध मे मालूम हुआ कि वह पेन्टरो का रग बनाने मे निपुण है। बस उसे काम पर लगा लिया गया और नई नाट्यशाला का काम धूमधाम से चलने लगा। इस नाट्यशाला का नाम राष्ट्रीय नाट्यशाला रक्खा गया। इधर-उधर से और भी गुणी लोग जुटने लगे।

'लीलावती' नामक एक नाटक खेला गया, जिसकी बडी प्रशसा की गई। यह १८७१ की बात है। यह विवाद चलने लगा कि नाटक देखनेवालो से पैसा लिया जाय या नही। गिरिशचद्र इसके विरुद्ध थे। यह मामला कुछ दिनो तक विचाराधीन रहा। कहते है, इस विषय पर इतना वडा मतभेद हुआ कि गिरिश-वावू उस समय इस कार्य से ही अलग हो गये।

१८७३ मे शिशिरकुमार घोष का एक नाटक भी खेला गया। अभी तक नाटको पर सस्कृत का प्रभाव बुरी तरह छाया हुआ था, पर उससे बचने का कोई रास्ता भी नही निकला था। अवश्य माइकेल के नाटको मे इसका व्यतिरेक था। यद्यपि गिरिशचद्र मतभेद के कारण अलग हो गये थे, पर माइकेल मधुसूदन का 'कृष्ण कुमारी' जब खेला जाने लगा तो उन्हे बुलाया गया और वे भीमसिंह का पार्ट लेने पर तैयार हो गये। इस समय कई प्रसिद्ध अभिनेताओ मे न केवल आपस मे अनबन ही रहती थी, बल्कि कई बार एक-दूसरे के खिलाफ यह भी अभियोग लगाया जाता रहा कि पैसे का ठीक हिसाब नही हो रहा है। इससे नाटक-समाज के कई टुकडे होते रहे, फिर जब बट जाने के कारण वह असफल होने लगे, तब वे फिर मिलने लगे।

बगाल थियेटर नामक नाट्य-समाज को ही यह श्रेय दिया जाता है कि उसने फिर एक बार नाटक की पात्रियो के स्थान पर स्त्रियो का प्रचलन किया, पर उन दिनो इसका बडा विरोध हुआ। अखबारो ने इसकी काफी निन्दा की। यह स्मरण रहे कि माइकेल मधुसूदन के परामर्श से ही अभिनय के लिए स्त्रियों को स्थान दिया गया था।

पैसे लेकर नाटक दिखाना पहले-पहल विशेष सफल नही रहा, पर जब 'इश् महन्तेर एकी काज' (छि महन्त की यह क्या करतूत) खेला गया तबसे नाट्यशाला के सारे आसन भरने लगे। कहा जाता है, इस नाटक का बहुत सफल

अभिनय हुआ। इसके बाद 'कादम्बरी', 'एराई आबार बागाली' (यही लोग बगाली है), 'अजमेर कुमारी', 'बगेर पराजय', 'सती कि कलकिनी' (सती या कलकिनी), 'कपालकुडला', 'बग-विजेता' आदि नाटक खेले गए।

बगाल के रगमच के इतिहास मे १८७३ के ३१ दिसम्बर को बीडन स्ट्रीट मे ग्रेट नेशनल थियेटर का खुलना एक बडी बात है। इसमे 'नील दर्पण' आदि पुराने नाटको के साथ-साथ नये नाटक भी खेले जाने लगे। १८७४ की १४ फरवरी को 'मृणालिनी' नाटक खेला गया, जिसमे गिरिश घोष ने पशुपति के रूप मे ऐसा सुन्दर अभिनय किया कि उनकी प्रतिभा का लोहा सब लोग मान गये। गिरिश ने मूल नाटक मे कुछ नये अश जोड दिये थे, जिससे नाटक आकर्षक हो गया था। इस समय साथ-साथ दो बडी नाट्यशालाए काम कर रही थी। एक पूर्वोल्लिखित बगाल थियेटर और दूसरी ग्रेट नेशनल। ग्रेट नेशनल मे गिरिश आदि होने पर भी बगाल थियेटर मे स्त्रियो का पार्ट स्त्रियो के द्वारा कराये जाने के कारण वह इसके मुकाबले मे अधिक सफल हो रहा था, यहातक कि वही 'मृणालिनी' नाटक, जिसमे गिरिश ने इतना कलापूर्ण काम किया था, जब बगाल थियेटर द्वारा खेला गया तो वह कही अधिक सफल हुआ।

इससे ग्रेट नेशनलवाले मजबूर हुए और उन्होने 'सती या कलकिनी' नाटक मे एक साथ ६ अभिनेत्रिया पेश कर दी। इसपर गिरिश फिर एक बार नाराज हुए और कुछ दिनो के लिए रगमग से अलग हो गये। बाद को कुछ अच्छे लोग ग्रेट नेशनल छोडकर बगाल थियेटर मे चले गये, इसका कारण था मालिक के साथ आर्थिक खटपट।

बाहर कुछ लोग नाटक-कम्पनियो के विरुद्ध बहुत जोर से आन्दोलन करने लगे। उनका कहना यह था कि इनको केन्द्र बनाकर व्यभिचार-लीला चलती है। सरकार ने इसका पूरा फायदा उठाया और रगमच का गला घोटने के लिए इस परिस्थिति का स्वागत किया। ग्रेट नेशनल थियेटर धर्मदासबाबू को मैनेजर बनाकर उत्तर भारत का दौरा कर रहा था। जब लखनऊ मे अभिनय हो रहा था और दृश्य वह था, जिसमे मि० रोग क्षेत्रमणि पर हमला कर रहे थे, वह लडकी दुहाई मागकर कह रही थी कि साहबजी, आप हमारे पिता है, तब मि० रोग उसे यह कहकर घसीटने लगे कि मैं तुम्हारा बाप नही, मै तुम्हारे लडके का बाप होना चाहता हू, इतने मे दूसरे लोग आ गये और उन्होने क्षेत्रमणि

को वचा लिया। क्षेत्रमणि अपने एक उद्धारक के साथ चली गई और एक दूसरे उद्धारक मि० रोग को घूसा और लात जमाने लगे।

इसपर उपस्थित गोरे दर्शक वहुत उत्तेजित हो गये और उनमे से कुछ लोग उस उद्धारक पर, जो असल मे मतिलाल सूर थे, टूट पडे। वडी कठिनाई से शान्ति स्थापित हुई। जिला मजिस्ट्रेट ने फौरन खेल वन्द कर दिया और पुलिस की सहायता से कम्पनी के लोगो को स्टेशन भिजवाकर कलकत्ता रवाना कर दिया गया।

श्री हेमेद्रनाथ दास गुप्त के अनुसार नाटक मे अवश्य ही नील के साहवो का जुर्म दिखाया गया था, पर इसका कोई राजनैतिक उद्देश्य नही था। फिर भी शासको को इस प्रकार के नाटक अखर रहे थे। वाद को जो 'भारत मातार विलाप' नाटक खेला गया, वह कुछ राजनैतिक था। जिस समय इस नाटक का वह अश अभिनीत होता था, जिसमे सत्येद्रनाथ ठाकुर का यह गीत गाया जाता था 'मलिन मुख चद्रमा भारत तोमारि', उस समय लोग आसू नही रोक पाते थे। यह नाटक 'अमृत वाजार पत्रिका' मे प्रकाशित हुआ था। (पहले यह पत्र वगला मे था) १८७५ मे 'पुरु विक्रम' और 'भारते यवन' खेले गये थे। इनमे भी राष्ट्रीय भावनाओ का पुट था। इसके वाद 'हीरक चूर्ण', 'सुरेद्र विनोदिनी' आदि अन्य कई इसी प्रकार के नाटक खेले गये। इन नाटको से किसी-न-किसी रूप मे देशभक्ति का प्रचार था। सरकार का ध्यान इस ओर गया और वाइसराय की व्यवस्थापिका परिषद् मे मि० हावहाउस ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि नाटक वहुत खतरनाक वस्तु है और नाटककार के लिए अपने दर्शक के मन पर किसी भी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना वाये हाथ का खेल है।

इन्ही दिनो प्रिस ऑव वेल्स (वाद मे सप्तम एडवर्ड) भारत आये। वह कलकत्ते के एक प्रसिद्ध वकील जगदानन्द मुखर्जी के घर पर पधार और अत-पुर की ओर से उन्हे वहुमूल्य अलकार और कपडे भेट किये गए। वहा राजकुमार का वगाली ढग से उलूध्वनि करके स्वागत भी हुआ था। राजकुमार श्रीमती मुखर्जी तथा उनकी सहेलियो के आभूषणो आदि को देखकर इतने चकित हो गये कि जाते समय जगदानदवावू से यह कह गये कि मैं आपके मकान मे और अपने विडसर प्रासाद मे कोई फर्क नही देखता।

वात छोटी-सी थी, पर लोगो मे राजद्रोह की भावनाए उत्पन्न हो रही थी

और उन्होने राजकुमार को किसीके अत पुर मे जाने की अनुमति देना पसद नही किया। सैकडो गाने इसके विरोध मे बन गये और ग्रेट नेशनल थियेटर मे 'सरोजिनी' के साथ-साथ 'गजानन्द' प्रहसन भी खेला गया, जिसमे मुखर्जीसाहब की हँसी उडाई गई। इसपर बगाल सरकार बहुत नाराज़ हुई और इस प्रहसन की पुनरावृत्ति के निषिद्ध हो गई। पर नाम बदल-बदलकर यह प्रहसन चलता रहा।

जगदानन्दबाबू की हालत इतनी बिगड गई कि उन्हे पुलिस का सरक्षण देना पडा। बगाल सरकार के कहने पर वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक ने नाटको को रोकने के सबध मे एक आर्डिनेस जारी कर दिया। 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इस कानून के विरुद्ध आवाज उठाई। तभी मि० हावहाउस को व्यवस्थापिका परिषद् के सामने कानून की माग करते हुए भाषण देना पडा। मि० हावहाउस ने दक्षिणा चटर्जी लिखित 'चाकर-दर्पण' नामक चायबगान पर लिखित नाटक का भी हवाला दिया। यह नाटक तो अभी खेला नही गया था, केवल प्रकाशित हुआ था। इस नाटक मे भी अग्रेजो के अत्याचार तथा मनमाने ढग का विवरण रोचक रूप मे दिया गया था।

बाद को उपेन्द्रबाबू लिखित 'सुरेन्द्र विनोदनी' नामक नाटक पर भी शासक-वर्ग की ओर से बडा कोहराम मचाया गया। यद्यपि यह नाटक कई जगह और भी खेला जा चुका था, पर जब ग्रेट नेशनल मे १८७६ के १ मार्च को इसका अभिनय हुआ, तब इसपर आर्डिनेस के अनुसार निषेधाज्ञा जारी कर दी गई। इस नाटक मे एक जगह मजिस्ट्रेट मैकक्रिम्बल कहता था, 'मैं न तो शेर हू न भालू।' सुप्रसिद्ध नाट्यकार और अभिनेता श्री अमृतलाल वसु मैकक्रिम्बल का पार्ट खेलते हुए इतना बोलकर यह भी बोल गये कि मैं न तो सूअर हू न भेड। पर निषेधाज्ञा देते समय इस नाटक पर अश्लील होने का अभियोग लगाया गया। इस नाटक मे एक और दृश्य आता था, जिसमे मैकक्रिम्बल ब्रजमोहिनी पर हमला कर देता था और उसे अपनी बाहो मे बाधकर कुछ कहता था।

कई व्यक्तियो पर, जिनमे उपेद्रबाबू और अमृतलाल वसु भी थे, गिरफ्तारी का परवाना जारी किया गया और ४ मार्च को जब 'सती या कलँकिनी' का अभिनय चल रहा था, उस समय ये लोग गिरफ्तार कर लिये गए। अभिनेत्रिया यह देखकर रोने लगी और खेल बीच ही मे खतम हो गया।

जब इस गिरफ्तारी की बात कलकत्ते मे फैल गई तो लोग वहुत नाराज हुए और वडे-वडे अच्छे लोगो ने अदालत मे जाकर यह गवाही दी कि पुस्तक हर्गिज अश्लील नही है। रेवरेड डा० बनर्जी ने तो यह लिख दिया कि पुस्तक सर वाल्टर स्काट की पुस्तको से अधिक अश्लील नही है, बल्कि उन्होने यह भी कहा कि मैकक्रिम्वल और ब्रजमोहिनीवाला दृश्य नाइट टेम्पलर और यहूदी लडकी के बीच होनेवाले दृश्य का ही बगाली सस्करण है। पर यह सब होते हुए भी उपेद्रवाबू और अमृतलाल को ८ मार्च को १ मास की सादी कैद की सजा दे दी गई। दडितो ने बडे धैर्य के साथ सजा सुनी। इसके वाद अपील दायर की गई। अपील के खर्च के लिए ११ मार्च को 'सरोजिनी' नाटक का अभिनय किया गया। बडे जोरो से अपील लडी गई। २० मार्च को जस्टिस फियर और मार्कबी ने अपील का फैसला सुनाते हुए दोनो दडितो को रिहा कर दिया। केवल यही नही, जस्टिस फियर ने यह भी लिख दिया कि मजिस्ट्रेट के हाथो मे इस प्रकार पूरी शक्ति दे देना व्यवस्थापिका सभा के लिए उचित नही है।

यहा यह बता दिया जाय कि ३० मार्च को जस्टिस फियर भारत से भेजे गये और फिर कभी नही लौटे। इसपर यह खबर उडी कि लार्ड नार्थब्रुक ने उनका वोरा-विस्तर बधवा दिया। जो कुछ भी हो, सरकार नाटको के अभिनय-नियत्रण का बिल बना रही थी और उसका काम जारी रहा और वह बिल पास हो गया। इसके अनुसार मजिस्ट्रेट को यह अधिकार हो गया कि यदि सरकार के मतानुसार कोई नाटक मानहानिकर, कुत्साजनक, सरकार के विरुद्ध असन्तोष पैदा करनेवाला या किसी व्यक्ति या समूह के हृदय को चोट पहुचानेवाला हो तो उसे जिस भी तरह हो, रोक दे और उसके लिए एकत्रित लोगो को हिरासत मे ले ले। इस प्रकार यह कानून हाईकोर्ट के भी अधिकार छीन लेता था और करीब-करीब सारा निर्णय अब सरकारी अफसरो के ही हाथो मे छोड दिया गया था। यहा यह बता देना जरूरी है कि इसीके साथ-साथ वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट भी लागू हो गया। श्री दास गुप्त का कहना है कि इस कानून के कारण रगमच को बडा नुकसान पहुचा, पर ऐसे समय परम प्रतिभाशाली गिरिशचन्द्र पहले के अभिनेता के अलावा नाटककार के रूप मे सामने आये और उन्होने बगला-रगमच को बचा लिया।

'सुरेद्र विनोदिनी' मुकदमे के बाद उपेन्द्रनाथ दास इगलैंड चले गये, अभि-

नेत्री सुकुमारी दत्त रगमच से अलग हो गई। हा, अर्द्धेन्दु शेखर अपनी नाटक कम्पनी लेकर इधर-से-उधर फिरने लगे। गिरिशबाबू ने 'आगमनी' नाम से एक नाटक लिखा और वह १८७७ के ६ अक्तूबर को खेला गया। इसके बाद उन्होने 'मेघनाद वध' का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया और वह १८७७ के १ दिसम्बर को खेला गया। स्वय गिरिश ने मेघनाद और राम का पार्ट खेला। कहा जाता है कि इनका अभिनय बहुत अच्छा रहा। इसके बाद नवीनचद्र सेन का 'पलासी का युद्ध' नाटक रूप मे प्रस्तुत हुआ और वह भी खेला गया। फिर गिरिश ने बकिम के विष वृक्ष' का नाटक रूप प्रस्तुत किया। हेम का 'वृत्र सहार' भी रगमच पर आया। लोग नाटक-कम्पनिया बनाकर इधर-उधर ढाका तक का चक्कर भी लगाने लगे।

उधर ग्रेट नेशनल थियेटर के मालिक पर मुकदमा चला और वह २५ हजार रुपये मे नीलाम होकर एक मारवाडी सज्जन प्रताप जौहरी की सम्पत्ति बन गया। उसने गिरिश को मैनेजर बनाना चाहा और उन्हे १०० रुपया मासिक देना चाहा, पर गिरिश उन दिनो एक अग्रेज कम्पनी मे १५० रुपये मासिक पा रहे थे, इसलिए निर्णय कुछ कठिन था, पर गिरिश ने कला के कारण जौहरी की नौकरी स्वीकार कर ली और १८८१ की १ जनवरी को सुरेद्र मजुमदार लिखित 'हमीर' नाटक से उस नाट्यशाला का उद्घाटन हुआ। गिरिशचन्द्र हमीर बने। इसके बाद गिरिशचद्र ने एक नाटक लिखा, जो २२ जनवरी १८८१ को खेला गया। इसी प्रकार एक के बाद एक गिरिश की कलम से नाटक निकलते रहे। इनमे से कुछ अनुवाद थे, कुछ भावानुवाद और कुछ मौलिक। गिरिश ने देखा कि सामाजिक नाटक कम चलते है, इसलिए 'रावण वध', 'सीता का वनवास', 'अभिमन्यु वध', 'लक्ष्मण वर्जन, आदि पौराणिक नाटक चलाये। 'रावण-वध', से लेकर 'तपोबल' (१९१२) तक गिरिश ने ७२ नाटक प्रस्तुत किये। गिरिश ने नाटक के लिए पहले कविता को अपनाया था, क्योकि वही उस युग का माध्यम था। पर उन्होने मधुसूदन के मुकाबले मे कविता का सरलीकरण किया, यहातक कि उनकी कविता को लोग गैरिशी छन्द कहने लगे। पर उसी कविता के कारण नाटक का विकास अच्छी तरह हो सका। रवीन्द्रनाथ के बडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ने गिरिशचद्र की कविता की बडी प्रशसा की। लोगो ने कहा कि अन्त मे जाकर हमे नाटक का उपयुक्त वाहन मिल गया। केवल यही नही, गिरिश ने

दृश्यो मे भी बहुत नयापन ला दिया, यहातक कि सीता की अग्नि-परीक्षा के समय ऐसा मालूम होता था कि मच पर दो हजार की भीड है। गिरिश ने देखा कि प्रताप जौहरी के साथ एक हद तक ही काम किया जा सकता है, क्योकि वह हर वक्त मुनाफे की बात पहले सोचता था। कई दिन गैरहाजिरी के लिए जौहरी ने प्रसिद्ध अभिनेत्री विनोदिनी की तनख्वाह काट ली। इन्ही कारणो से गिरिश उससे अलग हो गये और स्टार रगमच की स्थापना हुई। इनके अलावा स्टार रगमच की स्थापना मे कई और कारण भी हुए।

विनोदिनी नाम की अभिनेत्री का गुरुमुख राय नाम से एक प्रेमी निकल आया, जो यह चाहता था कि विनोदिनी के नाम पर एक नाट्य-शाला स्थापित करे। बताया गया है कि यह व्यक्ति सिख था। उधर एक जमीदार, जिसके सरक्षण मे विनोदिनी उन दिनो थी, यह चाहता था कि विनोदिनी अभिनेत्री न रहे, पर जमीदार घर चला गया और उसकी शादी हो गई, इसपर गिरिश ने गुरुमुख राय को आगे लाना चाहा। पर जमीदार इस बीच मे लौट आया और वह विनोदिनी को छोडने पर राजी नही हुआ। इसपर विनोदिनी को गायब कर दिया गया। इसी दरम्यान नाट्यशाला के लिए इमारत आदि लेने का क्रम चलता रहा, पर बीच मे गुरुमुख राय यह कह उठा कि वह विनोदिनी को पाच हज़ार रुपया देने को तैयार है, बशर्ते कि वह अभिनय का काम छोडकर उसके साथ रहना स्वीकार करे। विनोदिनी, जिसे भद्र समाज कहते हैं, उसकी सदस्या नही थी, फिर भी उसने इस मौके पर यही कहा कि मुझे यदि राज्य भी मिले तो भी मैं अभिनय का काम नही छोडूगी। जब गुरुमुख ने यह बात देखी तो उसने मजबूरी से इमारत बनवाने का काम जारी रक्खा। इसपर दास गुप्त ने ठीक ही लिखा है कि दुनिया मे कैसी-कैसी अजीब बाते होती है कि इसी नाट्यशाला के कारण बगला रगमच का नैतिक स्तर बहुत ऊचा उठ गया, पर उसका आरम्भ कैसे हुआ ?

१८८३ के २१ जुलाई को स्टार रगमच 'दक्ष यज्ञ' नाटक से शुरू हुआ। स्वय गिरिश ने दक्ष का पार्ट अदा किया। कहते हैं, उन दिनो गिरिश नास्तिक थे, पर बाद मे उन्हे काली का दर्शन हुआ, इस कारण वह नाट्यशाला से बहुत दिनो तक दूर रहे, पर कला उन्हे बीच-बीच मे खीच लाती रही। अबतक उनकी ख्याति मुख्यत. अभिनेता के रूप मे थी, पर अब लोग उन्हे नाटककार के रूप मे

अधिक सराहने लगे ।।गिरिश की नाटककार के रूप मे सफलता का कारण ही यही है कि वह पहले अभिनेता, फिर नाटककार बने । अवश्य अभिनेता के रूप मे भी वह बराबर सजनात्मक शक्ति का परिचय देते थे और कई बार वह मूल नाटको को बदल दिया करते थे ।

गिरिशचन्द्र ने मुख्यत पौराणिक विषयो के नाटक से ही आरम्भ किया । उनके नाटक इसलिए बहुत सफल होने थे कि इन दिनो वह पहले के अनीश्वर-वादी से बहुत बडे भक्त बन गये थे । नाटक इतने सफल होते थे कि दर्शको मे बहुत-से विशेपकर स्त्रिया फफक-फफककर रोने लगती थी। इसका असर अभिनेताओ तथा अभिनेत्रियो पर भी होता था और अभिनेता और दर्शक मानो मिलकर एक इकाई हो जाते थे। 'चैतन्य लीला' नाटक मे विनोदिनी चैतन्य का पार्ट खेलती थी। सौभाग्य से विनोदिनी अपनी पूरी आत्मकथा लिख गई है और इस नाटक के खेले जाते समय दर्शको पर क्या-क्या असर पडते थे और स्वय उसपर क्या असर होता था, यह मालूम हो सकता है । पर यहा उसके व्यौरे मे जाने का अवसर नही है ।

कुछ धर्मध्वजी तथा नीति का ढिढोरा पीटनेवाले लोग अब भी रगमच के विरुद्ध लिखते जा रहे थे, पर 'चैतन्य लीला' देखकर 'रईस एन्ड रैय्यत' के सम्पादक श्री शम्भुचन्द्र मुखर्जी ने नाटको की नैतिक शक्ति के विषय मे चुनौती देते हुए लोगो से कहा कि एक बार कोई आकर नाटक देखे और फिर हमसे बहस करे ।

इसपर कार्नेल आल्कट नामक एक सज्जन ने नाटक देखा और वह यह मानने के लिए बाध्य हुए कि उनपर भी उसका बडा असर हुआ । इतना ही नही, उन्होने कहा कि अभिनेत्री ने चैतन्य के हाव-भाव को इस सुदर और निष्कलुप रूप से चित्रित किया कि वह आश्चर्यजनक था । कार्नेल आल्कट ने लिखा कि जब विनोदिनी चैतन्य का पार्ट अदा करने हुए मूर्च्छित हो गई तो वह सचमुच मूर्च्छित हो गई और उसे डाक्टरी सहायता देनी पडी ।

स्मरण रहे कि यह कार्नेल आल्कट वही थे जो बाद को थियोसाफी के सस्थापक के रूप मे जगत्-प्रसिद्ध हुए। 'चैतन्य लीला' से गिरिश की ख्याति बहुत बढी । नवद्वीप के प्रसिद्ध पडित मथुरानाथ पडरत्न, यहातक कि रामकृष्ण परमहस भी, इसे देखने आये। जब लोगो ने रामकृष्ण से पूछा कि आपने इसे

कैसा पाया तो वह बोले—'आशल नकल एक देखाल ?' याने असल और नकल मे कोई फर्क नही देखा। जब विनोदिनी ने आकर उनके पैर छुए तो परमहस बोले, "तुम्हे चैतन्य प्राप्त हो।" और वह हरि-हरि कहकर नाचने लगे। इसी प्रकार कहते है, योगी विजयकृष्ण गोस्वामी भी इस नाटक को देखकर नाचने लगे। इस नाटक के बाद गाव मे सकीर्तन पार्टिया बन गई और वैष्णव धर्म का एक तरह से पुनरुत्थान हुआ। इन्ही दिनो बकिमचन्द्र तथा अन्य कई सत और विद्वान धार्मिक पुनरुत्थान का प्रचार कर रहे थे। 'चैतन्य लीला' ने इस आदोलन मे बहुत जोर से हाथ बटाया।

इस नाटक के बाद 'प्रह्लाद चरित्र' नाटक लिखा गया, पर विनोदिनी के प्रह्लाद रूप मे काम करने पर भी नाटक बहुत सफल नही हुआ। हा, इसके साथ जो अमृतलाल बसु का 'विवाह विभ्राट' प्रहसन खेला जाता था, वह बहुत सफल रहा। १८८५ मे 'निमाई सन्यास' या 'चैतन्य लीला' का दूसरा भाग खेला गया और विनोदिनी ने निमाई का भाग लिया। यह नाटक भी सफल हुआ। इसके बाद १८८५ के ३० मई को 'प्रभास यज्ञ' और १९ सितबर को 'बुद्धदेव' खेले गये, जो बहुत सफल रहे। 'बुद्धदेव' नाटक के बाद 'विल्व मगल' खेला गया। इस नाटक के बारे मे स्वामी विवेकानन्द ने यह कहा था कि मैंने इस नाटक को पचास बार पढा है और हर बार मुझे नई ही रोशनी प्राप्त हुई। भगिनी निवेदिता इस नाटक से इतनी प्रभावित हुई थी कि उन्होने उसके एक भाग का अग्रेजी मे अनुवाद किया था। यह धार्मिक भावो से ओत-प्रोत था। इसके बाद 'रूप सनातन' नाटक खेला गया और वह भी बहुत सफल रहा। इस प्रकार से स्टार रगमच बहुत सफल रहा।

प्रसिद्ध रईस मोतीलाल सील के उत्तराधिकारी गोपाललाल सील को यह खब्त सवार हुआ कि वह नाटक कम्पनी का मालिक बने। उसने किसी प्रकार स्टार रगमच को खरीद लिया और अपनी ही न्यारी कम्पनी बनानी चाही। इस झगडे के कारण स्टार कम्पनी अपना अतिम अभिनय करने के बाद ढाका आदि शहरो मे पहुची, जिससे कुछ पैसा इकट्ठा हो। उधर गोपाल सील अपने रग-मच को सफल बनाने के लिए जी-तोड कोशिश कर रहा था, पर उसे सफलता नही मिल रही थी। तब उसने गिरिश की शरण ली और साथ ही उन्हे यह धमकी भी दी कि यदि तुम मेरे यहा नौकरी स्वीकार न करोगे तो मै अधिक-से-अधिक

वेतन देकर उनकी कम्पनी के कलाकारो को भगवा लूगा। ऐसा मालूम होता है कि गिरिश ने एक हद तक इसे मान लिया और पहले के कई नाटक खेलने के वाद १८८८ के १७ मार्च को 'पूर्णचन्द्र' नामक नाटक खेला गया। यह पूरन भगत पर केन्द्रित था। इसके वाद भक्तमाल की कहानी के आधार पर 'विषाद' नाटक खेला गया। इसके वाद ही लेखक की पत्नी का २५ दिसम्बर १८८८ को देहान्त हुआ। इसके उपरान्त १८८९ के २७ अप्रैल को गिरिश का 'प्रफुल्ल' नामक सामाजिक नाटक खेला गया, जिसमे वार-वार यह शब्द आता है—मेरा सजा-सजाया वाग सूख गया।'

कहना चाहिए कि 'प्रफुल्ल' नाटक से वगला नाटको का स्तर बहुत ऊचा उठ गया। 'स्टेट्समैन' पत्र ने तीन अको मे इसकी उच्छ्वसित प्रशसा की। इसके वाद 'हारानिधि', 'मलिना विकास' आदि वहुत-से नाटक वरावर खेले जाते रहे। गिरिश ने 'मैकवेथ' का भी अनुवाद किया और उसे खेला, जिसकी अग्रेजी पत्रो ने भी वहुत प्रशसा की। इस प्रकार गिरिश एक सफलता के वाद दूसरी सफलता प्राप्त करते गए और १८९३ के २५ मार्च को 'आवू हुसेन' नामक जो नाटक खेला गया, वह वहुत अधिक सफल हुआ। गिरिशचन्द्र का 'जना' नामक नाटक १८९३ के २३ दिसम्वर को खेला गया और यह भी खूव चला। हमे अव इन व्यौरो मे अधिक जाने की आवश्यकता नही है। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि नाटक के क्षेत्र मे गिरिश घोष की सेवाए वहुत ही महान् थी और उन्ही-के कारण वगला नाटक आधुनिक वनने के साथ ही अपने पैरो पर खडा हो गया। पर गिरिश अकेले नही थे। उनके साथ कई प्रतिभावान नाटककार भी सम-सामयिक क्षेत्र मे मौजूद थे।

गिरिश के ही युग मे रवीन्द्रनाथ का भी नाटककार के रूप मे उदय हुआ। उनके नाटको के सवध मे अन्यत्र पूरा विवरण दिया गया है। गिरिशचन्द्र और रवीन्द्र के नाटको की तुलना करने पर यह पता चलता है कि दोनो की प्रतिभाए किस प्रकार से भिन्न पर एक-दूसरे की पूरक थी। गिरिश का झुकाव धार्मिक नाटको मे पुनरुज्जीवनवाद की ओर था, पर रवीन्द्र के सामाजिक नाटक मुख्यत गतानुगतिकता-विरोधी थे। दोनो कवि थे, पर शुद्ध कविता रवीन्द्र मे कही अधिक मिलती है। दोना अच्छे अभिनेता थे, यह कहना मुश्किल है कि कौन वढकर था।

गिरिश के बाद जो अच्छे अभिनेता हुए हैं, उनमे दानीवावू और चुनीवावू वहुत अच्छे अभिनेता माने गये। गिरिश अभी वहुत दिनो तक और चले। किसी-न-किसी रूप मे गिरिश वरावर चलते रहे और १९०५ से लेकर १९११ के बीच मे उन्होने दस सामाजिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक नाटक लिखे। यह तो पहले ही बताया जा चुका हे कि वह नाटक लिखने के साथ-साथ अपने नाटको का अभिनय भी करते थे। समसामयिक अभिनेताओ म अमृतलाल वसु, चुनीलाल देव, दानीवावू, अमरेन्द्रनाथ दत्त, अर्द्धेन्दु शेखर वहुत मशहूर थे।

इन्ही दिनो दहेज-प्रथा के विरुद्ध लिखा हुआ नाटक 'वलिदान' गिरिश के यश मे चार चाद लगाने मे समर्थ हुआ। 'राणा प्रताप' नाटक भी सफल रहा। 'सिराजुद्दौला' भी गिरिश की ख्याति के अनुरूप निकला। कहते है, १९०६ मे लोकमान्य तिलक गिरिश का एक नाटक देखने आये थे। १९०७ के ९ जून को गिरिश अपने 'प्रफुल्ल' नाटक के योगेश के रूप मे रगमच पर सामने आये। बाद मे उनका 'छत्रपति शिवाजी' नाटक खेला गया और लोकनायक सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने उसकी वडी प्रशसा की।

सच कहा जाय तो इन दिनो देशभक्तिमूलक नाटको का बहुत प्रचलन हो रहा था। स्मरण रहे कि यह स्वदेशी आदोलन का युग था। जब भी राष्ट्रीय ढग से नाटक खेले जाते थे, वहुत भीड होती थी। इन बातो से घवडाकर ब्रिटिश सरकार ने 'सिराजुद्दौला', 'मीर कासिम' और 'छत्रपति शिवाजी' पर रोक लगा दी। बात यह है कि दस-बीस व्याख्यानो से जो नही होता था, वह एक नाटक खेलने से हो जाता था।

इन्ही दिनो बगला के रगमच पर श्री डी० एल राय अथवा द्विजेन्द्रलाल राय का उदय हुआ। मानो गिरिश का आसन जल्द ही रिक्त होनेवाला है, इसे देखकर एक दूसरा महान् नाटककार सामने आया। उनका 'मेवाड पतन' १९०८ के २६ सितम्बर को और 'शाहजहा' १९०९ के २९ अगस्त को खेला गया। इसमे का एक गाना—वग आमार जननी आमार, धात्री आमार आमार देश—सारे बगाल मे गूज गया।

गिरिश दमा से पीडित थे, फिर भी वह अविचलित निष्ठा से अपने काम मे लगे रहे। १९१० की १५ जनवरी को उनका नाटक 'शकराचार्य' खेला गया। शकराचार्य के जीवन को लेकर इतना सुदर नाटक लिखा जा सकता है, यह देख-

कर लोग दातो तले उगली दबाकर रह गये। इसी बीच क्षीरोद प्रसाद के कुछ नाटक भी सामने आए। १६११ के २२ जुलाई को डी० एल० राय का नाटक 'चन्द्रगुप्त' खेला गया, इसमे गिरिश चन्द्रगुप्त के रूप मे सामने आनेवाले थे, पर स्वास्थ्य ने साथ नही दिया। इस नाटक मे चाणक्य के रूप मे दानीबाबू ने कमाल कर दिया। 'चन्द्रगुप्त' इतना प्रसिद्ध हुआ कि हरेक कालेज मे यह खेला गया। गिरिश अब मृत्यु-शैया पर थे, उन्हे यह देखकर खुशी हुई कि बगला के रगमच मे कई बहुत शक्तिशाली नाटककार और अभिनेता मौजूद है। उन्होने अतिम भेट के रूप मे 'तपोबल' नामक नाटक दिया, जो १६११ के १८ नवबर को खेला गया। बीमार होने के कारण अभिनेताओ को तालीम लेने के लिए गिरिश के घर पर आना पडता था। गिरिश अब चद दिनो के ही मेहमान थे। १६१२ की ६ फरवरी को जब उनका देहान्त हुआ तो वह अपने यश के उच्चतम शिखर पर थे।

सारे बगाल मे इसपर शोक छा गया और १० फरवरी को बगाल की सारी नाट्यशालाए बद रही। जगह-जगह शोक-सभाए हुईं। उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उनके कई नाटक खेले गए। यदि यह कहा जाय कि गिरिश ने बगाल के आधुनिक रगमच को जन्म दिया और उसे जन्म देकर सब तरह से पाला-पोसा तो कोई अत्युक्ति न होगी। आज बगाल मे जो रगमच मौजूद है, उसके लिए यदि किसी एक व्यक्ति को श्रेय दिया जाय तो वह गिरिश को ही प्राप्त होगा। उनकी मृत्यु के बाद उनका लिखा हुआ एक नया नाटक १६१२ के २१ सितम्बर को खेला गया।

सबसे बडे दुःख की बात है कि **द्विजेन्द्रलाल राय** बहुत दिनो तक जीवित नही रहे। यद्यपि थोडे से समय मे ही उन्होने बहुत-से नाटक लिख डाले और सब नाटक बहुत उच्च कोटि के रहे, फिर भी गिरिश की मृत्यु के तीन-चार साल के अदर ही उनका उठ जाना बहुत बडी हानि रही। अवश्य अभी रवीन्द्रनाथ ठाकुर मौजूद थे और वह समय-समय पर नाटक लिखकर बगला रगमच को देते गए, फिर भी इसमे सदेह नही कि डी० एल० राय की मृत्यु बगला-भाषा के लिए बहुत बडी हानि रही। इसके बाद बगला नाटककारो मे (यहा रवीन्द्रनाथ को छोड देते है) गिरिश और डी० एल० राय की तरह कोई ऐसा नाटककार पैदा नही हुआ, जिसने बहुत-से नाटक लिखे हो और जिसका प्रत्येक नाटक रग-

मच की दृष्टि से सफल रहा हो। इन्ही विभूतियो के साथ बगला नाटको मे दिग्गजो का युग समाप्त हो गया।

बाद के कुछ नाटको पर अब विचार करे। अपरेशबाबू की 'सुदृष्टि' १६१५ के ४ दिसम्बर को बहुत सफल रही। अपरेशबाबू ने और भी कई नाटक लिखे। वरदाप्रसन्न दास गुप्त का 'मिस्र कुमारी' एक सफल नाटक रहा। गुप्त का 'मनीषा' १६२० के ११ जनवरी को खेला गया और सफल रहा। मनमोहन राय, भूपेन्द्र बनर्जी, जलधर चटर्जी, शरद घोष आदि ने कई नाटक लिखे। शरत् चटर्जी के उपन्यासो के कुछ नाटकीय रूप भी प्रस्तुत हुए और सफलतापूर्वक खेले गए। अन्य नाटककारो मे शचीन सेन गुप्त, क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद आदि उल्लेखनीय है। जैसा कि पहले ही बताया गया, गिरिश, डी० एल० राय, यहातक कि अमृतलाल बसु के पाये के कोई बडे नाटककार बगला मे बाद को उत्पन्न नहीं हुए। हा, अभिनय के क्षेत्र मे अच्छे-से-अच्छे अभिनेताओ का ताता बराबर बना रहा। जब दानीबाबू आदि चल ही रहे थे, उन्ही दिनो शिशिरकुमार भादुडी का उदय हुआ और उन्होने पहले के सब अभिनेताओ को पीछे छोड दिया, ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

शिशिर भादुडी कलकत्ता के विद्यासागर कालेज के एक अध्यापक थे और १६२१ मे उन्होने पेशेवर रगमच मे प्रवेश किया।

अहीन्द्र चौधरी भी एक अन्य बहुत प्रतिभाशाली अभिनेता हो गये। यहा एक बात यह बता देनी चाहिए कि यद्यपि बहुत बडे नाटककार बाद के युग मे नही रहे, फिर भी बगला मे बराबर अच्छे-से-अच्छे उपन्यासकार उत्पन्न होते रहे और उन उपन्यासो का नाटक रूप प्रस्तुत करना बहुत बडी बात नही थी। इसी प्रक्रिया से स्वय रवीन्द्रनाथ ने अपने बहुत-से उपन्यासो का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया। शरतबाबू, अनुरूपा देवी (मन्त्र शक्ति, महानिशा आदि), निरुपमा देवी (दीदी), नजरुल (आलेया) आदि बहुत-सी पुस्तको के नाटकीय रूप प्रस्तुत होने से रगमच का काम चलता रहा।

बहुत हाल के कुछ शक्तिशाली नाटक ये है—रवीन्द्रनाथ मैत्र का मानमयी गर्ल्स स्कूल, ताराशकर का दुइ पुरुष (दो पुरखे)। ये दोनो नाटक विषय की नवीनता तथा तकनीक की दृष्टि से नये है। रवीन्द्रनाथ मैत्र कहानियो के क्षेत्र मे भी बहुत सफल रहे। इधर के नाटककारो मे प्रमथनाथ विशी बहुत सफल

रहे। उनका प्रहसन 'ऋण कृत्वा घृत पिवेत' और 'मौचाके ढिल' (छत्ते मे ईटा), 'सनी विला' नाटक बहुत लोकप्रिय हुए। इन्होने कई एकाकी भी लिखे, शॉ और रवीन्द्र का प्रभाव इनपर सर्वाधिक रहा। शचीन सेन का 'सिराजुद्दौला' मन्मथ राय का 'कारागार, विधायक भट्टाचार्य का पी० डब्लू० डी०, बुद्धदेव वसु का 'माया मालच' (अपने उपन्यास का नाटक रूप), प्रतिभा वसु का 'डालिया' (रवीन्द्र के उपन्यास का रूपान्तर), मनोज वसु का 'प्लावन', 'भुलि नाई' उल्लेखनीय हे। शैलजानन्द और प्रेमेन्द्र मित्र ने सिनेमा और रगमच के लिए अपने उपन्यासो के रूपान्तरण के अलावा कई नई चीजे लिखी। नीहाररजन गुप्त, नारायण गगोपाध्याय, नरेन्द्रनाथ मित्र ने इसी प्रकार कई नाटक प्रस्तुत किये है। १९४२ के युग मे कुछ साहित्यकारो ने फैसिवाद-विरोधी नाटक लिखे। इसी प्रकार १९४३ के दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि मे विजन भट्टाचार्य ने 'नवान्न' नाटक लिखा, जो सफल रहा। शायद साम्यवादियो की प्रतिक्रिया मे 'काग्रेस साहित्य सघ' की सृष्टि हुई और इसने नाटक के क्षेत्र मे काम किया। इनका 'अभ्युदय' नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ। शरदिन्दु वन्दोपाध्याय का 'वन्धु', 'विपेर धोया' (विष का धुआ), इसी प्रकार वनफूल का 'श्री मधुसूदन' तथा 'विद्यासागर' तथा तरुण राय के कई नाटक प्रसिद्ध हुए।

इस समय बगला नाटक और रगमच की परिस्थिति पिछले स्वर्ण युग को देखते कुछ अच्छी नही कही जा सकती। फिर भी फिलम की प्रतियोगिता के बावजूद बगला मे रगमच जीवित है, यही बडी बात है।

२०

शताब्दी के प्रारंभ की बंगला कविता

बगला साहित्य मे रवीन्द्रनाथ का युग अभी समाप्त होते हुए भी समाप्त नही हुआ है, इसलिए रवीन्द्रनाथ के विषय मे लिखने के बाद क्या लिखा जाय, यह विचारणीय है। इसमे सन्देह नही कि रवीन्द्रनाथ के समसामयिको मे कुछ कवि ऐसे हुए हैं, जिनको हम रवीन्द्रनाथ की प्रतिध्वनि नही कह सकते। हम पहले ऐसे तीन कवियो का उल्लेख कर चुके है, एक तो अक्षयकुमार बडाल, दूसरे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, तीसरे देवेन्द्रनाथ सेन। हम उनकी कविता का उदाहरण

भी दे चुके है, किन्तु अब हम कुछ ऐसे कवियो का उल्लेख करेगे, जिनको हम काल की दृष्टि से शताब्दी के प्रथम चरण के कवि कहेगे। सच बात तो यह है कि वह रवीन्द्रनाथ के समसामयिक है, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत १६१४-१८ के महायुद्ध के पहले के समय मे ही रहा। इनमे कुछ बाद को भी चलते रहे।

द्विजेन्द्रलाल राय

ऐसे कवियो मे द्विजेन्द्रलाल राय का नाम सबसे प्रमुख है। एक समय था जब लोग उन्हे रवीन्द्रनाथ के समकक्ष कवि समझते थे। इसमे सन्देह नही कि वह एक उच्च-प्रतिभाशाली कवि तथा नाटककार थे। नाटक मे कला तथा निस्पृह सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से, न कि भावुकता की दृष्टि से वह अक्सर रवीन्द्रनाथ के आगे निकल गये हैं। आज द्विजेन्द्रलाल राय की भाषा-शैली को अपनाकर चलनेवाले बगला साहित्य मे बहुत कम होगे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त शैलीकारो मे वह ही कदाचित् सबसे प्रमुख है। सच बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की विश्वविस्तृत विपुल ख्याति के सामने द्विजेन्द्रलाल अच्छी तरह चमक नही पाये। द्विजेन्द्रलाल के दुर्भाग्य की जो दूसरी बात हुई वह यह थी कि वह आपेक्षिक रूप से कम उम्र मे ही उठ गये, जिससे कि वह साहित्य मे एक जीवित शक्ति नही रह सके। हमे डर है, द्विजेन्द्रलाल का मूल्य ठीक तरह से कूता नही गया है, शायद जब रवीन्द्र-युग दूर की वस्तु हो जाय, उनका असली मूल्य कूता जाय। हमारी राय मे यदि रवीन्द्रनाथ बगला मे पैदा न होते तो द्विजेन्द्रलाल बगला के सबसे बडे कवि माने जाते, किन्तु उनकी कविता तथा गीत मुख्यत उनके नाटको मे बिखरे है। द्विजेन्द्रलाल के हास्यरस के गाने भी मशहूर है। हम उनकी और तरह की कविता उदाहरण रूप मे पेश न कर 'नन्दलाल' नामक एक हास्यरस का गाना अनुवाद के रूप मे प्रस्तुत करेगे। यह उस जमाने के और कुछ हद तक इस ज़माने के बगाली मध्यवित्त श्रेणी के बाबू का सुन्दर चित्र है। मजे की बात स सम्बन्ध मे यह है कि द्विजेन्द्रलाल बकिमचन्द्र की तरह एक डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, और इन्ही दोनो लेखको की रचनाओ से बगाल ने स्वदेशभक्ति सीखी।

नन्दलाल कविता यो है—

नन्दलाल ने एक बार एक भीषण प्रण कर ही डाला कि जैसे भी हो, वह स्वदेश के लिए अपना प्राण वार देगा। सबने कहा—हैं-है, है-है, नन्दलाल यह तुम क्या करते हो ?

नन्दलाल ने कहा—तो क्या हम हमेशा बैठे ही रहे, भला मै न करूं तो इस देश का उद्धार कौन करेगा ?

तब सबने कहा—वाह रे नन्दलाल, वाह, वाह, वाह !

नन्दलाल का भाई हेजे से मरने लगा, उसे कोई देखनेवाला नही था। सबने कहा—जाओ न, जरा भाई की सेवा तो करो

नन्दलाल ने कहा—खैर भाई के लिए जान देना है तो मै दे सकता हू, लेकिन ऐसा अगर मैने किया तो इस अभागे देश का क्या होगा ? इसलिए ऊच-नीच सोचकर मैने देखा कि मेरा जीना बहुत ही जरूरी है।

तब सबने कहा—अहा-हा-हा-हा, तुमने वावन तोले पाव रत्ती बात कही, जरूर। क्या कहने !

नन्दलाल ने एक दफे एक अखबार निकाला। उसने गद्य तथा पद्य मे सबको गालिया देकर सबकी नाक मे दम कर दिया। चारो तरफ नन्द की धूम हो गई, नन्द मेहनत के मारे लकडी हो गया। वह जितने गुना सोता था उसका दस गुना खाता था। क्या करता, वह पूडी, मिठाई और पकवानो के दोने-पर-दोने उडाने पर मजबूर था। नन्द ने एक बार अखबार मे एक साहब को गालिया दीं। साहब ने आकर उसका गला पकड लिया तो वह चीं-चींकर बोला—अजी, यह क्या करते हो, कही मै इस गला दवाने से मर गया तो इस देश का क्या होगा ? अत जितने गज तक कहो उतने गज तक नाक जमीन पर रगडने के लिए या जो कहो सो करने के लिए तैयार हू।

तब सबने कहा—अरे वाह, अरे वाह-वाह !

नन्द फिर घर से बाहर नही जाता था, न मालूम कहा कब क्या हो जाय। गाडी पर नही चढता था, न मालूम कब उलट जाय, नाव मे भी नही चढता था, क्योकि न मालूम हर साल कितनी डूबती हैं, रेल मे लडने का भय था, फिर पैदल चलने मे साप, कुत्ते तथा गाडी के नीचे दब जाने का डर था, इसलिए नन्दलाल अब लेटे-ही लेटे जीने लगा। सबने कहा—अरे वाह ! अरे वाह ! नन्दलाल, हमेशा जीते रहो !

द्विजेन्द्रलाल ने अंग्रेजी मे भी कुछ सुन्दर कविताए लिखी है। उनमे और रवीन्द्रनाथ मे बराबर साहित्यिक विषयो को लेकर जो विवाद हुए है, वे पढने की चीजे है। रवीन्द्रनाथ को एक तरफ विपिनचन्द्र पाल जैसे धुरन्धर विद्वान

तथा द्विजेन्द्रलाल जैसे प्रतिभाशाली कवि से निपटना पडता था, रवीन्द्रनाथ को इस वाद-विवाद मे असुविधा यह रहती थी कि वह ब्राह्म सम्प्रदाय के होने के कारण जनता उनकी 'प्रचार कार्यमूलक' रचनाओ के विरुद्ध सहज ही हो जाती थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'भारतवर्ष' नामक मासिक पत्र चलाया, जो अबतक सफलतापूर्वक चल रहा है । कवि द्विजेन्द्रलाल ने करीब-करीब उन सभी क्षेत्रो मे अपनी प्रतिभा को दौडाया है, जिनमे रवीन्द्रनाथ की कीर्ति है। हा, उन्होने नाटक ही लिखे, उपन्यास नही लिखे ।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त की प्रतिभा की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनमे कुछ भी कृत्रिमता नही है, उनकी कविता कभी अलसाती हुई चाल से, कभी द्रुत, कभी गरजती, कभी बरसती, कभी तडपती हुई चली जाती है। रेड इण्डियनो की लोरी, चीनी कवि लो तु की कविता, जनरल नोगी की एक आह, वल्कान, आइसलैड की कविता को उन्होने बगला मे रूपान्तर कर रक्खा है, किन्तु कवि यदि न बतावे तो किसी जगह मालूम भी, न हो कि यह जो हम पढ रहे है और पढते-पढते मस्त होकर झूमने लगते है, क्रोध से बलबला उठते है या विषाद से मुरझा जाते है यह कोई अनुवाद है । विदेशी कविताओ को बगला लिबास पहनाने मे सबसे सफल वह ही रहे । दु ख की बात है कि वह अकाल-मृत्यु के शिकार रहे। उनकी प्रतिभा कविताओ के अनुवाद के क्षेत्र मे अद्वितीय होने पर भी वह केवल अनुवादक ही नही रहे। उनकी मौलिक कविताओ की सख्या भी बहुत है। छन्द और भाषा उनके लिए इतनी अनायास थी कि उनकी कविता सीधे पाठक के कानो मे पैठते ही हृदय मे पैठ जाती है। बगाली आत्मा के साथ उनकी इतनी तादात्म्यता थी कि इस क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ भी उनसे कही आगे बढ पाये है, ऐसा नही कहा जा सकता। सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु पर रवीन्द्र ने एक बहुत ही सुन्दर कविता लिखकर उनकी असामान्य प्रतिभा का अभिनन्दन किया था। उन्होने लिखा था—

> वर्षार नवीन मेघ एलो धरणीर पूर्व द्वारे
> बाजाइलो वज्रभेरी । हे कवि, दिबे ना साड़ा तारे
> तोमार नवीन छन्दे ? आजिकार काजरी-गाथाय
> झुलनेर दोला लागे डाले डाले पाताय पाताय

वर्षे वर्षे ए दोलाय दितो ताल तोमार जा वाणी
विद्युत-नाचन-गाने से आजि ललाटे कर हानि
विधवार वेशे केनो नि शब्दे लुटाय धूलिपरे ?

—वर्षा के नये वादल पृथ्वी के पूर्व द्वार मे आ गये, आकर उन्होने वज्रभेरी बजाई। हे कवि, तुम अपने नवीन छन्दो से उसका उत्तर न दोगे ? आज की कजली गाथाओ मे पत्ते-पत्ते मे तथा डालियो मे झूलन का प्रभाव है, प्रति वर्ष इस झूलने को तुम्हारी जो वाणी विद्युत-नृत्य-गान से ताल देती थी, वह आज विधवा के वेश मे सिर धुनती हुई चुपचाप पडी हुई धूल पर क्यो लोट रही है ?

केवल यही नही, रवीन्द्र ने लिखा है, "सत्येन्द्रनाथ बग भारती की वीणा मे एक नया तार लगाने आये थे।" भाषा, छन्द तथा नवीनता होते हुए भी सत्येन्द्रनाथ दत्त रवीन्द्रनाथ या द्विजेन्द्रलाल की तरह एक विश्व-कवि इसलिए नही हो सके कि उनकी कविता मे कोई दार्शनिकता की गहराई नही है। आज के युग की अच्छी कविता केवल सुललित भाषा या सावलील छन्द की वदौलत ही नही वन सकती, उसमे जीवन की सैकडो पहेलियो तथा समस्याओ पर रोशनी होनी चाहिए, कविता के जादू से ऐसा मालूम देना चाहिए जैसे उनका हल पा लिया, जिसकी टोह थी। इस प्रकार की वाते सत्येन्द्रनाथ के काव्य मे नही है, यद्यपि जैसा कि मै कह चुका, भाषा और छन्द उनके लिए वैसे ही अनायासलब्ध है, जैसे मोर के लिए रग की विचित्रता।

यदि उनकी अकाल-मृत्यु न होती तो शायद उनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से विकसित होती और वह हमे एक विराटतर रूप मे नजर आते। उनकी एक छोटी-सी कविता 'चम्पा' का कुछ मूल, और पूरा अनुवाद देकर हम इस प्रसग को खत्म करते हैं—

आमारे फुटिते होलो वसन्तेर अन्तिम निश्वासे
जखन विश्व निर्मम ग्रीष्मेर पदानत
रुद्र तपस्यार वने आध-त्रासे आधेक उल्लासे
एकाकी आसिते होलो—साहसिका अप्सरार मतो।

—इत्यादि

—जब वसन्त की अन्तिम सास चल रही थी तब मुझे पैदा होना पडा, उस

है। जैसे रवीन्द्रनाथ का 'डाकखाना' है, इसमे डाकखाना, डाकिया, मुखिया कोई सार्थकता नही रखतें, इनके परे जो चीजे हैं वे ही इनमे मुख्य हैं।

"इसपर यदि हम रूपकात्मक और प्रतीकात्मक का हिन्दी प्रतिशब्द करना चाहे तो हमे वस्तुरसप्रधान रूपक और भावरसप्रधान रूपक कहना पडेगा। प्राक-महायुद्ध (१९१४-१८) युग मे यूरोपीय साहित्य मे भावरसप्रधान रूपक की प्रधानता थी। मेटरलिंक, ईट्स के काव्य इसी श्रेणी मे आते हैं। सत्येन्द्रनाथ की इस 'चम्पा' कविता को हम जब रूपरसप्रधान-रूपक के रूप मे लेगे तभी इसमे एक दूसरा ही आनन्द दिखलाई पडेगा। अजितकुमार चक्रवर्ती ने सत्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध मे एक फ्रेंच कवि पाल वरलेन Paul Verlaine के सम्बन्ध मे जो कहा है कि वे ध्वनि से चित्र खीचते है उसीको दुहराया है, यह ठीक ही है। सचमुच उनको छन्द तथा भाषा पर अद्भुत अधिकार था। 'वरलेन की तरह उनके छन्दो के स्पन्दन मे अरूप जगत् का स्पन्दन मानो पकडा गया है।'"[1]

रवीन्द्रनाथ की कविताओ का बहुत-कुछ अनुवाद हो सकता है, किन्तु सत्येन्द्रनाथ की कविता का अनुवाद होना करीब-करीब असम्भव है। ऐसे अबगाली पाठक जो बगला भाषा की आत्मा तक नही पहुचे हैं, वे उनकी कविता को समझ नही सकते।

इन्दिरा देवी और प्रियम्वदा देवी

इन्दिरा देवी तथा प्रियम्वदा देवी ने भी कुछ कविताए लिखी हैं, किन्तु इन पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि मालूम होता है, हम रवीन्द्रनाथ को ही पढ रहे हैं। इन्दिरा देवी की निम्नलिखित कविता भाव तथा भाषा मे बिल्कुल रवीन्द्रनाथ की ही मालूम होती है। हम मूल का केवल एक छन्द ही उद्धृत करते है, जिन पाठको ने रवीन्द्र-काव्य का मूल मे आस्वादन किया है, वे इसको पढकर धोखे मे आ जायगे—

हासिखेलार अभिनये अश्रु जले ढाकि
भवेछिलाम एम्नि कोरे तोमाय देबो फाकि
बुके आमार जे सुर बाजे, गुजरे जा मर्ममाझे

[1] श्री अजितकुमार चक्रवर्ती प्रवासी, कार्तिक १३२५

भवेछिलाम सुखेर साजे राखबो तारे ढाकि ।
हासिखेलार मिथ्याछले तोमाय दिये फाकि ।

—हँसी-खेल के अभिनय मे अश्रुजल ढककर मैंने सोचा था इसी प्रकार तुम्हे धोखा दे दूगी । मैने सोचा था कि मेरे हृदय मे जो सुर वजता है तथा मर्मस्थल मे जो कुछ गूजता है उसे सुख के लिवास मे ढक रक्खूगी हँसी-खेल के अभिनय मे तुम्हे धोखा देकर ।

"प्रभात जव दोपहर मे परिणत हो गया, तप्त वायु पैरो मे अग्निकण की तरह लगी, देह जव थकावट के मारे मिट्टी से छू-सी जाने लगी, आखो मे जितने ही आसू झरते थे और मैं उन्हे गोपन करती थी, तभी तुमने मुझे गोद की लडकी की तरह गोद की ओर खीच लिया ।

"मैंने तो तुमसे नही पूछा, कहा मेरा स्थान है, मैने तुम्हारे पैरो पर आसुओ की वाढ तो नही ला दी थी । वीरान मन मे मैने अपनी व्यथा निवेदन कर तुम-से सहायता तो नही मागी थी, फिर भी तुमने कैसे कान लगाकर मेरे हृदय की गहन वातो तथा गोपन अभिमान को सुन लिया ?

"तुमने कैसे मेरी धोखेबाजी का पता पा लिया, केवल यही वात मैने तुमसे अवतक नही सुनी । न मालूम कब कौन-सा सुराग पाकर तुम्हारी हँसी की वाढ ने आकर मुझे हँसकर वहा लिया और इस प्रकार मेरी दुविधा मिट गई । कैसे तुमने मेरी प्रतारणा पकड ली ।"

प्रियम्वदा देवी की भी एक छोटी-सी कविता 'आशातीत' नीचे दी जाती है—

तोमारे पारि न धरिते, पारि ना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो,
तोमाय पारि ना धरिते, पारि ना धरिते
जतोई बासि ना भालो।
तोमाय पारि ना बाधिते, पारि ना बाधिते
नित्य नवीन छन्दे गाथिते
ओरे मोर भालोबासा,
तोमाय पारि बाधिते, भावे रूप दिते
तेमोन नाहिको भाषा

—मैं आकाश की रोशनी मे तुम्हे पकड नही पाती, पकड नही पाती, मन मे मिलाकर अपना नही पाती। तुमको पकड नही पाती, पकड नही पाती। चाहे जितना भी प्यार करू।

"तुमको मैं बाध नही पाती, बाध नही पाती, नित्य नवीन छन्दो मे गूथ नही पाती। हे मेरे प्यार, तुमको मे बाध नही पाती, हाय, भाव को रूप नही दे पाती, वैसी भाषा ही मेरे पास नही है।"

इन दोनो कवयित्रियो मे से इन्दिरा देवी की अकाल मृत्यु हुई।

यतीन्द्रमोहन बागची

यतीन्द्रमोहन वागची रवीन्द्रनाथ के सफल शिष्यो मे थे। वह उनके शिष्य ही रहे, किसी भी तरीके से अपने लिए स्वतन्त्र मार्ग का निर्माण नही कर पाये। भापा पर उनका भी इतना अधिकार था कि उनके सम्बन्ध मे, सत्येन्द्रनाथ की तरह, वह ध्वनि से चित्राकन करते हे, कहा जा सकता है। हा, छन्द के मामले मे वह सत्येन्द्रनाथ से निकृष्ट रहे। उनकी कविताओ मे भी कुछ रूपकयुक्त है, हम नीचे खेया-डिडि नामक एक कविता के कुछ अश उद्धृत करते है। पाठक इसकी सुललित भापा को देखे, रवीन्द्रनाथ की भाषा के साथ इसकी तुलना की जा सकती है—

पाटेर भितर खेतेर दिये घाटेर डिडा वाइ—
तोबु आमार हाटेर साथे कोनो बाधन नाइ,
शिरा-ओठा फाटा हाते हालेर गोडा धरि
आमि शुधु आपन मने एपार ओपार करि

—इत्यादि

—मै पाट के खेतो के भीतर से घाट की छोटी नाव खेता हू, फिर भी हाट के साथ मेरा कोई वन्धन नही है। वस ममकते हुए फटे हाथो से मै पतवार पकडता हू, मैं केवल अपने-आप ही इस पार से उस पार करता रहता हू।

"तुम लोग खेत, फसल, वारिश, वादल, वाढ की वात सोचते रहते हो, भादो का धान कितना हिस्सा डूवा, कितना वचा, किन्तु इन वातो मे मेरी कोई दिलचस्पी नही है, मैं केवल नियमानुसार घाट की नाव को खेता रहता हू।

"भरी नदी मे भाद्र भरी वाढ लेकर आता है लाल पानी से दोनो किनारे एक से हो जाते है। वास से जमीन का पता नही लगता, न कोई थाह मिलती हे, फिर भी दिन और रात मे मुझे छुट्टी कब मिलती हे।

"अकस्मात् जिस दिन बाढ के पानी से खेत भर जाते है, धान के खेत मे घुटनो तक पानी होता है और पाट के खेत मे गले के बराबर पानी होता है, धान का केवल ऊपरी हिस्सा पानी पर हिलता रहता है उस समय मेरी नैया डगमग-डगमग उन्हीके पास होकर निकलती है।

"वे पगडडिया कहा गई और वे बाध ही कहा गये, बबूल के पेडो की चौहद्दी को लेकर वे झगडे ही कहा गये ? बन्धनहीन बाढ के सामने भला यह सब नियम-कानून कहा चलते है, इसलिए असीम तैराकी करते हुए मै नाव खेता रहता हू।

"कमर तक पानी मे खडे होकर किसान हसुआ चलाता है, धान के अग्र-भाग की सोधी गध हवा मे तिरती रहती है। ललाई लिये हुए धान के अग्र भागो को पानी के नीचे नवाकर मेरी नाव उसीके बीच से चलती है।

"धान की गड्डियो को मै इस पार उस पार करता हू, पाट के ढेर को भी ढोता-भरता हू, दिन-रात कितने लोगो की कितनी ही बाते सुनता हू, मै बैठकर मन-ही-मन खेवे का हिसाब लगाता रहता हू।

"पानी के ऊपर सेंदुर-सा बिखराकर सूर्य उगता है, दिन का खेवा खतम कर पश्चिम मे डूब जाता है। बारहो महीने मे एक भी दिन उसे छुट्टी नही है, उसीके साथ मैं भी घाट की नाव को खेता हू।"

'देशेर लोक' (देहाती) नामक कविता मे देहाती दुनिया का अत्यन्त सच्चा चित्र खीचने के बाद वह कहते है—

अविचार अत्याचार भावे निज करमेर फल
नयनेर जल छाड़ा ताइ किछु थाके ना सम्वल

—"वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म-फल सोचता है, इसीलिए आसुओ के सिवा उसका कोई सम्वल नही है।" कवि जो वर्णन करते है वह है तो सच, इस अभागे देश के गरीबो की यही मनोवृत्ति है, किन्तु एक क्रातिकारी कवि की तरह बजाय इसके कि वह इनको कविता का चाबुक मारकर उठाते, वह उसकी इस भाग्यवादी मनोवृत्ति की सराहना करते है—

एई देश—एई लोक—हासिओ ना शिक्षा-अभिमानी
धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि

—"ऐसा तो हमारा देहात है, और ये देहाती हैं, सुनकर हे शिक्षा०

भिमानी, मत हँसना। धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची कीमत है।"

यह तो एक तरह से प्रतिक्रियावाद का प्रचार करना हुआ। यह तो वही बात हुई कि इस दुनिया मे जमीदारो की जवर्दस्ती और जुल्म सहो, इसके वदले मे अगली दुनिया मे हूरो-गिलमा मिलेगे। मालूम होता है, ऐसा लिखते समय कवि यतीन्द्र मोहन 'एवार फिराओ मोरे' नामक रवीन्द्रनाथ की कविता के उस अश को भूल गये—

एई सव मूढ म्लान मुखे
दिते हवे भाषा, एई सव श्रान्त, शुष्क, भग्न बुके
ध्वनिया तुलिते हवे आशा, डाकिया वलिते हवे
मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दाडाओ देखि सबे,
जार भये तुमि भीत से अन्यायी भीरू तोमा चेये
जखनि जागिवे तुमि तखनि से पलाइबे धेये'[1]

रवीन्द्रनाथ भी भाववादी होने के नाते ऐसे मामलो मे अन्त तक पूरी तरह निर्वाह नही कर पाते, किन्तु अक्सर उनकी प्रतिभा उनको इस प्रकार की गलती से वचा भी लेती है। यतीन्द्रमोहन की यह मनोवृत्ति हम उनकी 'गौरी' नामक कविता को रवीन्द्रनाथ की उसी सन् मे प्रकाशित 'येनास्या पितरो जाता' नामक कविता की तुलना करते है तो पाते है—दोनो मे एक लडकी का विवाह उससे कही अधिक उम्रवाले बुड्ढे वर से होता है। दोनो विधवा हो जाती है, किन्तु दोनो मे बडा भेद है। यतीन्द्रमोहन की गौरी विधवा होती है, रवीन्द्रनाथ की मजुलिका भी विधवा होती है। दोनो पितृसेवा तथा घर के काम-काज मे मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करती है।

मजुलिकर
दु खे-सुखे दिन हये जाय गत
स्रोतेर जले झरे पडा भसे जावा फूलेर मतो
अवशेषे होलो
मजुलिकार वयस भरा सोलो

---

[1] इसका अनुवाद रवीन्द्रनाथ के 'एवार फिराओ मोरे' में आ गया।

—"दुख-सुख मे उसके दिन बीत जाते थे, मानो वह कोई स्रोत के पानी मे गिरा हुआ तथा बहा हुआ फूल थी। अन्त मे मजुलिका की उम्र सोलह हुई।"

और गौरी का क्या हुआ ?

काल कि कारेओ छाडे
बछर बछर मेयेर वयस बाडे।
आट थेके से षोलय पलो, बुझलो क्रमे निजे
अवस्था तार कि जे।

—"समय किसीको भला छोडता है ? आठ से उसकी उम्र बढते-बढते सोलह वर्ष की हो गई। धीरे-धीरे वह समझ गई कि उसकी परिस्थिति क्या है।"

अपनी परिस्थिति समझने पर भी वह अन्त तक लाखो हिन्दू बाल-विधवाओ की तरह मूक रहकर अपने प्राण का तिलतिल देकर अपने पिता की मूर्खता का प्रायश्चित्त करती है। वह एक 'अनाघ्रात स्वर्ण-चम्पा' की तरह ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करती है।

वर्षा तक रवीन्द्रनाथ की मजुलिका भी इसी तरह रहती है। मंजुलिका की मां एक दिन उसके पिता से कहती है—क्यो जी, मजु की शादी न कर दी जाय।

पिता हुक्के के नल से मुह हटाकर कहता है—मुझे मर जाने दो, फिर मा और बेटी एक ही साइत मे शादी कर लेना—और मुह फेरकर अपना उपन्यास पढने लगता है। बात यही खतम हो जाती है।

कुछ दिनो मे माता मर जाती है। पिता कुछ दिन बीमार रहते हैं, बीमारी मे पुलिन डाक्टर उन्हे देखता है। वह अच्छे हो जाते है, किन्तु कुछ ही दिनो मे वह इस नतीजे पर पहुचते है कि बिना विवाह किये ससार-धर्म का निर्वाह नही हो सकता। तदनुसार वह विवाह करने जाते है, किन्तु विवाह से लौटने के बाद वह देखते है कि मजुलिका घर से भाग गई है, और पुलिन से शादी करने के बाद दोनो फर्रुखाबाद चले गये है।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि यतीन्द्रमोहन बागची अपने गुरु के पीछे रह गये है। यह तो मतामत की दृष्टि से हुआ, किंतु कला के क्षेत्र मे भी सम्पूर्ण रूप से वह उसी लीक पर चलते है, जिसपर रवीन्द्रनाथ चल चुके है। हम कहीं,

भी उनमे कोई मौलिक धारा नही देखते। ऊपर जिन कविताओ की विषयवस्तु की तुलना की है उनके विषय मे मज़े की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की कविता यतीन्द्रमोहन की कविता के ठीक एक महीना पहले 'प्रवासी' मे प्रकाशित हुई थी। क्या यह रवीन्द्रनाथ के उत्तर मे लिखी गई थी ? यतीन्द्रमोहन की कविता देखकर यह सन्देह होता है कि शायद यह जवाब मे लिखी गई थी। वह पक्तिया ये है—

तबु जेनो, गौरी एरि नाम—
रूप गुणे नामेर नतन—चोखेर तृप्ति चित्तेर विश्राम।

—"फिर भी जानना, गौरी इसीका नाम है, रूप तथा गुण मे नाम की तरह ही है, आखो के लिए तृप्ति और चित्त के लिए विश्राम है।"

कालिदास राय

कालिदास राय भी रवीन्द्र-प्रभाव मे पले हुए एक कवि है। सत्येन्द्रनाथ की तरह वह भाषा और छन्द के आचार्य नही जचते तथा रवीन्द्र-प्रभाव के कवि होते हुए भी उन्होने किसी जगह भी रहस्यवाद को पास नही फटकने दिया। उनके विषयो मे ही कुछ ऐसी मधुरता होती है तथा विषय को वह प्रतिभा के साथ निभाते है कि उनकी कविताए पठनीय तथा मौलिक-रसयुक्त हो जाती है। मध्यवित्त श्रेणी के छोटे-छोटे सुख-दु खो को उन्होने इस खूबी से चित्रित किया है कि देखते ही बनता है। 'छात्रधारा' नामक कविता मे उन्होने शिक्षको को इस भावुकता के साथ चित्रित किया है कि कोई भी सहृदय शिक्षक इसे पढ-कर आसू नही रोक सकेगा। प्रत्येक समाज मे ये शिक्षक कितने उपयोगी है और लोग उन्हे कितना बेकार समझते है। इस कविता को पढते-पढते हमे चेखव के उस शिक्षक का स्मरण हो आया, जो मरते समय प्रलाप मे कहता है, "वोल्गा नदी वल्डाई पहाड से निकलकर फलाने समुद्र मे जाकर गिरती है।" करुण और हास्य-रस का अद्भुत मिश्रण है। कहानी की पश्चाद्भूमि के कारण यह दृश्य और भी करुण हो जाता है। हम कालिदास राय का 'छात्रधारा' कविता का अनुवाद नीचे देते है—

—"प्रति वर्ष वे झुड-के-झुड इस विद्यालय के नीचे आते है और वे कलरव करते हुए चले जाते है, कैशोर के किसलय पत्ते तव यौवन के हरेपन के गौरव को प्राप्त करते है। उन्हे मै प्यार करता हू, पास बुलाता हू, सबका नाम जान

रखता हूं, रोज-रोज उनसे भेट होती है, डाट-फटकार बताता हू, एक पहर तक सीख भी देता हू, किंतु फिर भी कुछ याद नही रहती। दो-चार दिन की यह मुलाकात, समुद्र के बालू पर जैसे रेखा, नई लहर आते ही पुछ जाती है। नन्हे पैरो के दाग नये चरण-चिह्नो की ताडना से एक-से हो जाते हे। वे यहा एकत्र तो होते है, किंतु जानते नही कहा जायगे, विद्यालय मानो एक सराय है। दो-चार-दस दिन एकत्र किसी काम को करते है, फिर मिलकर जैसे नीति-सार और कथामाला गूथते है।

"कभी रास्ते मे भेट ह जाती है तो कोई गुरु कहकर हाथ उठाकर नमस्कार करता है तो मै हँसता हुआ कहता हू, 'जीते रहो, क्या काम-काज हो रहा है ?'

"सोचते-सोचते चलता हू, नाम तो याद नही आता, कितने दिन पहले छात्र था ? याददाश्त को लेकर खीचातानी करता हू, कैशोर का उसका चेहरा याद आकर भी नही याद आता। आना-जाना रोज़ का होता है, बहुत दिनो तक भेट होती है, फिर भी वे याद क्यो नही रहते ? व्यक्ति जाकर झुड मे मिल जाता है, गले मे माला पहन लेने पर प्रत्येक फूल को भला कौन याद रख सकता है ?

"इस जीवन पर तोड-फोड मचाकर उसे हरा तथा सरस करते हुए छात्रो की धारा बह जाती है, वह फेनिलता तथा उच्छ्वास तुच्छ हो जाता है और कलरव विलीन हो जाता है। जब मैं आर-पार देखता हू तो मेरे मन को घेरकर कुछ म्लान चेहरे जग उठते है। जो कलरवमय महोत्सव है वह तो सब भूल जाते है, किंतु ये म्लान मुख याद रह जाते है।

"कोई तो भूख से म्लान है, कोई रोग से अधमरा है, थकावट से किसीकी चितवन करुण हो रही है। कोई बेत के डर से कोठरी मे छिपा रहता है, किसी-की आखे नीद से कडवी है। कोई क्लास मे बैठकर जगले से बाहर की ओर देखता है, मानो कोई पिजरे मे बन्द चिडिया हो। आसमान मे पतग को देखकर उसका मन उडान भरने लगता है, उसके चेहरे पर विषाद की उत्कट छाया पडती है। कोई खेल के मैदान को याद कर सबक भूल जाता है, किसीकी बुद्धि मे ही बात नही आती, कोई तो घर को तथा स्नेह-भरे भाई-बहनो को याद कर बार-बार घडी की ओर देखता है।

"उदार वायु स्वास्थ्य तथा आयु लेकर पुकारती है, वह इस पुकार को बद

कमरे मे बैठकर सुनती है। हाथ मे स्याही, मुह मे स्याही ऐसा बच्चा, वैसा ही मालूम देता है मानो नन्हा-सा चाद बादलो मे ढका हो, ग्ह्न मुझे याद पडता है। और सब तो भूल चुका हू किन्तु यह सब भूल न सका। एक बार आख मूदते ही म्लान-मुखो की ये पक्तिया मन को आकुल कर डालती ।"

निरुपमा देवी

निरुपमा देवी बगला मे विशेष रूप से अपने उपन्यासो के कारण प्रसिद्ध थी, किन्तु उन्होंने कुछ अच्छी कविताए भी लिखी है। सच बात तो यह है कि बगला के सभी सुकुमार साहित्य के लेखक साथ-साथ कवि भी होते है। शरत्‌चन्द्र आदि कुछ ऐसे उपन्यासकार बगला भाषा मे हुए है, जिन्होने कविता कभी नही लिखी, किन्तु ये अपवाद है, न कि नियम। हम जब अति-आधुनिक बगला काव्य पर आयेंगे तो दिखलायेगे कि बगला मे अति-आधुनिक कविता के जो प्रवर्तक है, वे ही अतिआधुनिक गल्पकार भी है। निरुपमा देवी की 'तृण' नामक कविता का पहला अश हम उद्धृत करते है। पाठक देखेगे इसकी भाषा बडी सगीतमय है

मोरा कचि कचि श्याम तृणदल
करि जीवनेर पथ सुश्यामल
उठि धरणीर प्राण फुडिया
रहि कठिनेर बुक जुडिया
राखि घन मखमले मुडिया
एइ ककरमय धरातल।

—"हम हरी-हरी नरम घास के दल है। हम जीवन के पथ को हरा बनाते है, हम पृथ्वी का प्राण फोडकर उठते है, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते है, हम इस ककडमय धरातल को घने मखमल से मोड रखते है। हम हैं हरी-हरी नरम घास के दल।"

"मोरा कचि कचि श्याम तृणदल।"

यह कविता भी एक रूपक है। निरुपमा देवी पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है,किन्तु वह रहस्यवाद से सम्बन्ध नही रखती। फिर भी वह एक भाववादिनी लेखिका थी।

यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त

यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त की एक कविता 'हाट'[1] का कुछ अंश लीजिये

दूरे दूरे ग्राम दशबारोखानि
माझे एकखानि हाट
सन्ध्याय सेथा ज्वले ना प्रदीप
प्रभाते पडे न झांट।
वेचा केना सेरे विकाल-वेलाय
जे जाहार सबे घरे फिरे जाय
बकेर पाखाय आलोक लुकाय
छाडाये पुबेर माठ
दूरे दूरे ग्रामे ज्वले उठे दीप—
आधारेते थाके हाट।

—"दूर-दूर पर दस-बारह गाव है और बीच मे एक हाट लगता है, सन्ध्या के समय न तो वहा दीया जलता है, न तो सवेरे झाड़ू ही लगती है। खरीदना-बेचना समाप्त कर सब अपने-अपने घर ही लौट जाते है, बगुले के पर पर चलकर रोशनी मानो पूर्व का मैदान पारकर छिप जाती है। दूर गावो मे दीये जल उठते है, किन्तु हाट अंधेरे मे ही रहता है।"

दिवसेते सेथा कतो कोलाहल
चेना अचेनार भिडे,
कतो ना छिन्न चरणचिह्न
छडानो से ठाई घिरे।

..

दिवसे थाके ना कथार अन्त
चेना अचेनार भिडे,
कतो के आसिलो, कतो वा आसिछे
कतो ना आसिवे हेथा

---

[1] गाव का वह बाजार, जो हफ्ते मे केवल एक या दो दिन लगता है।

ओपारेर लोके नामाले पसरा
छूटे एपारेर क्रेता ।
हिसाब नाहिरे एलो आर गेलो
कतो क्रेता-विक्रेता

—"दिनभर यहा कितना कोलाहल रहता है । परिचित तथा अपरिचित की भीड रहती है, उस जगह को घेरकर न मालूम कितने लोगो के पदचिह्न बने हुए है। दिन मे तो इस परिचित-अपरिचित की भीड मे बातो का अन्त नही रहता । कितने आये, कितने आ रहे हैं, कितने आयेगे । उस पार के लोग यदि अपना सामान उतारे तो इस पार के क्रेता दौड पडते है। इसका कुछ हिसाब नही कि कितने क्रेता और विक्रेता आये ।

"नये सिरे से यह हाट हर बार वैठता-टूटता है, दिन-रात नये यात्री है, इस नाटक का खेल जारी है। कोई तो जाते वक्त गाठ मे कुछ बाधकर जाता है और कोई रोता है, उदार आकाश और मुक्त वायु मे चिरकाल तक एक खेल चलता रहता है। "

इस कविता पर रवीन्द्र-प्रभाव स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ वस्तुवादी नही, वल्कि भाववादी होने पर भी अपनी प्रतिभा की विराट तूम्वी के कारण पानी के ऊपर ही रहते है, किन्तु उनके बहुत-से शिष्यो मे इस प्रतिभा की देन न होने के कारण वे अक्सर रूपक तक ही रह जाते हैं याने रूप को गौण बनाकर कविता लिखते है। यह कविता उसीका एक उदाहरण है। हाट का वर्णन पढकर कि वहा साझ का दीया भी नही जलता, हमारे दिल मे करुणा का उद्रेक होते-न-होते हम अनुभव करते है कि कवि कह रहे है खेत की, लेकिन गा रहे है खलिहान की । इस दृष्टि से वगला भाषा को अतुल शब्दो का ऐश्वर्य देने पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव वगला कविता के आधुनिक होने मे बाधक सावित हुआ । जिसे देखो, वही रूपक, प्रतीकवाद तथा रहस्यवाद की तरफ दौडा । सभी कविता मे इस तरह बाते करने लगे, मानो इस सृष्टि के पीछे जो रहस्य है उसके गुप्त-गृह मे उनका प्रवेश हो चुका है ।

: २१ :

विद्रोही कवि काज़ी नज़रुल

बगला भाषा की एकता के सबसे बडे प्रतीक है सुप्रसिद्ध कवि काजी नजरुल इस्लाम। उनकी कविता को किसी हिन्दू ने मुसलमानी कहकर कभी उसका अनादर नही किया। सच तो यह है कि उन्होने वगला काव्य मे एक नई रूह फूकी। वह रवीन्द्र-युग की ही उपज है, इस युग की उपज होते हुए अपने को एक दिग्गज के रूप मे प्रतिष्ठित कर लेना, यह कितनी बडी शक्ति का परिचायक है, इसका अनुमान किया जा सकता है।

नजरुल इस्लाम का वैयक्तिक जीवन भी एक धूमकेतु की तरह रहा। एक धूमकेतु की ही तरह उन्होने एकाएक साहित्य-जगत् मे प्रवेश किया। वह पश्चिम बगाल के एक बहुत गरीब घर मे पैदा हुए थे। उन्हे ठीक-ठीक शिक्षा नही मिली और उन्हे अपनी इच्छाओ का दमन करने की शिक्षा तो कभी मिली ही नही। वह प्रकृति के वरपुत्र के रूप मे बढे, और इसी रूप मे वह कवि भी हुए। बचपन मे वह कई बार घर से भागे। भला घर का इकरस वातावरण उन्हे कैसे पसन्द आता? उनका गला अच्छा था, इस कारण कई बार वह नाट्य-मडली मे भी सम्मिलित हो गये। एक बार तो वह भागकर पूर्व बगाल के एक गाव मे पहुचे और एक सज्जन के यहा नौकर हो गये। बाद को वह एक डबल रोटीवाले के यहा भी नौकर रहे।

जब १९१४ की लडाई छिडी तो वह उसमे भरती हो गये, और अन्ततोगत्वा हवलदार हो गये। लडाई से लौटकर उन्होने 'धूमकेतु' नाम का एक पत्र निकाला, जो अधिक नही चला, पर बगला-साहित्य मे उन्हे एक स्थान अवश्य देता गया। यदि कोई बगला कवि यह कह सकता है कि वह एक दिन सवेरे जागा और उसने देखा कि वह मशहूर है तो वह नजरुल ही है।

नजरुल के लिखने का यह हाल था कि कभी तो लिखते ही रहते, और इसी-मे राते निकल जाती। फिर हफ्तो हो जाते, और वह कलम के पास तक नही फटकते। ऐसी हालतो मे कई बार ऐसा हुआ कि उनके सम्पादक मित्रगण उन्हें

एक कमरे मे बन्द कर देते, और उन्हे कागज, कलम, चाय दे देते। फिर घटे-दो घण्टे मे उन्हे एक सुन्दर कविता मिल ही जाती।

जिस युग मे नजरुल ने साहित्य मे प्रवेश किया, वह विद्रोह का युग था। यो तो क्रान्तिकारी गुट तथा व्यक्ति सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता के बाद से ही क्रियाशील थे। बग-भग मे बगाल की जनता भी जग चुकी थी, पर अखिल भारतीय रूप मे इस महादेश की जनता ने इसी समय अगडाई ली। देखते-देखते वह उठ बैठी और जय-यात्रा पर चल पडी। इसी समय काजी नजरुल ने ललकार कर कहा—

आमि दुर्वार
आमि भेंगे कोरि सब चुरमार,
आमि अनियम उच्छृखल,
आमि दले जाई जतो बन्धोन
जतो नियम-कानून शृखल।

—मैं दुर्वार हू, मुझे कोई रोक नही सकता। मैं सबको तोड-तोडकर चकनाचूर करके रख देता हू। मै अनियम हू, मै उच्छृखल हू, जितने भी बन्धन है, नियम, कानून तथा शृखला है, मैं उन्हे पैरोतले रौदकर आगे बढ जाता हू।

विप्लव आनि विद्रोह कोरि
नेचे नेचे गोफे दिइ ताव'

—मैं क्रान्ति को बुला लाता हू, विद्रोह करता हू, मैं नाच-नाचकर मूछो पर ताव देता हू।

आमि धृष्ट,
आमि दात दिया छिडि विश्व-मायेर अंचल

—मैं ढीठ हू, मैं दातो से विश्व माता के आचल को फाड डालता हू।

आमि विद्रोही भृगु
आमि भगवान् बुके एंके देबो पदचिह्न
आमि सृष्टि-सूदन
शोक-ताप-हाना खेयाली विधिर
बक्खो कोरिब छिन्न।

—मैं विद्रोही भृगु हू, मै ईश्वर के सीने पर अपने चरणो का चिह्न अकित कर

दूगा । मै सहारक हू, शोक, ताप आदि के प्रति एक तरह से उदासीन विधाता के सीने को फाड डालूगा ।

नजरुल की इस कविता मे वम, माइन, डिनामिट की भरमार है । परतत्रता के उस युग मे इन चीजो को कविता मे लाना एक विशेष तरह की गुदगुदी पैदा करता था । एक तो ऐसी शब्दावली, और दूसरे विद्रोही विचार—इन्होने मिलकर उस युग के बगाली नौजवानो के हृदयो को एकदम मुग्ध कर दिया ।

काजी नजरुल अपरिहार्य रूप से विद्रोही कवि थे । उनकी तकनीक भी बहुत कुछ निजी ही थी, यद्यपि जैसा कि अनुमान करना कठिन न होगा, वह रवीन्द्र-नाथ की छाप से मुक्त नही थे । इस बात को वह स्वय भी समझते थे । तभी तो रवीन्द्र के जन्म-दिवस पर उन्होने कहा था—

'हे रसशेखर कवि, तव जन्मदिने
आमि कोये जाबो मोर नव जन्म-कथा
आनन्द सुन्दर तवो मधुर परशे
अग्निगिरि मल्लिकार फूले-फूले
छेये गेछे।'

—हे रसशेखर कवि, तुम्हारे जन्मदिन पर मै अपनी नई जन्म-कथा कह जाऊगा । तुम्हारे आनन्द से सुन्दर मधुर स्पर्श से पहाडो की मल्लिका के हर फूल मे ज्वालामुखी छा-सी गई है ।

फूलो मे ज्वालामुखी के पैदा होने की कल्पना कितनी सुन्दर है ।

काजी नजरुल का विद्रोह अक्सर तो विद्रोह के लिए विद्रोह रूप लिये हुए था । यह भी एक सोपान है । जिस समय जर्जर सडी-गली पद्धति के विरुद्ध विद्रोह अनिवार्य हो जाता है, पर विद्रोहियो के मन मे आगामी समाज-पद्धति का नक्शा स्पष्ट नही होता, उस समय विद्रोह को कोई उद्देश्यमूलकता का रग प्राप्त नही होता । उस समय केवल विद्रोह करना और तोड-फोड मचाना, जो पद्धति मौजूद है, उसे जहा से भी हो विध्वस्त करना, अच्छा मालूम होता है । विद्रोह के बाद की अवस्था का स्पष्टीकरण उस समय आवश्यक नही ज्ञात होता । उस समय विद्रोह करना ही चरम लक्ष्य बन जाता है ।

काजी नजरुल की कविता मे उक्त प्रकार का विद्रोह ही अधिक दृष्टिगोचर होता है । इसमे सोद्देश्यता तथा बुद्धि से बढकर है स्वत-स्फूर्तता । ओजमय

शब्दो के प्रवाह मे वह हमे ऐसे बहा ले जाते हैं कि उसकी अन्तर्गत वस्तु का अभाव हमे बिल्कुल नही खटकता । बस, हम भी सैनिको की पक्ति मे खडे होकर 'बाये-दाये, बाये-दाये' करते हुए चल पडते है ।

पर नही, अधिकाश मे उनकी कविता निरे विद्रोह के लिए विद्रोह होने पर भी, और इस दृष्टि से अपने युग का प्रतीक होने पर भी काजी के मन मे कुछ स्पष्ट उद्देश्य थे—

महाविद्रोही रणक्लान्त
आमि सेइदिन हबो शान्त
जबे उत्पीडितेर क्रन्दन-रोल आकाशे बातासे ध्वनिबे ना
अत्याचारीर खड्ग-कृपाण भीम रणभूमे रणिबे ना

—'मै महाविद्रोही रणक्लान्त होकर उसी दिन शान्त हूगा जिस दिन न तो उत्पीडित की क्रन्दन-ध्वनि आकाश मे गूजेगी और न अत्याचारी का खड्ग तथा कृपाण भयकर होकर रणभूमि मे दिखाई देगा । मैं विद्रोही रण-क्लान्त होकर उसी दिन शान्त हूगा ।

इस प्रकार यह तो सत्य हो जाता है कि काजी नजरुल के विद्रोह का उद्देश्य अत्याचार का अन्त कर देना था, पर अभी लक्ष्य बहुत दूर था, इस कारण उस पर जोर नही डाला जा रहा था । अभी तो विद्रोह पर ही ज़ोर था । विद्रोह की चडी जग तो जाय, फिर देखा जायगा । विद्रोह के लिए विद्रोह के भ्रम का और भी एक कारण था । वह यह कि जिधर देखो उधर सडी-गली पद्धतिया थी, राजनीति मे गुलामी थी, समाज मे रूढि तथा गतानुगतिकता का बोल-बाला था । स्वय ईश्वर जो था, वह भी धनियो के इशारे पर नाचनेवाला था ।

उनकी कविता मे भाषागत चमत्कार इतना अधिक है कि कुछ लोगो का यहातक कहना है कि उनसे भावो की गहराई की आशा करना व्यर्थ है । जर्मन के महाकवि गेटे ने बायरन के विषय मे कहा था कि जबतक बायरन सोचते नही है, तभी तक ठीक है, पर जिस घडी सोचने लगते है, उनका बचकानापन खुल जाता है । श्री बुद्धदेव बसु का कहना है कि यही बात काजी नजरुल पर भी लागू होती है । उनके अनुसार नजरुल तथा बायरन मे और भी समता है । "उन्हीकी तरह नजरुल की प्रतिभा ऐश्वर्यशालिनी है, पर उसपर भरोसा नही

किया जा सकता। न मालूम वह कब धोखा दे जाय। उनमे वही लट्ठमारपन है, वही रुक-रुककर चलनेवाला करीब-करीब स्वाभाविक प्रवाह है, बिना परिश्रम की अनायास प्राप्त कारीगरी है, अनायास प्राप्त और लापरवा। सर्वोपरि विचारो की वही शीर्णता है।" पच्चीस साल तक वह प्रतिभा के वरदपुत्र की तरह साहित्य-गगन पर चमके, पर उनमे प्रौढता नही आई। उनकी रचनाओ के क्रम मे विकास का कोई क्रम दृष्टिगोचर नही होता। उन्होने बीस साल की उम्र मे जो लिखा, पैंतीस साल की उम्र मे भी उसमे कोई फर्क नही आया।

उनकी किसी-किसी कविता मे इजरायल, इसराफील, कयामत आदि इस्लामी पुराण के व्यक्तियो, वस्तुओ तथा घटनाओ का उल्लेख है, किन्तु इससे उनकी कविताओ का खस्तापन बढा है, न कि घटा। वह ऐसी उपमा, उपमेयो को लाकर बगला मे खपा देते है कि वह तनिक भी पृथक् ज्ञात नही होते। उनकी सौ मे निन्यानवे कविताओ मे कोई ऐसी बात नही है, जिससे यह मालूम हो कि वह मुसलमान कुलोत्पन्न भी हैं। उनकी कविता की जाति साम्प्रदायिक शब्दो मे वर्णनीय नही है। यदि उसकी कोई जाति है तो वह है आधुनिक तथा विद्रोही।

पर काजी नजरुल को केवल विद्रोह का कवि कहना ठीक नही होगा। यद्यपि उन्होने लिखा है—

के बाजाबे बाशी ?
कोथा पाबो अनिन्दित सुन्दरेर हासि ?
आजो शुधु आगमनी गाहिछे शानाई,
ओ केनो कांदिछे शुधु नाइ, नाइ नाइ।

—कौन बासुरी बजाये ? मै कहा से अनिन्दित सुन्दर की हँसी लाऊ ? आज भी शहनाई केवल आगमनी ही गा रही है, मानो उसने इसीकी रट लगाई हो कि नही हैं, नही है।

हम नीचे उनकी 'सिन्धु' नामक कविता का कुछ अश उद्धृत करते है—

हे क्षुधित बन्धु मोर तृषित जलधि
एतो जल बुके तबो, तबु नाहि तृषार अवधि।
एतो नदी, उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
बुभुक्षु, तोबु कि तव भरिलो ना प्राण।

दुरन्त गो महावाहु
ओगो राहु
तीन भाग ग्रसियाछ, एक भाग बाकी,
सुरा नाई—पात्र हाते कापितेछे ताकी।

—हे मेरे क्षुधित मित्र, तृषित जलधि, तुम्हारे हृदय मे इतना जल है, फिर भी प्यास की कुछ सीमा नही है। इतनी नदिया तथा उप-नदिया तुम्हारे चरणो मे आत्मदान करती है, किन्तु हे बुभुक्षु, फिर भी क्या तुम्हारा दिल न भरा ? हे दुरन्त महावाहु, हे राहु, तुमने तीन भाग तो ग्रस लिया, अब एक ही भाग वाकी है। शराब नही रही, इसलिए हाथ मे पात्र लेकर साकी कापता है।

समुद्र पर वहुतो ने लिखा है, किन्तु निम्नलिखित पक्तियो मे फिर भी कुछ विशेष नई बात है—

मन्थन-मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुठिया गेछे तव रत्नपुर,
हरियाछे उच्चै श्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशीप्रिया
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्ग गिया।
करेछे लुन्ठन,
तोमार अमृत-सुधा मार जीवन तो।
सब गेछे आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला आछे स्मृति व्यथा-उतरोल।
उर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य, शून्य चारिधार
मध्ये कादे वारिधार, सीमा हीन रिक्त हाहाकार
हे महान हे चिर विरही
हे सिन्धु, हे बन्धु मोर, हे मोर विद्रोही
सुन्दर आमार,
नमस्कार।

—मन्दार रूपी मथनी मे डाकू-सुरासुरो ने तुम्हारे रत्न-पुर को मथकर लूट लिया है, तुम्हारा उच्चै श्रवा हर लिया, तुम्हारी लक्ष्मी हर ली, तुम्हारी शशि-प्रिया को भी हर लिया। वे सब तो स्वर्ग मे जाकर सुख से हैं। उन्होने तुम्हारी सुधा भी हर ली। सब चला गया, केवल क्रन्दन-कल्लोल ही रह गया। केवल

ज्वाला शेष है तथा व्यथा से उतावली स्मृति मौजूद है। ऊपर शून्य है, नीचे शून्य है, चारो तरफ शून्य है, बीच मे पानी की धारा रिक्त हाहाकार बनकर रोती है। हे महान्, हे चिर विरही समुद्र, हे मेरे मित्र, हे मेरे सुन्दर विद्रोही, तुम्हे नमस्कार है।

काजी नजरुल की कविता की यह विशेपता मालूम देती है कि उसमे गति भी है, ओज भी है, किन्तु कोई उद्देश्य नही। उनकी विद्रोही कविता इसी प्रकार की है। काजी नजरुल विद्रोही जरूर है, किन्तु उनके मन मे विद्रोह का कोई स्पष्ट उद्देश्य न होने के कारण उनका विद्रोह अक्सर केवल साहित्यिक पैर फटफटाना-मात्र रह जाता है। नजरुल की एक कविता है—'देखवो एवार जगतटाके' याने 'अब दुनिया देखूगा'। इस कविता मे कवि कहते है कि वह अब घर मे बन्द नही रहेगे, वह अब दुनिया देखेगे, 'कैसे वीर मल्लाह डूबकर समुद्र के अन्दर से मोती ले आता है, कैसे साहसी लोग दूर आकाश की ओर उड जाते हैं, कैसे और किसके नशे मे लाखो की सख्या मे लोग मरते हैं, किसके अभियान मे लोग हिमालय की चूडा मे जाना चाहते हैं', इत्यादि कवि जानना चाहते है। वह अब पिजरे मे बन्द नही रहना चाहते, वह इनसब बातो को दुनिया घूमकर देखना चाहते है। वह पाताल फाडकर नीचे उतरना चाहते है तथा फोडकर आकाश मे उठना चाहते है। 'इतना होने पर भी सच बात तो यह है कि यह समझ मे नही आता कि कवि चाहते क्या है', नतीजा यह है कि ऐसी कविता का या तो आध्यात्मिक या छायावादी रहस्यवादी अर्थ लेना पडेगा।

हम समझते है इस अस्पष्टता के लिए नजरुल को दोषी ठहराना ठीक नही होगा। सचमुच बात तो यह है कि नज़रुल तथा उनके साथी विद्रोह करना चाहते हैं, किन्तु क्या करना चाहते है, यह इन्हे पता नही। तोडना, फोडना, फाडना शब्द के अधिक इस्तेमाल से ही कोई क्रान्तिकारी या आधुनिक नही हो सकता।

काजी नजरुल ने प्रेम और विरह पर भी अनेक गीत लिखे है, और उनकी सख्या हजारो तक पहुचती है। उनका गला अच्छा था और वह सगीत के विशेपज्ञ थे। ग्रामोफोन कम्पनियो ने उनके गीतो से लाखो रुपये कमाये। झुमुर, भाटियाली, बाउल, गजल, ठुमरी, ख्याल, ध्रुपद, कीर्तन, श्यामा-सगीत तथा आधुनिक सगीत, किसी शैली को भी उन्होने अछूता नही छोडा। 'लीलायित

चचल, अचल परशने', 'शून्य ए बुके पाखी भोर फिरे आय' ये दो खयाल की शैली पर गाने तथा दरवारी कनाडा का 'वाजे मृदग वाजे', 'कि मुखे गृह रवो' कीर्तन प्रत्येक व्यक्ति की जवान पर चढ गये। केवल प्रचलित रागो पर ही नही, कई लुप्त सुरो का भी उन्होने पुनरुद्धार किया। कौशिकी सुर मे लिखित 'श्मशान जागिछे श्यामा, अन्तिम सन्ताने कोले दिते स्थान' तथा, शिवरजनी सुर मे 'हे पार्थ-सारथी, सजाओ—वजाओ पाचजन्य शखे' वहुत जनप्रिय हुए।

गीतो के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ के वाद नजरुल का ही स्थान है। ग्रामोफोन-कम्पनियो के चक्कर मे पडकर उन्होने कई ऐसी चीजे लिखी, जिनका मूल्य सदिग्ध है, फिर भी वह अक्सर एक मानदड के नीचे नही गये। कुछ विशेषज्ञो का यह कहना है कि जहातक गीतो की सख्या का सवध है, वह दुनिया के किसी भी कवि से वाजी मार ले गये है। रवीन्द्रनाथ ने दो हजार गीत लिखे, पर नजरुल ने अपेक्षाकृत कम समय मे उनसे कही अधिक गीत लिखे। रिकार्ड के गाने मे तो नज़रुल सवको वहुत पीछे छोड जाते है।

प्रेम की कविताओ मे नजरुल अपने युग के वातावरण से ऊपर न उठ सके, याने रोमाचवाद मे ही रह गये। फिर भी उनका रोमाचवाद उच्चकोटि का है। उनमे कीट्स का चित्ररूप, वायरन का आवेग तो है, पर रवीन्द्रनाथ की गहराई का अभाव है।

रवीन्द्र-काव्य वगला-साहित्य की सवसे वडा सम्पदा है, पर काजी नजरुल का महत्व एक दृष्टि से उनसे भी अधिक है। वह यह कि वह सयुक्त वगाल के पुनरुद्धार मे सवसे वडी शक्ति हैं। शुद्ध काव्य-विचार मे भले ही यह वडी वात न समझी जाय, पर जीवन, सस्कृति, इतिहास भी वडी चीजे है। नजरुल पूर्व वगाल के राष्ट्रीय कवि है।

पाठको को यह जानकर अपार दु ख होगा कि सयुक्त वगाल का यह श्रेष्ठतम सास्कृतिक प्रतीक कई वर्षो से मस्तिष्क विकृति का शिकार है। इस मस्तिष्क-विकृति की भी वास्तव मे एक कहानी है। काजी नजरुल ने एक हिन्दू महिला से विवाह किया था। उस समय कुछ लोगो ने इस विवाह की निन्दा की थी। पर काजी नजरुल केवल नाम से ही मुसलमान थे। उनका यह विवाह वहुत सुखी रहा। वाद मे श्रीमती नजरुल को पक्षाघात हो गया। इसपर काज़ी नजरुल ने सारी चिकित्सा-पद्धतियो को आजमाया। पर अन्त मे कुछ न होता देखकर

गडा-तावीज और फिर तत्र-मत्र करने लगे। इन्हीके चक्कर मे उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। और अब भी विकृत है।

: २२

इस युग के कुछ अन्य कवि

राधाचरण चक्रवर्ती

राधाचरण चक्रवर्ती रावीन्द्रीय मडल के एक कवि है, उनकी सभी कविताए रहस्यवाद का पुट लिये हुए होती है। एक कविता लीजिये—

आकाशेर मेघरन्ध्रे अधकारे तुमि चेये थाको
तारा होये।
आखिर पलकहारा होये
तुमि मोरे डाको
आभासे इगिते शत डाके—
आमि थाकि क्षुद्रतार सीमा नागपाशे
धरणीर एक पाशे
बाधा शत पाके
चारिदिके स्वार्थ-कोलाहल
उच्छृखल
सग्राम सघात
घात प्रतिघात
तोबु माझे माझे आसे काने
तबो डाक—उदास करिया देय प्राणे।

—आकाश के बादलो के छेद से अधकार मे तुम मेरी ओर नक्षत्र होकर देखते हो, पलक नही मारते। तुम मुझे पुकारते हो, आभास से, इशारे से, सैकडो पुकार से। मै क्षुद्रता की सीमा नागपाश मे सैकडो बधनो से बधा हुआ रहता हू। चारो तरफ स्वार्थ का कोलाहल है, उच्छृखलता है, सग्राम-सघात है, घात-प्रति-

घात हे। फिर भी वीच-वीच मे तुम्हारी पुकार आ ही जाती है, तुम्हारी पुकार प्राणो को उदास कर देती है।

चारिदिके कामना-अप्सरी
खेले लुकोचुरि-खेला करतले मोर दुइ चक्षुचेपे धरि
दृष्टि रोध करि,
तवु माझे माझे जेनो अगुलिर फाके
आखिर किरण तवो आसि मोर लागे
नयनेर आगे
आलोहित रागे

—चारो ओर कामना-अप्सरी मेरी दोनो आखो को वद कर मुझसे लुका-छिपौवल खेलती है। मेरी दृष्टि रुद्ध कर, फिर भी वीच-वीच मे उगलियो के वीच से तुम्हारी आख की किरणे जैसे मुझे आखो के सामने लाल-लाल दिखाई दे जाती हे।

जावो जावो, तोवु आमि जावो
हे अनत वलो वलो आमि तोमा पावो

हे असीम तोमार माझारे भेसे जावो चुपे चुपे

—जाऊगा-जाऊगा, फिर भी मैं जाऊगा। हे अनत, तुम कहभर तो दो, तुम मुझे मिलोगे।

सुधाकान्त राय चौधुरी

सुधाकान्त राय चौधुरी कोई वडे कवि नही है, किंतु फिर भी उनकी एक कविता 'मुक्तिर खेला' हम पाठको के सामने उपस्थित करते है। इसमे जेल मे रहनेवाले एक कैदी के गहरे भाव चिनित किये गए हे

रुद्ध मम चित्त नित्य कादे वदीशाले
तोवु वातायन-द्वार-पथे नव प्राते
जे आलोक जागे पूर्वदिगन्तेर भाले
आभाखानि तार लागे आमि मोर माथे।

पिंजरे राखिया मोरे संकीर्ण सीमाय,
केनो सुदूरेर पाने दृष्टि मोर टानो,
केनो चित्तपाखि जेथा क्लान्ति ते झिमाय
अरण्येर विहगेर गीतध्वनि आनो।

इत्यादि

—वन्दीशाला मे मेरा रुद्ध चित्त नित्य रोता है, फिर भी रोज़ सवेरे जगले के रास्ते जो रोशनी पूर्व क्षितिज के ललाट मे जागती है, उसकी आभा आकर मेरे सिर पर लगती है। मुझे सकीर्ण सीमा मे पिजरे मे रखकर क्यो सुदूर की ओर मेरी दृष्टि को खीचकर तरसाते हो ? जहा मेरी मन-चिडिया थकावट से सोती-सी है, वहा जगली चिडियो की गीत-ध्वनि क्यो लाते हो ? मैं तो पथरीले दुर्ग मे वन्दी हू, फिर मेरे श्रावण के द्वार मे बार-बार अपने उद्दाम गीत की पुकार से क्यो खटखटाते हो, और इस प्रकार हृदय मे दुरत दुर्वार मुक्ति का वेग क्यो ला देते हो ?

जेल पर बहुत-सी कविताए लिखी जा चुकी है, लेकिन इसमे कैदी के अतर की गहरी वेदना को भाषा दी गई है।

एक और कवि की कविता देकर हम इस दौर को समाप्त करते है।

सुरेन्द्रनाथ मैत्र

सुरेन्द्रनाथ मैत्र की इस कविता का नाम 'वात्सल्य' है। भाषा तथा छद मे वह रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ओत-प्रोत होते हुए भी इसकी कल्पना मे नवीनता है। हम केवल पहला वद उद्धृत करेगे, शेष का अनुवाद भर देगे।

खेला घरे शिशु खेला करे
धूलिर फाटल-मेघे जेनो चादिमार सुधा झरे
हासि-ज्योत्स्ना भरा मुख तार
सेई आलो सेई हासि जननीर स्नेह नीलिमार
अतल जलधि-वक्षे आलोकेर शुभ्र आलिपना
आकिछे कत ना
उच्छल तरग शिरे शिरे
आनदेर सुमद समीरे

—खेल के घर मे बच्चा खेलता है, धूल के फटे हुए बादल मे जैसे चन्द्रमा की सुधा टपक रही है। उसके चेहरे पर हँसी की ज्योत्स्ना है। यह रोशनी, यह ज्योत्स्ना जननी के स्नेह-नील अतल जलधि के समान वक्षस्थल मे कितनी ही तरह की शुभ्र-आल्पना की सृष्टि करती है—उसकी चचल तरगो के ऊपर-ऊपर आनद की सुमद हवा मे।

—दूर मे कवि अकेला बैठकर इकटक देखता रहता है कि धरणी की धूल पर यह शिशु-शशि कैसा-कैसा खेल खेलता रहता है, और साथ-ही-साथ देखता रहता है कि स्नेह के सागर मे किस प्रकार की लहरे उफनती है। ज्योत्स्नारूपी अमृत मे वह गलकर रह जाता है। जरा-सी वह धूल लिपटी हुई देह समुद्र के भरपूर स्नेह को दीप्त करता है।

२३ ·

आधुनिक कविता

कहापर आधुनिक साहित्य का अन्त होकर अति-आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है, यह कहना बडा कठिन है। फिर यूरोपीय साहित्य मे जिसे हम आधुनिक कहेगे उसीको बहुत-कुछ हद तक हमे बगला मे कई कारणो से अति-आधुनिक कहकर परिभाषा करनी पड रही है। बगला मे इस प्रकार परिभाषा होने मे गडबडी का कारण यह हो रहा है कि रवीन्द्रनाथ की रचना का एक अश तो यूरोपीय अर्थों मे भी आधुनिक है, किन्तु बाकी के लिए हम यह बात नही कह सकते, साथ ही उनको हम प्राचीन या अन्य किसी पर्याय मे नही डाल सकते। सुप्रसिद्ध समालोचक अजितकुमार चक्रवर्ती ने ठीक ही लिखा है कि विश्वमानविकता मे रवीन्द्रनाथ बालजाक, ब्राउनिग, ह्यूगो आदि किसी लेखक से उतरकर नही है, किन्तु उनकी चरित्रसृष्टि मे न तो वह विचित्रता है, न वास्तविकता, न अभिज्ञता का स्तरपर्याय, न उत्थान-पतन की लहरे, न पापपुण्य का घातप्रतिघात। ये ही विशेषताए है, जिनसे यूरोपीय साहित्य तरगित, फेनायित तथा विक्षुब्ध हो रहा है। इसलिए कविता, विशेषकर गीतिकविता, मे जहा वस्तु से कोई वास्ता नही, रवीन्द्रनाथ अतुलनीय हैं। इसलिए कहानियो मे

भी जहा घटना से कही बढकर महत्वपूर्ण घटना का आन्तरिक सुर होता है, वे अपना सानी नही रखते। रूपक-नाट्य मे भी रवीन्द्रनाथ को इसी कारण सफलता मिली है।

अवश्य इस युग मे मौजूद रहने के कारण आज के जीवन की सैकडो समस्याए रवीन्द्रनाथ की अनुभूतिशील वीणा को बार-बार छू गई हैं। जिन कवियो को हमने रवीन्द्रनाथ के बाद गिनाया है वे भी इन विश्वव्यापी समस्याओ के महाप्लावन से नही बच सके, फिर भी उनपर उनका विशेष प्रभाव पडा, यह कहने के लिए कोई कारण नही। बात यह है कि "बगला साहित्य मे अबतक मुख्यत भाववाद का ही बोलबाला रहा। बकिम की कल्पना मे एक बडे आदर्श का भाव है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे वस्तु तथा भाव की एक समन्वयचेष्टा है, और जिनको हम भारतीय उपन्यासकारो मे सबसे ज्यादा प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी समझते है, वे भी विश्लेषण करने पर वस्तुवादी नही पाये जाते, बल्कि उनके उपन्यासो मे वास्तविकता का सवेदनमय इसलिए आत्मतान्त्रिक रूप मिलेगा।" मोहितलाल ने इसके बाद लिखा, "बकिमचन्द्र की कल्पना मे वास्तविकता एक बाधा के रूप नही थी, उनकी कल्पना थी सम्पूर्ण निरकुश और बेरोकटोक,' रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे वास्तविकता रूपान्तरित हो गई है, मानो वास्तविकता की वास्तविकता ही लुप्त हो गई है। शरत्‌चन्द्र की कल्पना-वास्तविकता की समस्या जटिल हो चुकी है, वास्तविकता के लिए एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा से शायद बगला-साहित्य का वस्तुवाद खतम हो गया। इसके आगे जो साहित्य होगा, उसमे वास्तविकता के साथ वास्तविक रूप से निपटना पडेगा।"

आधुनिक शब्द एक तुलनात्मक शब्द है। जो चीज कल आधुनिक थी, आज उसका प्राचीन कहलाना स्वाभाविक है। इसमे बिना बात तर्क करने अथवा झगडने की जरूरत नही। सच बात तो यह है कि इसमे हमे खुशी ही मनानी चाहिए। "कभी उन्नीसवी सदी भी तो आधुनिक थी, किन्तु बीसवी सदी मे उसकी वह आधुनिकता मान्य कैसे हो सकती है? फलस्वरूप जो भी प्राचीन सस्कार युग-धर्म के पैरो मे बेडी डालकर उसकी गति को कुठित करता है, उसे कुसस्कार

१ आधुनिक बगला साहित्य, पृ० २७०

आस्था दी जा सकती है, और गति के पथ को रुद्ध करने के कारण वह निन्द-नीय तथा वर्जनीय है। हमारे मन की पृष्ठभूमि मे विभिन्न भवरो के जरिये से युग-युग तक जो कुसस्कार पुजीभूत हुए हे उनके प्रभाव से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। सीमित सस्कारो मे ढके हुए कुहरे मे साहित्यदेव का जो विकृत रूप हमारी आखो के सामने आता है उसीकी पूजा मे हम तन्मय हो जाते हैं, इस प्रकार हम अपनी मोहतन्द्रा पर शान्त-समाहित अवस्था समझने का भ्रम कर डालते है।"[1]

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य मे उसके ध्येय, आधेय तथा रूप मे परिवर्तन होना अनिवार्य है। फिर भी इस अनिवार्य भवितव्यता को कभी के क्रान्तिकारी और उस समय के बडे-बूढो ने रोकना चाहा है, फल-स्वरूप एक सघर्ष, तूफान तथा वातो की मारकाट शुरू हो गई है। यह एक अजीव वात है कि जिस क्रान्तिकारिता या विचार-स्वातन्त्र्य की वदौलत वे साहित्य मे एक नये युग के प्रवर्तक हुए, उसीका अवलम्बन कर जव दूसरे उनसे भी आगे जाना चाहते हैं तो वे विधि-निषेधो की एक चीन की दीवार खडी कर उन्हे रोकते है, और जव इसपर भी ये नये मत-वाले नही मानते तो उन्हें तरह-तरह से गालिया दी जाती है। "यहा तक कि लेख के चरित्र को छोडकर लेखक के चरित्र पर हमले किये जाते है।" एक नवीन पथी वगाली समालोचक ने लिखा है—

"राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ये भी एक जमाने मे अर्वाचीन समझे जाते थे। आधुनिकता के अपराध मे उस जमाने मे उनकी प्रचुर निन्दा होती थी, उनको वहुत-से सामाजिक निर्यातन सहने पडे। वकिमचन्द्र, माईकेल, नवीनचन्द्र आदि को सामाजिक निर्यातन का सामना करना पडा था, किन्तु निर्यातित होने का दुख एक है और प्राचीन होने का दुख दूसरा है। अभी हाल मे रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध मे एक ऐसी ही शोकप्रद घटना हुई है। जो नारा दिया जा रहा है, वह गलत हे। रविवाबू का इस वात पर दुखी होना स्वाभाविक है कि अव उनका नाम लोग नवीनो की वही से काटे दे रहे हैं। उनके दुख को हम समझते है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के चेलो द्वारा किये गए पुनर्जन्म के उत्सव हम नही समझते। रविबाबू ने नवीन का विजयगान किया है, उसके

---

[1] प्रेमेन्द्र विश्वास—आधुनिक बा.ल. गल्प

लिए उनको गालिया भी यथेष्ट दी गई, किन्तु आज यदि उन्हीको प्राचीनता के शिविर मे ढकेल दिया जाय तभी तो हम यह कह सकते है कि नवीनता की पुकार सत्य है। बडे भारी आधुनिक तथा विद्रोही शरतचन्द्र प्राचीन की श्रेणी मे जाकर मरे, यह तो उनके विप्रदास की परिणति से ही स्पष्ट है। फिर भी इसमे रोने-धोने की बात क्या है, यह हमारी समझ मे नही आती। यदि प्राचीन ही सब जगह पर अपना अधिकार रक्खे तो नूतन को जगह कहा मिलेगी ? फिर तो हमे सबसे पहले जीव-विज्ञान को झूठा करार देना पडेगा। यदि पिता ही चिरकाल तक मौजूद रहे तो सन्तान की जरूरत क्या है ? फिर यदि पुत्र हुबहू पिता की ही तरह नही हुआ तो इसपर हम विलाप क्यो करे। फिर मनुष्यावतार को क्यो, मीनावतार को ही पानी चढाने से काम चल जाता।"

अति-आधुनिक साहित्य पर तरह-तरह के आक्षेप किये गए है। कहा जाता है कि अति-आधुनिक साहित्य छाग-साहित्य है, प्राचीन साहित्य रामायण है तो यह कामायण है। अति-आधुनिक कविता को कामोद्दीपक तथा शरीर की पूजा करनेवाली वासन-कलुषित भी कहा गया है। मैं समझता हू यह बिल्कुल झूठा तथा बेबुनियाद लाछन है। बाइबल, रामायण, महाभारत से आज की कविता अधिक अश्लील है, यह कहना गलत है। बगला मे कृत्तिवास की जो रामायण या काशीरामदास का महाभारत है, उन्हे कोई भी अतिनीतिमान अपने लडके को नही दे सकता। सच बात तो यह है कि आज की अश्लीलता कम है। रहा यह कि अति-आधुनिक साहित्य मे शरीर को उसका उचित स्थान दिया गया है। हा, कही-कही कुछ अति भी हुई है, यह हम मानते हैं, और यह स्वाभाविक ही है। आधुनिकतम मनोविश्लेषण शरीर और मन की एकमेवाद्वितीयता की ही दलील को पुष्ट करता है। ऐसी हालत मे शरीर पर से आख हटाकर कल्पना की धूमिल रगीन धरा पर विचरण करना कभी वाछनीय नही हो सकता। अवश्य ही दुर्नीति का प्रचार करना अति-आधुनिक साहित्य का लक्ष्य नही हो सकता और न है। हा, जिन बातो को अबतक हमारे समाज के नीतिवान साहित्यिको ने केवल अस्वीकार करके ही उडा देना चाहा था, किन्तु फिर भी जो थी, और जिनका नतीजा बराबर हमारे सामने आता रहता था, उनको अति-आधुनिक साहित्य ने सबके सामने लाकर रख दिया है। यही हमारे बुजुर्गों के निकट दुर्नीति है। अति-आधुनिक साहित्य को कुछ बगाली समालोचको ने बाथरूम

साहित्य याने 'गुसलखाना साहित्य' कहा है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि अति-आधुनिक अपने गुसलखाने को हमारे प्राचीनो के रसोईखाने से अधिक साफ-सुथरा रखते हे, इसलिए यह कोई विशेष गाली नही है।

वास्तव मे वात तो यह है कि ये सव वाते इसलिए उडाई जाती है कि प्राचीन अपनी गद्दी पर कायम रह सके, इसी कारण यह विरुद्ध प्रचार है।

प्राचीनो की तरफ से वकालत करते हुए कवि रवीन्द्र कहते हैं—"विधाता की सृष्टि मे जो पुनरुक्ति है, वही चिरसत्य हे। प्राचीन को लेकर ही विधाता चिरकाल से इस पृथ्वी मे इन्द्रजाल की रचना करते आये हैं, इसपर यदि उन्हे लज्जा न हो तो . "

वीच ही मे वात काटकर नवीन कहता है—"विधाता को भले ही लज्जा न हो, किन्तु मनुष्य को लज्जा है। मनुष्य का साहित्य, शिल्पकला, भास्कर्य, हमेशा नया ही रूप लेता रहा है। प्रागैतिहासिक युग मे एक चमेली जैसे फूलती थी आज भी वैसे ही फूलती है, परन्तु फिर भी विधाना की कला मे वट्टा नही लगता, किन्तु उस युग का मनुष्य जैसी तस्वीरे खीचता था आज भी यदि वह वैसी ही खीचे तो आज उसके लिए लज्जा की कोई सीमा न रहे, प्रतिदिन नई सृष्टि करने मे ही उसकी कला की सार्थकता है।"

हमारे वुजुर्ग जव सभी वातो मे हार जाते हे तो वे कहते है, आखिर यह तुम्हारा अति-आधुनिक साहित्य आया कहा से, आखिर तुम्हारे बाप तो हम ही हे। इसमे कोई सन्देह नही कि ऋण है, किंतु ऋण कितना ? फिर यदि अव के साहित्यिक उन्नीसवी शताव्दी के साहित्य के ऋणी हैं तो क्या वे किसी और के ऋणी नही हें। कविवर कहते है, वाल्मीकि आये थे तभी उनका आना सभव हुआ, नवीन यहापर तड से पूछ वैठता हे वाल्मीकि का आना किसकी वादौलत सभव हुआ ? फिर नवीन स्वय ही कहता हे, "वच्चा मा से चलना सीखता है, किन्तु चलता है वह अपने ही जोर से। जिस रहस्य की खान से आदिम कवि ने प्रेरणा पाई थी उसीसे अति-आधुनिक प्रतिभाशाली कवि भी प्रेरणा पाता है। हम अतीत काल के गर्भ से आये है, इसे हम अस्वीकार नही करते, किन्तु मा के गर्भ से वेटा निकला है, केवल इसी तत्व पर यदि मा वेटे को हमेशा चलाना चाहे तो वह एक विभ्राट का रूप धारण करे। भूतकाल मनुष्य की अवचेतना मे रहे तो ठीक है, यही उसका यथार्थ स्थान है, किन्तु इसके वजाय कि पर्दे के

पीछे से चुपचाप अपना भी प्रभाव डाले, वह हमारी सारी चेतना को आच्छन्न कर ले, यह एक भयकर बात ही नही, दैवदुर्विपाक होगा। यदि रवीन्द्रनाथ को समझने के लिए ईश्वर गुप्त, और ईश्वर गुप्त को समझने के लिए काशीराम दास को और काशीराम दास समझने के लिए अशोक की शिलालिपि पढनी पडे तो बस हो चुका।"[१]

साहित्य मे तथा सर्वत्र इस बात के लिए अधिकतर मारकाट हुई कि गद्दीदारो ने हमेशा मकानो की छतो से यह दावा किया कि आखिरी पैगम्बर वे ही है, उन्होने जिस सत्य को पा लिया, वही सत्य का चरम तथा परम विकास है। यही तो गलती है। यदि उनके समय मे विकास होता था तो क्या वजह है कि उसके बाद विकास न होगा। इस दावे के कारण ही नवीन और प्राचीन मे बराबर साहित्य मे तुमुल सग्राम हुआ है। शायद यह नवीन और प्राचीन, गद्दीदार और गद्दी के अधिकारी का सग्राम ही चिरन्तन सत्य है।

हम कई बार लिख चुके हैं कि बकिम कहिये, माइकेल कहिये, द्विजेन्द्रलाल कहिये, रवीन्द्र कहिये, इनमे से सभी मध्यवित्त श्रेणी के साहित्य के रचयिता थे। उन्हींकी भावुकताए, आदर्श तथा वास्तविकता उनका उपजीव्य था। एक नवीन साहित्यिक की भाषा मे सुनिये, "साहित्य अबतक धनी तथा विलासियो की जयगाथा से परिपूर्ण था। राजा-नवाबो की प्रशस्ति तथा कहानी से ही उसका काम चलता था, यद्यपि आज जनता का भी वहा स्थान होने लगा है, किन्तु इतने ही से हम सन्तुष्ट नही हो सकते, हमे इनमे भी नीचे उतरकर उसे जहा अपमान और अत्याचार हो रहा है, उन सर्वहाराओ मे ले जाना पडेगा। आज दुनिया के कारखाने और जमीनो के मालिक एक तरफ है, वे है पूजीपति और ताल्लुकेदार, दूसरी तरफ है किसान और मजदूर, ये सर्वहारा है। यह वर्ग-सघर्ष आज बहुत ही स्पष्ट है और नजदीकी चीज है। कुछ नहीं यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो ये ही राष्ट्र, ये ही जाति हैं। साहित्य का काम अब यह होगा कि वह इन किसान-मजदूरो की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना को जगावे। वही साहित्य वास्तव मे राष्ट्रीय साहित्य होगा।" नवीन युग के नवीन समालोचक फिर कहते हैं—"यह जो साहित्य है, इसमे सभव है, त्रुटिया हो, रहे। युग-युगान्तर

[१] यह नवीन श्री प्रेमेन्द्र विश्वास है।

के बन्धन को एक दिन मे तोडने चले है, कुछ तो टूटेगा। सीमित सस्कारो के सकीर्ण दायरे मे शान्ति भी है, शृखला भी, किन्तु वहा जीवन की वह चचलता कहा और मुक्ति का आनन्द कहा ?"

इसमे सन्देह नही वह नई चीज है। एक जमाने मे अर्थात् बीस-पच्चीस वर्ष पहले रवीन्द्रनाथ को अधिक-से-अधिक अपनाना ही बगला लेखको तथा कवियो का आदर्श था, किन्तु अब उनसे अधिक-से-अधिक अलग हटना ही मानो बहुतो का आदर्श हो रहा है। इस प्रयास मे कुछ लोगो ने अति कर दी है। नतीजा यह है कि वे जिस बात से बचना चाहते थे वे उसीके शिकार हो गये हैं। वे कृत्रिम हो गये तथा अवास्तविक भी हो गये। फिर भी यह एक नवीनता है। बगला का अति-आधुनिक गद्य तथा पद्य साहित्य धीरे-धीरे जनता का साहित्य शायद बने, किन्तु अभी वह जनता का साहित्य नही है। ठीक-ठीक कहा जाय तो साहित्य अभी धनी, विलासी मध्यवित्त श्रेणी से उतरकर अब निम्नमध्यवित्त श्रेणी मे उतरा है।

प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त, यह तीन अति-आधुनिक साहित्य के नयी विशेषत शहर की निम्नमध्य वित्त श्रेणी की ग्लानि, दुख गरीबी के ही चित्रकार है। हा, शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने कोयले की खानो के कुलियो को लेकर कुछ अत्यन्त शक्तिशाली साहित्य की रचना की है, किन्तु बस। फिर भी ये अति-आधुनिक लेखक जब कुलियो को लेकर भी साहित्य रचना करते हैं तो उनको एक-एक व्यक्ति के रूप मे देखते हैं, उनकी सामूहिक समस्याओ पर वे कम रोशनी डालते हैं। याद रहे कि बजाय दुर्गेशनन्दिनी के यदि हम कुलीकुमारी को लेकर गल्प, कविता लिखे तो वह अनिवार्य रूप से जनता का साहित्य नही होगा, हम यदि प्रेमिका के द्वारा प्रेमी को बजाय चाकलेट के बक्स या फान्टेन पैन उपहार रूप मे दिलवाने के तेल की जलेबी या झब्बेदार नाडा दिलवाये तो उससे साहित्य मे एक नवीनता जरूर आ जाती है, इनका हम स्वागत करते हैं, किन्तु केवल इन्ही बातो से यह साहित्य जनता का साहित्य पदवाच्य नही हो सकता। जनता का साहित्य वह है जो जनगण की आशा, आकाक्षा, भय, त्रास, हर्ष, आनन्द को रूप दे। दुख की बात है कि अभी ऐसा साहित्य कम है। इस बात के लिए दोष हमारे लेखको का है। वे ऐसी श्रेणी के हैं कि वे इन बातो को समझ नही पाते, जनता की आत्मा तक उनकी पैठ नही

है। रवीन्द्रनाथ ने 'चार अध्याय' नामक पुस्तक मे राष्ट्रीय चेतना को चोट पहुचाकर अपनेको पुलिसमैन की श्रेणी मे ला दिया है, यह एक नवीन समालोचक ने लिखा है।

बगला के अति-आधुनिक साहित्य मे प्रतिभा का अभाव नही है, किंतु जनता के साहित्य की सृष्टि के लिए जिस साहस की जरूरत है वह शायद आज के लेखको मे प्रचुरता से मौजूद नही है। इस साहस के अभाव का एक बाह्य कारण भी है, वह यह कि सरकार के प्रहार से ये डरते रहे। मैं यह नही कहता कि आज का उपन्यास या कविता केवल राजनीति की चेरी हो जाय, किन्तु यह जरूर है कि आज की जनता के सामूहिक जीवन मे राजनीति को एक विशेष महत्व प्राप्त है। यह बात साहित्य मे झलक जानी चाहिए। यदि ऐसा न हो सका तो कहना पडेगा कि साहित्य चाहे कितना भी समृद्ध हो, वह वास्तविकता से परे एक कल्पना-विलास मात्र है। राष्ट्रीयता की तरह श्रेणी-सघर्ष भी एक वास्तविकता है। मजदूर-किसानवर्ग अपनी युग-युग की उदासीनता छोडकर जिस तरह अपने शोषको के विरुद्ध विद्रोह मे उठ खडे हो रहे है, वह आज एक वास्तविकता है। नये युग के लेखक को इस सघर्ष को भी प्रतिबिम्बित करना पडेगा। राम, श्याम, यदु, मधु की प्रेमलीला से यह कही बढकर वास्तविकता है, बल्कि ठीक कहा जाय तो यह वास्तविकताओ मे वास्तविक है। एक वस्तुवादी लेखक भला इनसे मुह कैसे मोड सकता है!

हमने ऊपर जो कुछ कहा वह तो साधारण रूप से साहित्य के विषय मे कहा, किन्तु हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से कविता से है। हम पहले देखे कि यूरोप मे आधुनिक साहित्य ने अपने सामने क्या काम रक्खे है, श्री अजितकुमार चक्रवर्ती ने इनको यो गिनाया है—

१ सामाजिक न्याय-समाज के अन्तर्गत प्रच्छन्न या प्रकट अन्याय तथाकथित उच्चश्रेणी के सर्वेसर्वापन तथा उत्पीडन के प्रति विद्रोह। विक्टर ह्यूगो ने अपने 'ला मिजराबल' (Les miserables) नामक प्रसिद्ध उपन्यास मे इस पर्याय का सूत्रपात किया है। टालस्टाय की कहानियो मे भी इसको हम कही-कही प्रत्यक्ष करते है किन्तु इब्सन के नाटको मे ही आकर हम इसको असली रूप मे पाते है। उदाहरण स्वरूप 'समाज के स्तभ' (Pillars of Society) लिया जाय, इसमे कान्सल बर्निक अपने पापो का बोझ दूसरो पर कितनी ही चालाकी तथा फरेबो के द्वारा

लादने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। आधुनिक समाज के स्तम्भो की नीव इसी प्रकार दुर्बल है। वर्नार्ड शा तथा गाल्सवर्दी इब्सनवादी हैं।

२ समाज-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि के नये-नये आविष्कार कला के वाहन बनाकर दिखलाये गए हैं। जैसे एक बात लीजिये वशानुक्रम। इसको अवलम्बन कर इब्सन का 'प्रेत' (Ghost) हौप्टमैन का 'अग्निकाड', (Conflagration) पिनेरो का 'शाहखर्च', (Profligate) आस्कार वाइल्ड का लेडी विन्डरेमेयर के भक्त (Lady Windermere's fan) लिखा गया है।

३ पाप का विश्लेपरण—अस्वाभाविक, अस्वस्थ तथा प्रतिसामाजिक अपराधो का विश्लेषरण। इस श्रेणी मे जोला आते है, इनसे भी बढकर है डास्टयएफस्कि का 'अपराध और सजा' (Crime and Punishment) और 'मूर्ख' (The idiot) उपन्यास, स्ट्रीन्डबर्ग का 'पिता' (Father), 'मृत्यु का ताडव' (Dance of death), हौप्टमैन का 'साथी क्रैम्पटन' (Colleague Krampton), 'समझौता' (Reconciliation) वर्नार्ड शॉ का 'श्रीमती वारेन का पेशा' (Mrs Warren's Profession) और ब्रियो का अर्द्ध देवता (Demi God), 'वस्तुए' (Goods), 'मातृत्व' (Maternity) आदि।

४-श्रेणी-सघर्ष—गाल्सवर्दी, हौप्टमैन, वर्नार्ड शा आदि मे इसका प्रमारण मिलेगा। गाल्सवर्दी के 'सघर्ष' (Strife) नाटक मे अध्यक्ष जॉन एथनी और मजदूरो के नेता रावर्ट्स का विरोध दिखलाया गया है। पूजीपति एथनी समझता है कि पूजीवाद की ही बदौलत समाज उन्नति कर रहा है, इसलिए मजदूरो की माग मे उसे कुछ सत्य नही दिखाई पडता। हौप्टमैन का 'जुलाहे' (Weavers) इसी श्रेणी का नाटक है। वर्नार्ड शॉ का 'विधुर के घर' (Widower's houses) इसी श्रेणी मे आता हे।

५ परिवार तथा पारिवारिक सम्बन्धो का विश्लेषरण-इस श्रेणी मे इब्सन का 'लिटिल इयोल्फ' (Little Eyolf) स्ट्रीन्डबर्ग का 'पिता' (Father) तथा 'जोडनेवाली कडी' (The Connecting link), हौप्टमैन का 'चूहे' (The rats) आदि है।

६ स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार। इसमे—

(क) मिथुन-प्रेरणा की लीला—इसमे स्ट्रीन्डबर्ग का 'काउन्टैस जूली' (Countess Julie) चैकोफ का 'चचा वान्या' (Uncle Vanya)

बर्नार्ड शा का 'फिलैण्डर्स' (Philanders) आता है।

(ख) विवाह-सम्बन्धी समस्या—इसमे इब्सन की 'सागर की नारी', (Lady of the sea) 'गुडिया-घर' (Doll's house), टाल्स्टाय का 'क्रूजर सोनेटा' (Kreutzer Sonata), गाल्सवर्दी का 'भगोडा' (The Fugitive), शॉ की 'परिणय' Getting Married इत्यादि।

(ग) स्त्रियो की आर्थिक तथा सामाजिक स्वाधीनता का प्रश्न—उदाहरणत इब्सन का 'गुडिया-घर' (Doll's House) ब्रिओ का 'स्वावलम्बी नारी' (The woman on her own) आदि हैं।

स्पष्ट है कि ऊपर साहित्य के जो क्षेत्र अजितबाबू ने गिनाये है वे मुख्यत गद्य-साहित्य के बारे मे लागू हो सकते हैं, किन्तु इससे कविता के क्षेत्र का भी अनुमान किया जा सकता है। एक बात इस सम्बन्ध मे याद रखने योग्य है कि आज की कविता कहा खतम होती है, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि गद्य और पद्य का जो भेद पहले मान्य था वह अब विलीन-सा हो रहा है। आज की कविता मे अक्सर छन्द (याने जिसे किसी नियम मे लाया जा सकता है) नही रहता। हिन्दी मे लोगो ने इसको रबड छन्द कहा है। एक बात सिर्फ इसमे देखते है कि यह कुछ सीढी की तरह लिखा जाता है। कोई-कोई नवीन कवि ऐसे पहुचे हुए है कि उनका कोई मतलब समझ मे नही आता, शायद लेखक स्वय आकर समझाये तो समझ मे आये।

आधुनिकतम कविता किसी वाद के विवाद मे पडी नही रह सकती, समग्र जीवन ही उसका क्षेत्र है। अग्रेजी मे 'रूपर्ट ब्रुक' (Rupert Brooke) एक कवि हो गये है। उन्होंने युद्ध ही पर लिखा है। किप्लिंग एक तरह से साम्राज्य-वाद के कवि थे। इसी प्रकार मैं समझता हू, जो भी लहर देश मे उठे, उसका एक-एक कवि होना चाहिए। अवश्य ऐसे भी कवि होगे, जो इन सबके केन्द्र-बिन्दु को लेकर कविता लिखेगे।

हमने इस दौर मे अबतक केवल एक निबन्ध के रूप मे साधारण तौर पर इसलिए लिखा है कि अभी बगला मे अति-आधुनिक साहित्य का रूप स्पष्ट नही हुआ, शायद यह तबतक स्पष्ट न हो जबतक कि उसमे कोई रवीन्द्रनाथ या शरच्चन्द्र पैदा न हो। फिर भी एक बात इस साहित्य मे सर्वत्र स्पष्ट है कि अब कवि तथा लेखक रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त होना चाहते हैं। पाश्चात्य-

साहित्य मे इस समय रूसी-साहित्य का वगला के लेखक वहुत अध्ययन करते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्र-प्रभावमुक्त साहित्य का रुझान किस ओर है। अब हम रवीन्द्र और अति-आधुनिक काल की गोधूलि के समय की वगला कविता के कुछ उदाहरण पाठको के सामने उपस्थित करेगे।

मोहितलाल मजूमदार

मोहितलाल मजूमदार वगला के अच्छे कवि तथा समालोचक है। उनको शायद हम इस दौर मे स्थान न देकर इसके पहले के दौर मे ही पेश रखते, क्योकि रवीन्द्रनाथ से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने पर भी वह उसीके दायरे मे रह गए हैं। उन्होने एक कविता 'कालापहाड' के नाम से लिखी है, वह नि सदेह एक अति-आधुनिक कविता है। इस कविता का यदि हम अग्रेजी मे अनुवाद करते तो इसका नाम मूर्तितोडक देते। पाठको को मालूम होगा कि कालापहाड एक प्रसिद्ध मूर्तिभजक था। कवि ने कालापहाड को एक कट्टर नौमुस्लिम चित्रित न करके एक क्रान्तिकारी तथा कुसस्कारो के विरुद्ध जिहाद करनेवाला रखते चित्रित किया है। कालापहाड कवि के निकट वह शक्ति है, जो किसी चीज के अन्दर से पैदा होकर उसकी भलाई के लिए उसपर चोट-पर-चोट करती है।

वश जाहर वलि जोगाइलो यूपे, युगे-युगे, भयविभल—
जागियाछे तारि वीर सन्तान हुकारे भरि जलस्थल।

—"जिसने पुश्त-दर-पुश्त युग-युग तक भयविह्वल होकर यूप मे वकरा भेजा, आज उसीकी वीर सन्तान जलस्थल को भरकर जगी है। उसके रास्ते मे पहाड सिर झुकाकर सिजदा करता है, उसके कटाक्ष से सूर्य अस्त हो जाता है, उसके खड्ग मे स्थिर विजली हे, उसके आने से जो धूल उडती है, वही मानो उसकी ध्वजा हे और वह एक वादल की तरह हे। लो, वह आ रहा है, दुन्दुभि कडकड-गडगड वज रही है। क्या इतने दिनो वाद सुरासुरजयी वह युगावतार—कालापहाड उठा ?'

पाषाण पुरीर खिल खुलि जाय, दूर हते सुनि हु हुकार
पूजावेदीमूले हेमतैजस झकार करे आशकार

—"पाषाण पुरी की सिटकनिया दूर से उसकी हुकार सुनकर खुल जाती हैं, पूजा की वेदी के सोने के वर्तनो से आशका की झकार निकलती है। विराट मन्दिर के जगी कब्जे स्वय निकलकर भाग-से जाते हैं, अधेरे गह्वर मे हाहाकार

छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप-से-आप टुकडे-टुकडे हो जाते है। पुजारी-पडे भडे उतारकर आगन मे पटखनी खाकर गिर पडते है। सुनो, वह नगाडा वजाते हुए आ पहुचा कालापहाड ।"

वनफूल उर्फ बलाईचाद मुखोपाध्याय

'वनफूल' एकमात्र आधुनिक बगला लेखक तथा कवि है, जो अपने उपनाम से ही परिचित है। ये एक प्रमुख उपन्यासकार, कहानी-लेखक तथा नाटककार भी है। इनकी कविताओ का छन्द तथा भाषा सुन्दर होती है। मुख्यत उन्होंने हास्यरस की कविताए लिखी है। नीचे 'छात्री ओ छात्र' नामक एक कविता दी जाती है।

छात्री ओ छात्र
चिरकालइ हय तारा
निन्दार पात्र
पडाशोना व्यापारेते मन नाइ कारु वा
वेशविन्यासे केऊ चकचके चारु वा
आधुनिकमना केह सिनेमार भक्त
खद्दरधारी कारो मतामत शक्त
केऊ भारी भीतु-भीतु, केऊ भारी क्षात्र,
छात्री ओ छात्र।

—"छात्राए और छात्र हमेशा वेचारे निन्दा के पात्र होते है। पढने-लिखने मे किसीका मन नही लगता, कई वन-ठनकर वडी टीमटाम से रहते है, कई नये फैशन के है तथा सिनेमा के भक्त है, कोई खद्दरधारी है, उनकी राय वडी कठिन है, कोई डरपोक है तो कोई क्षात्र हैं। छात्राए और छात्र।"

इस कविता का जो कुछ कवित्व है, वह छन्द मे ही होने के कारण अनुवाद देना उचित नही लगा।

सजनीकान्त दास

सजनीकान्त दास एक विख्यात आधुनिक कवि हैं। उन्होने प्रेम के देवता को जैसे सम्बोधन किया, उसमे कुछ पक्तिया ऐसी है कि उन्हे पढकर कुछ पाठको को

शायद विचित्र लगे। हम केवल उन्ही पक्तियो को उनकी विचित्रता के लिए देते है

> मृत सागरेर चारि पाडे आज आमरा कोरेछि भीड
> भीड करियाछि गाढ तिमिरेर तीरे
> कादितेछि अनाहारे—
> रुटी नई प्रभु, मोछेर टुकरा नाई।
> तुमि एसो-एसो, ए मृत सागर पाये हेटे हश्रो पार,
> भास्वर देहे दाडाश्रो अन्धकारे।
> क्षुधित जनेरे रुटी दाश्रो, जल दाश्रो,
> प्रेम दाश्रो प्रभु, तोमार अमर प्रेम।
> धन्य कोरेछो मानुषे एकदा मानुषेर रूप धरि
> से मानव मरियाछे
> तोमार परशे मृतेरा लोभुक प्राण

—"मरे हुओ के सागर की चारो दिशाओ मे आज हम जमा है। हमने गाढ अन्धकार के तीर मे भीड की है। हम अनाहार से रो रहे है। हे प्रभु, रोटी नही है, मछली का टुकडा नही है। तुम आओ, आओ, इस मृत के सागर मे पैदल चलकर पार होकर आओ। अधेरे मे भास्वर देह से खडे हो जाओ। भूखो को रोटी दो, पानी दो, प्रभु प्रेम दो—अपना अमर प्रेम। एक जमाने मे तुमने मनुष्य का रूप धरकर मनुष्य को धन्य किया था। वे मानव, जिनमे तुम पैदा हुए थे, मर गए है, मरे हुओ को तुम्हारे स्पर्श से जीवन मिले।"

इस कविता का भाव तथा भाषा सब रवीन्द्र-सत्येन्द्र से पृथक् है। स्वप्न-लोक की अस्पष्टता इसमे नही है। इसमे है तेजस्वी परुष वास्तविकता। ज़रा कवि के साहस को देखिये। वह प्रेम के देवता से पुष्पक विमान या गरुड पर न आने को कहकर पैदल आने को कहते है। फिर उनसे शिकायत यह नही करते कि आजकल की कालेज-किशोरिया प्रेम नही चाहती, मोटर चाहती है, वल्कि कहते है, रोटी नही है, मछली का टुकडा नही है। वह उनसे प्रेम नही मागते, वल्कि मागते है रोटी, पानी, फिर सबसे पीछे प्रेम मागते है। 'मनुष्य केवल रोटी से नही जीता' की कैसी नई व्याख्या है।

कहा जा सकता है कि यह कोई कविता नही है। विचार्य है। हमने पहले

ही कहा, एक नई धारा पैदा हो चुकी है, किन्तु जबतक कोई महान् प्रतिभा पैदा नही होती, जो अपनी आत्मा के अन्दर इस नई धारा का परिपाक कर उसको एक कलामय रूप देने मे समर्थ हो, तबतक यही सन्देह होता रहेगा। फिर रवीन्द्रनाथ को भी तो पूर्ण तरीके से समझने मे समय लगा था।

रवीन्द्रनाथ मैत्र

श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र कुछ बडी मार्मिक कहानियो के लेखक के रूप मे प्रसिद्ध हुए थे, किन्तु उनकी कविताओ मे भी हम एक आधुनिक की आत्मा को स्पदित होते हुए पाते है। वह बडे जोरो से लिखते है

धरणीर बुके
धूलाय लभेछि जन्म, देवत्वेर नाहि अहमिका
सब अगे माखि धूलि, आंकि भाले पंक जयटीका।
पथ बाहि चलि गर्व-सुखे
स्वर्गपाने तुलि अश्रु सिक्त समुज्वल मुखे।

"धरणी की छाती पर धूल मे हमारा जन्म हुआ है, देवत्व की अहमन्यता मुझ मे नही है। सब अगो मे धूल लिपटा लेते है, ललाट पर कीचड का जयटीका लगाते है। हम गर्व तथा सुख से रास्ते मे चलते है, स्वर्ग की ओर हमारा सिर उठा रहता है और मुख अश्रुसिक्त समुज्ज्वल होता है।"

दभभरे खरदृष्टि हाने
जाहारा दाडाये दूरे नाहि चाहि ताहादेर पाने
दाडाये माटिर परे स्वरगेर करे अभिनय
तारा—मोर नय, केह नय।

—"जो लोग दूर से खडे-खडे घूरते है, हम उनकी ओर नही देखते। जो लोग दूर खडे है, हम उनकी ओर नही देखते। जो मिट्टी पर खडे रहकर स्वर्ग का अभिनय करते है, वे हमारे नही है, नही, वे हमारे कोई नही होते।"

कवि वेदना से ही अपनी अनुप्रेरणा लेते है, वह कहते है

धरणीर जन्मतिथि हते
मानुष भासिया चले दु खज्वाला वेदनार स्रोते
शका ओ सशय द्विधा लज्जा भय सघाते फेनिल
... .

जतो वेदनार हाहा डुबे जाय केह नाही सोने
आमि कान पाति
सुर खु जि तारे माझे, ताइ दिये गान मोर गाथि

—"धरणी की जन्मतिथि से ही मनुष्य दु ख-ज्वाला की वेदना के स्रोत मे बह चलता है । वह स्रोत भी कैसा हे कि शका, सशय, द्विधा, लज्जा तथा भय के सघात से फेनिल । वेदनाओ के जितने हाहाकार डूब जाते है, उन्हे कोई नही सुनता, मै कान खडे कर उन्हे सुनता हू, उनमे सुर खोजता हू तथा उन्हीसे अपना गान पिरोता हू ।"

कवि मनुष्य को रक्त, मास, अस्थि तथा भ्रान्ति से बना पाते हैं । थोडा-बहुत इस जीवन मे सुख शायद होता, किन्तु उसके बीच मे जाकर मृत्यु को बैठा दिया गया है । मरीचिका के लिए दौड जारी है, कवि भी दौडनेवालो के हाथ-मे-हाथ डालकर दौड रहे है । कवि ने कभी कोई गान नही सुना, आनन्द कहा है, उसका सन्धान नही पाया है, देवतागण लाखो पहरेदारो के बीच लोहे की दीवारो से घिरे रहकर भवरहीन मन्दाकिनी के किनारे, चिरश्याम पारिजात के नीचे बैठकर, आनन्द-अमृत का जो दौर चलाते है कवि उसके स्वाद से परिचित नही । युग के बाद युग आता है, किन्तु कवि वही एक भाषा तथा अपूर्ण अतृप्त साध पेश करते हे । चारो दिशाए प्रवचित पिपासा के हाहाकार से भर उठती है । कम्पमान करो से प्याला गिर पडता है, इसपर कवि आर्त्तनाद करते है, पानी समझकर मुट्ठियो से पागल बालू खोदते है । उसीके ताल पर कवि छन्द बनाते हैं, उसीसे गान बनाते है ।

नि सदेह यह एक नया जगत है ।

रवीन्द्रनाथ मैत्र से बगला साहित्य को बडी आशाए थी, किन्तु ३६ साल की उम्र मे ही उनकी मृत्यु हो गई । ऊपर की कविता केवल एक उच्छ्वास भर न थी । उन्होने बराबर अपने जीवन मे उन्हीकी सेवा की, जिनको कोई टका सेर नही पूछता और उन्हीके विषय मे लिखा । जिन पिछडे हुए पतितो की अवरुद्ध वेदना भीतर-ही-भीतर दम घुटकर रह जाती थी, उनकी उस वेदना को भाषा देकर सुलगा देना उनकी लेखनी की विशेषता रही ।

प्रेमेन्द्र मित्र

प्रेमेन्द्र मित्र बगला के बहुत बडे प्रतिभाशाली कवि तथा उपन्यासकार है,

उनके सम्बन्ध मे एक ज्ञातव्य बात यह है कि काशी मे उनका जन्म (सन् १६०४) हुआ। उन्होने स्वय ही कहा है

आमि कवि जतो कामारेर आर कासारिर आर छुतोरेर
मुटे मजुरेर
आमि कवि जतो इतरेर

—"मैं लोहारो ठठेरो का, वढइयो का, कुली तथा मजदूरो कवि हू, मैं सव इतरो का कवि हू।"

बुद्धदेव वसु ने प्रेमेन्द्र के सम्वन्ध मे जो लिखा है वह ध्यान देने योग्य है। वह लिखते है, "प्रेमेन्द्र की कविता उनकी स्वकीयता के द्वारा उज्ज्वल है। उनकी कविता दुनिया की छोटी-से-छोटी चीज से लेकर मनुष्य के भाग्यविधाता के चरण-प्रान्त तक विस्तृत है। पुराने अखवार, भाडे के मकान से लेकर सीमाहीन आकाश मे घूमते हुए ग्रह-उपग्रहो तक उनकी गतिविधि है। उनकी रचना-रीति ओजस्वी है, भाव-प्रगाढता के गतिवेग से वह स्वय ही तीक्ष्ण हो जाती है। मनुष्य की व्यर्थता, हीनता तथा दुर्बलता के सम्वन्ध मे गहरी चेतना ही उनके काव्य का मूल सूत्र है। मनुष्य के घर मे उनका देवता जन्म लेता है, किन्तु घटनाओ के सघात से ज्ञात होता है कि देवता कही नही है।"

आज
विकृत क्षुधार फादे बन्दी मोर भगवान कादे

—"आज विकृत भूख के जाल मे कैदी होकर मेरा भगवान् रोता है।"

आधुनिक गणतान्त्रिक भाव उनकी कविता मे स्पष्ट है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'महासागरेर नामहीन कूले' नीचे दी जाती है

महासागरेर नामहीन कूल
हतभागादेर बन्दरटीते भाई,
जगतेर जतो भाडा जाहाजेर भीड।
माल बये-बये घाल होलो जारा
आर जाहादेर मास्तुल चौचिर
आर जाहादेर पाल पुड़े गोले
बुकेर आगुने भाई
सब जाहाजेर सेई आश्रय-नीड़

—"महासागर के नामहीन किनारे पर अभागो के वन्दर मे दुनिया के कितने ही टूटे जहाज़ो की भीड है। जो माल ढोते-ढोते टूट गये, जिनकी मस्तूलो के धुर्रे उड गये, जिनके पाल सीने की आग से जल गये, उन सव जहाजो का यह आश्रय-नीड है।

"वडे-वडे अथाह कालेपानियो को मथकर, नमकीन पानी मे डूवते या नहाते, डूवे पहाडो के धक्को' को निगले हुए तथा आधी से झकझोरे हुए जितने लवेजान जहाज वेकार हो चुके है तथा जिनके अजर-पजर ढीले हो चुके है, उन सव वेकार निष्प्रयोजनीय जहाज़ो की भीड इन अभागो के वन्दर मे है।

"भाई, दुनिया मे वडी कडी चौकीदारी है। यहा सौदागर भी वडा होशियार है। जिसके पतवार अव पानी मे कुछ कर नही पाते, उन्हे चुपचाप हट जाना पडता हे। जिसके कमर का जोर घट गया, जिसकी लकडी मे घुन लग गया, जिसका कलेजा फट गया या जन्मभर के लिए जो जख्मी हो गया, सौदागर की जेटियो मे वहियो मे ढूढकर जिनका कही स्वामी नही मिलेगा, उन जहाज़ो को महासागर के इस नामहीन किनारे पर अभागो के वन्दर मे कोई भी पा सकता है। यहा उन्ही सव टूटे जहाज़ो की भीड है।

"जिनकी रीढ टेढी हो गई और रस्से टूट गये, कब्जे और कल विगड गये, जिनका सव ठाठ जाता रहा, झडा नीचा हो गया, जोड खुल गया, छेदो के मारे जिनमे अव तैरते रहने की सामर्थ्य नही रही, उन सव अभागे असमर्थों तथा निर्वासितो की यहा भीड है।"

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय एक ऐसे कवि है जो दो युगो की गोधूलि मे रहते है। कभी उनका कदम इस युग मे रहता है तो कभी उस युग मे। 'आजो जारा मरे नाई' कविता मे वह मृत्यु पर एक अजीवोगरीव दृष्टि डालते हैं। वह मृत्यु को अनिवार्य पाते है, हर घडी वह जैसे मनुष्य का खून पीने के लिए उद्यत है। ऐसी परिस्थिति मे जो लोग जीते हे, कवि उनके ललाट पर अमृत का जय-टीका अकित कर देते है। यही तो पुरुपार्थ है—

आजो जारा मरे नाई, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाले
समिध सग्रहे व्यस्त, झझाक्षुब्ध दिक्चक्रवाले

उत्कर्ण होइया आछे प्रत्यासन्न आह्वानेर लागि,
दुर्विषह दिवसेर ग्लानि ढाके अन्ध निशा जागि
विस्फारित नेत्रपाते तारा देखे नव सूर्योदय
तादेरि निर्भीक कंठे विश्व प्राण लभिबे अभय।
आजो जारा मरे नाइ मरिबार सहस्र कारणे,
खुंजिया पेयेछे वाणी धिक्कृत एक जीवन-धारणे
अकरुण वचनाय अवहेलि गनिछे प्रहर
सहस्र लाछना माझे तुलितेछे हासिर लहर,
मरिया न मरे तारा, अनिवार्य मृत्यु पथगामी
रुधिराक्त चक्रनेमि तादेरि इगिते जाए थामि'
आजो जारा मरे नाई, मरिबे ना तारा कोने काले
अमृतेर जयटीका चिराकित ताहादेरि भाले

—"आज भी जो लोग नही मरे है, प्रज्वलित मृत्यु-यज्ञशाला मे समिधा संग्रह करने मे व्यस्त है, आधियो से क्षुब्ध क्षिति मे आनेवाली पुकार के लिए उत्कर्ण है, वे असह्य दिन की ग्लानि अन्धेरी रात जागकर ढकते है। फिर भी आखो को विस्फारित कर वे नया सूर्योदय देखते है, उन्हीके निर्भीक कठ से विश्व को अभय प्राप्त होता है।

"मरने के सहस्र कारणो से भी आज जो नही मरे, इस धिक्कृत जीवन को धारण करने के लिए उन्होने वाणी खोज पाई है। जब अकरुण वचनाए आती है तो वे धैर्य धारण कर पहर गिनते है, सहस्र लाछनाओ मे वे हँसी की लहर पैदा कर देते है, वे मरकर भी नही मरते, उनके इशारे से मृत्युपथगामी रुधिराक्त चक्रनेमि ठहर जायगा। जो आज भी नही मरे वे कभी भी नही मरेंगे, अमृत का जयटीका हमेशा उनके ललाट पर अकित है।"

इसका साराश यह है कि आधुनिक कवि मृत्यु की वास्तविकता को समझता है, फिर भी वह आशावादी है।

अचित्यकुमार सेनगुप्त

अचित्यकुमार बंगला के बहुत शक्तिशाली लेखको मे है। वह बंगाल सरकार के न्याय-विभाग मे नौकर रहे, फिर भी वह साहसी लेखको मे समझे जाते हैं।

इनकी शैली तेजस्वी तथा व्यक्तित्व-व्यजक, दृढता की द्योतक तथा अनायास है। उपमा, व्यजना तथा वर्णन मे वह पूर्णत स्वतन्त्र हे। वह कवि के अतिरिक्त उपन्यासकार तथा कहानी-लेखक है। प्रकृति और मानव दोनो से उनका सम्बन्ध है, उनकी कविता मे प्रकृति प्रकृति के लिए इस प्रकार की प्रकृति-पूजा नही है, वल्कि मानव और प्रकृति को एक ही चीज के दो पहलू करके दिखलाया गया है। प्रकृति उनके निकट अर्थमयी इस कारण है कि वह मानवीय है। वह कहते है—

आमार परान मुखर कोरेछे सिन्धुर कलरोले
प्रभजनेर प्रतिपदपाते आमार परान दोले
आमार पराने भाई
कोटी मानवेर अश्रुजलेर जोयार शुनिते पाई
सूर्येर बुके की भूख जागिछे आमार परान जाने
कीटेर पाखार अस्फूटतम वेदना आमारे हाने
आमार पराने भरा
ए पथचारिणी वसुधरार अकारण घुरे मरा।

इत्यादि

—"मेरी आत्मा समुद्र के कलकल नाद से मुखर है, वायु के प्रति पदक्षेप से मेरा हृदय आन्दोलित होता है। अपनी आत्मा मे करोडो मनुष्यो के अश्रु की बाढ सुन पाता हू। सूर्य के हृदय मे कौन-सी भूख है, मेरी आत्मा जानती है, एक कीडे के डैने की अस्फुटतम वेदना मुझे दुखी करती है। मेरी आत्मा मे पथ-चारिणी वसुन्धरा का अकारण घूमना भरा है। वनानी की वीणा मे मेरा व्याकुल प्राण शव्द कर उठता हे। घास की सभा मे मेरा प्राण हरा हो जाता है, मेरे प्राण मे प्रत्येक पुष्प का रग-विरगा जादू सिहर उठता है, मेरे ही प्राण को निचोड निचोडकर आकाश नील हो गया है। कहीपर कुछ खाली नही रहा, मेरे प्राणो मे विश्व-वेदना का छत्ता जमा हे। दीर्घ श्वास की दरिया उसमे आन्दोलित हो रही है, मरुभूमि की शून्यता, अन्धकार की कातर व्याकुलता, गिरी हुई कली की व्यथा वहा है। मेरे प्राणो मे युगान्तर की मृत्यु की निशा मूर्च्छित है।"

सच बात तो यह है कि इस कविता में कुछ ऐसी बातें हैं, जो रवीन्द्रनाथ का स्मरण दिलाती हैं।

अन्नदाशंकर राय

अन्नदाशंकर राय का जन्म उड़ीसा के ढेकानल राज्य में हुआ। विलायत में आई० सी० एस० पढ़ते समय इन्होंने पहली पुस्तक लिखी। भाषा इनकी विशेष रूप से सुन्दर है। मालूम होता है जैसे एक-एक शब्द के पीछे साधना है। साहित्य में ये देवत्व का नहीं मनुष्यत्व का नारा बुलन्द करते आये। कवि से ये कहीं बड़े कहानीकार तथा उपन्यासकार हैं। इनका एक उपन्यास 'सत्यासत्य' अढ़ाई हजार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक कविता में वह कवि को अपनी तस्वीरों की झोली प्रकृति से भर लेने के निमित्त पुकारते हैं—

ओरे कवि तोर छबिर पसरा
भरिया लइबि आय
उत्सवमयी साजियाछे धरा
वसन्त नाटिकाय
आज पेये जाबि जाहा चाय मन
एतो मिठा लागे भानुर किरण
पाखिदेर सने वने मनोरण
एतो शोभा दिये जाय

प्रतिष्ठा कह सकते है। नये कवि इसमे अपने पहलेवालो से पीछे नही है, किन्तु साथ ही वे इस पृथ्वी को, उसकी मिट्टी तक को, वहुत प्यार करते है। अन्नदा-शकर इसी कविता मे कहते है—

ए जे आमादेर सेई आदरिणी
सूर्यवदना सोनार मेदिनी एर
प्रति तिल चिनि चिनि चिनि
प्रतिटी अगमय ।

—"यह तो हमारी वही प्यारी सूर्यमुखी सोने की पृथ्वी है। इसके तिल-तिल तथा अग-अग को जानता हू। वगला मैं जानता हू और चीनी एक ही तरह से लिखे जाने के कारण कविता मे और विचित्रता आ गई है।

अजितकुमार दत्त

अजितकुमार दत्त ने प्रेम पर सुन्दर सानेट लिखे है। सानेट लिखने के लिए शब्दो की जो मितव्ययिता तथा सारगर्भिता चाहिए, वह अजितकुमार दत्त मे है, फिर भी उनका विषय एक ही होने के कारण वह कोई वडे कवि न हो सके। प्रेम पर लिखी हुई उनकी कविताए आधुनिक है, इसमे सन्देह नही। एक सानेट मे आधुनिक की तिक्तता के साथ शुरू करते हैं—

नाहि जानि तथागत बुद्धेर बचन सत्य किना—
पुनराय जन्मलाभ आछे किना अदृष्टे आमार,
चार्वाकेर तिक्त बाणी, 'भस्मीभूत ए देहेर आर
पुनरागमन नाइ', सत्य किना से—कथा जानि ना

—"मालूम नही, तथागत वुद्ध का वचन सत्य है कि नही, मालूम नही फिर से जन्म पाना मेरे अदृष्ट मे है कि नही, यह भी नही मालूम कि चार्वाक की कडवी वात 'भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहा' सच है कि नही। यदि यह जीवन अर्थ, यश या मान के विना भी कट जाय तो मैं इनके लिए फिर जन्म लेना नही चाहता। मैं नये वस्त्र की तरह देह लेकर मोक्ष की आकाक्षा कर पृथ्वी मे नही आना चाहता।

"मैं इस जीवन मे केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हू, मैं तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हू। मैं कविता मे उन्ही वातो का सग्रह करना चाहता हू

जिसको किसीने कभी नही कहा, दूसरे भला तुम्हारी बातें किस प्रकार जानेंगे ? इस जीवन मे तो तुम हो, तुम रहो, उसके बाद जब मैं मर जाऊगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता मे अमर होकर रहेगा।"

कवि को मौलिक रूप से हम रवीन्द्र-युग के कवियो से पृथक् कर नही सकते, अवश्य उनकी शैली मौलिक रूप से भिन्न है। दर्शन-प्रधान रवीन्द्रयुग से भिन्न इस शैली की क्रान्तिकारिता के कारण हम अजितबाबू को अति-आधुनिक समझने के लिए बाध्य हैं। कवि का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत प्रेम है, यह वही विषय है जिसे विद्यापति, चडीदास, जयदेव ने अपनाया था, किन्तु विषय के प्रति रुख मे नूतनत्व है।

बुद्धदेव बोस

बुद्धदेव बोस इस समय के बगला लेखको मे बहुत शक्तिशाली है। कहानी उपन्यास, कविता, नाटक, समालोचना सभी क्षेत्र मे उन्होने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका एक उपन्यास 'एरा आर ओरा' अश्लीलता के जुर्म मे जब्त हो चुका है। इस समय ये 'कविता' नामक कविता-विषयक पत्रिका के सम्पादक भी है। इनकी रचना मे इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय पग-पग पर मिलेगा। यह आश्चर्य की बात है कि बुद्धदेव की पुस्तको का अभी हिन्दी मे अनुवाद नही हुआ। बुद्धदेव की 'शापभ्रष्ट' कविता बहुत लम्बी है, नही तो हम उसे यहापर देते। हम 'आर किछु नाहि साध' नामक उनकी कविता देते हैं। यह एक तरह से कवि की आत्म-कहानी है.

आर किछु नाहि साध। जानि, मोर तरे नहे जयमाल्य
यशेर मुकुट
विश्वेर कविरा जतो ज्वलिछे नक्षत्र हये रजनीर
श्यामल-अंचले

—"मेरी और कुछ साध नही है। जानता हू, मेरे लिए न तो जयमाला है, न यश का मुकुट है। विश्व के कवि नक्षत्र होकर रजनी के श्यामल अचल मे विराजमान है, वहा भी मेरा स्थान नही है। नील आकाश के नीचे मेरी स्तुति का गान नही मुखरित होगा.. नर-चित्त के भक्ति-तीर्थ मे मेरा नित्य स्वर्ग नही है। मृत्यु का कडवा कालकूट मेरा चरम भाग्य है। मै जानता हू

इक्कीसवी सदी की कोई सप्तदशी मेरी कविता को चादनी-स्नात जगले के नीचे नही पढेगी।

"फिर भी आज सगीत की जो लहर हृदय के हिम-सरोवर मे जग रही है वह केवल तुम्हारे लिए है। तुमको जो मैने सब अगो मे, मर्म मे, मन मे, प्राण मे पाया था, तुमको विरह के स्पन्दमान अन्धकार मे तथा मिलन वासर मे पाया था, यही बात मै आकाश, धरणी, घास को तथा समुद्र के कान मे कहना चाहता हू। इस परिपूर्णता का बोझा अकेले-अकेले मुझसे ढोया नही जाता, इसलिए हजारो मे अपनेको लाखो गानो मे बाटता फिरता हू।"

पाठक यह देखेंगे कि यह कविता अजितकुमार दत्त की कविता से भिन्न नही है। मैंने इस अध्याय के प्रारम्भ मे कहा है कि कई कारणो से आधुनिक भारतीय साहित्य अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से खोज नही पाया है। यह जो कहा गया था कि हमारा काम इस जगत की केवल व्याख्या करना नही है, बल्कि उसे बदलना है, इस बात को हमारे यहा के लेखको ने अभी नही समझा है। हमारा साहित्य इसलिए वास्तविकता के पास आने पर भी वास्तविक नही हो पा रहा है। बुद्धदेव बोस मे लेखन-शक्ति है, सूक्ष्म दृष्टि है, भाषा का ऐश्वर्य है, फिर भी वह किसी तरह से ख्याली दुनिया मे रह-से जाते हैं।

बुद्धदेव मे इसी समझ या प्रेरणा का अभाव होने के कारण वह गुमराह होकर अश्लीलता की ओर गये। सौभाग्य से बुद्धदेव उधर से लौटे है, किन्तु अब भी वह राह खोज रहे है। बुद्धदेव की 'व्याड' (मेढक) नामक एक कविता पाठको के सामने अनुवाद मे प्रस्तुत की जाती है

"वर्षा मे ही मेढक की पाचो उगलिया घी मे होती है। पानी बरसना बन्द हुआ ही है, आकाश तो चुप है, किन्तु मेढको का एक साथ लगाया हुआ नारा सुनाई पड रहा है। उन्मुक्त कठ का ऊचा सुर आदिम उल्लास मे बज रहा है, आज न तो विच्छेद का न भूख का न मृत्यु का ही, भय है। घने बादल घास हो गये, स्वच्छ पानी मैदानो मे जमा है, उद्धत आनन्द-गान से उत्सव का दोपहर कटता है। स्पर्शमय वर्षा आई, नया कीचड कितना चिकना है। मेढक मानो स्फीतकठ स्फीतस्कध सगीत का शरीरधारी सप्तम है, अहा यह मेघ की हरी-हरी कान्ति कैसी चिकनी है। मेढक की दृष्टि काच की तरह इकटक ऊपर की ओर लगी है,

अहा जैसे ध्यानमग्न ऋषि की तरह ईश्वर को खोज रहा है। पानी बरसना बन्द हो चुका, दिन खतम हो रहा हे, स्तम्भित आकाश मे गम्भीर वन्दना-गान वज रहा है। ऊची आवाज धीमी हो रही है, दिन की अब आखिरी सासे चल रही हैं। अन्धकार शतच्छिद्र एकच्छन्दा तन्द्रा को बुला रहा है। आधी रात मे किवाड बन्द कर हम आराम से विस्तरे पर लेटे है, स्तव्ध पृथ्वी मे केवल एकाकी उत्साही अक्लान्त एक ही सुर सुनाई पड रहा है, निगूढ मन्त्र का जैसे आखिरी श्लोक हो, मेढक का उच्चारित क्रोंक, क्रोक, क्रोक।"

मेढक के विषय मे इतनी वडी कविता और उसे ईश्वरभक्त ऋषि वतलाना, यह एक आधुनिक कवि का ही काम है।

हुमायू कवीर

हुमायू कबीर को बगाल के बाहर लोग मुसलमानो के एक राष्ट्रीयतावादी नेता और वाद को केन्द्रीय शिक्षा-विभाग के एक उच्च अधिकारी और मत्री के रूप मे जानते है। कोई नही जानता कि वह बगला के एक वडे कवि है। उन्होने अपनी कुछ कविताओ का अग्रेजी मे अनुवाद कर विलायत मे छपाया है, अच्छी-अच्छी पत्रिकाओ ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। प्रकृति को वह सुन्दर देखते है, किन्तु जव प्रकृति और मनुष्य के स्वार्थ मे सघर्ष होता है तो मनुष्यो का यह कवि, प्रकृति को आडे हाथो लेने मे नही चूकता। बगाल मे गगा की दो शाखाए हो गई है—एक भगीरथी, दूसरी पद्मा। पद्मा इसके लिए मशहूर है कि अक्सर अपना पथ वदलती है, और जो भी गाव इत्यादि उसके रास्ते मे आ गये, उनकी खैरियत नही। इस प्रकार पद्मा प्रकृति का एक अद्भुत रूप है। कवि ने कई कविताए इसीपर लिखी हे। मालूम होता है, कवि को यह विषय उसी तरह प्यारा है, जैसे दर्दवाला दात जीभ को, इधर-उधर गई और उस दांत के पास पहुच गई। हम इस कविता के कुछ अश नीचे देते है—

बहुदिन परे आजि रोगजीर्ण आखि दुटि मेलि
हेरिलाम तोरे।
आवरणेर घनघटा एइ पु ज मेघेर आडाले
अपूर्व योगिनीवेशे मुक्तकेशे आसिया दाडाले
नयनेर आगे मोर। लुब्ध क्षुब्ध उर्मिराशि ठेलि
चलेछे गहिया शुधु—आविल सलिलराशि तव

> नेचे ओठे मरणेर ताडव नर्तने नव-नव—
> चिरमुक्ता—धरा दिबिनाको कोनो डोरे ?
> शैशव-जीवन हते तोरे आमि देखितेछि नदी
> पाइनाको शेष ।

—"वहुत दिनो वाद रोग-जीर्ण आखो को खोलकर मैंने आज तुझे देखा । श्रावण की घनघटा इस मेघपुज की आड मे तू एक अपूर्व योगिनी के वेश मे वाल खुली हुई हालत मे मेरे सामने खडी हो गई । क्षुब्ध, रुद्ध लहरो को ढकेलती हुई तू वह चलती है । तेरा आविल जल मरण के नये-नये ताडव-नर्तन मे नाच-नाच उठता है । हे चिरमुक्ता, क्या तू किसी भी डोरी से पकडाई नही देगी ? मैं वचपन से तुझे, हे नदी, देख रहा हू, फिर भी तेरा अन्त नही पाता ।

"कभी तो शरत के प्रात काल मे तू पूर्णवारि, शान्त और अचचल है, कलकल-कलकल तेरा पानी चलता जाता है, कभी वैशाख की सन्ध्या मे यदि वादल गये तो प्रलय—नर्तनछन्द से तुम्हारा प्राण नाच उठता है, तव तुम्हारे सलिल से ध्वसलीला का गीत निकलता हे, उस समय तुम्हारे नयनो मे करुणा का लेश नही हे ।

"वाल रवि की किरणो मे, हे नदी, मैने तुम्हारी फिर दूसरी ही हँसी देखी है, पूर्णिमा के प्लावन मे तुम्हारे किनारे पर कास फूले है, अधीर पवन मे मादक पुष्पो की गध तैरती रहती है । तुम्हारी मुग्ध जलराशि फिर भी दौडती है । हृदय मे धनधान्य लेकर तथा दामन को वनपुष्पो से सजाकर सुहाग-लज्जा से पूर्ण एक किनारे से दूसरे किनारे तक मृदु वाणी होकर दौडती हुई जाती हो, जैसे किसीको प्यार करती हुई दूर जा रही हो। आज फिर मैने तुम्हारा यह क्या नया रूप देखा, भैरविनि की तरह वनी हुई हो, आकाश मे मेघो की घटा है। अकस्मात् तेरा स्रोत सूर्य की किरणो से छुरी की तरह चमक उठता है, यह मानो तेरे हिंस्र दन्त तथा होठो पर कुटिल हँसी है, तेरे निठुर नयनो मे हत्या की साव वाघ की हत्या करने की इच्छा की तरह इस शान्त, स्मित आलोक मे स्पष्ट हो जाती है । तू प्रवल है, दुर्वार है, अत्याचारी है, श्यामशोभावाले देश को तोड-फोडकर पृथ्वी मे अपना झक्की पथ वनाती रहती है । तू किसीकी नही सुनती, फिर भी नर क्या करे, रोता है, किन्तु एक-दूसरे को सीने से लगाकर जीता है। वाहर विशाल विश्व अपने कठोर जाल को विछाता

रहता है, फिर भी मनुष्य बैठा रहता है, सब सुख तथा दुःखो मे आखे ऊपर किये हुए।"

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है। 'पद्मा' नदी पर उनकी अपेक्षाकृत ताजी एक कविता नीचे दी जाती है

दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
पद्मा मोर।
आबार श्राडने तोर कूले-कूले भाडन लेगेछे जोर ?
नेमेछे वर्षा घोर।
चरेर चिह्न धुये मुछे दिये
विपुल सलिल सभार निये
यौवन तोर वोये निये जास काहार दोर ?
के मनोचोर ?
पद्मा मोर।

"मेरी पद्मा, दूर देश मे तुझे बहुत दिनो तक भुलाकर था। फिर श्रावण आने से तेरे किनारे सब टूट रहे है, घोर वर्षा उतर आई है। सुखी का चिह्न धो-पोछकर, विपुल सलिल भार लेकर, अपने यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है? किसने तेरा मन चुराया है, मेरी पद्मा।"

प्रकृति और मानव का सघर्ष इस कविता मे अधिक स्पष्ट है—

सबुज मायाय भरेछे दुकूल तबो
पद्मा मोर।
जलेर किनारे एसेछे दुर्वा नव
तोबु दया नाही नाही तोर ?
अतिथि शिशुरे शासास कि करि ?
निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी
ठिकरि पड़िछे क्षुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तबु एतो तोर
हिया कठोर ?

"हरी माया से तेरे दोनो किनारे भरे है, मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दूर्वा आई है और फिर भी तुझे दया नही है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस

प्रकार कही दुत्कारा जाता है। तेरे निष्ठुर प्रहारो से वह हर घडी सिहर उठती है, तेरे क्षुरधार स्रोत मानो निरन्तर चटक रहे है। देखने मे तू इतनी कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है, मेरी पद्मा ?"

कवि फिर पद्मा से पूछता है, "तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है ? दुःख के दहन मे तू बार-बार मनुष्य का नकली-असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो आती है, सत्य रोज के अभ्यास से याने रोज प्रयोग मे आने के कारण लुप्त हो जाता है, वही तेरी लीला ध्वस के उल्लास मे है। मेरी पद्मा, ध्वस के साथ ही सृष्टि का ताना-बाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा बद्दू ही रह गये, दो दिन के लिए किनारे पर घर बाधते हैं, फिर न जाने दो दिन बाद कहा चले जाते हैं ?"

'पद्मा' कविता मे कवि ने नदी को उपलक्ष्य कर मनुष्य-विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो सघर्ष सृष्टि के आदि से चला आया है, उसीकी एक झलक इस कविता मे है, वही प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है, यह इस कविता मे दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार जिद्दी है, प्रकृति ने जरा ढील दी कि आगे बढा, जरा तीव्र हो गई कि पीछे हट गया, यह बात पद्मा-किनारे मनुष्य के यायावर होने से दिखलाई गई है।

हुमायू कबीर अच्छे उपन्यासकार भी रह चुके है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन-धर्मी' नामक कविता मे हम इस युग के कवियो की मनोवृत्ति का पता पाते है। वह कहते है—

> आमरा यौवन-धर्मी-एई विशो शतकेर तरुण तापस
> बाचार साधना कोरि—ठीकमतो बाचा जाके बले—
> रुटिनेर दास नई, बाँधा पथे कोभु पथ चलिबोना,
> पथ के मानि ना मोरा, यदि सेई पथार पाँचिले,
> सार्थकतार आमलेफुसे, पथार कठिन पाथरे
> सार्थकजु डे अरे आत्मा असहाय, असह्य सुषमाय।

—"हम यौवन-धर्मी है, हम बीसवी सदी के तरुण तपस्वी है, जीने की साधना

करते है, याने ठीक तरह से जीना जिसे कहते है वह जीते है। हम बधी-बधाई चर्या के दास नही है, लकीर के फकीर हम कभी नही हो सकते। प्रथा को हम कभी नही मानते, भले ही प्रथा-रूपी दीवार के मान्धाता के युग के कठोर पत्थर मे असहाय आत्मा असह्य भूख मे सिर दे मारे।

"हम यौवन-धर्मी है। कौन कहता है कि हम अपने ही हाथ के बनाये हुए कुछ लोहे के यन्त्रो के गुलाम है? हम यन्त्र के प्रभु है, हम समूची पृथ्वी के मालिक है। अपनी ही इच्छा से हम सबकुछ तोडते तथा बनाते है। जीवन के सभी रास्तो मे हमारी अश्रान्त यात्रा है। जाडा, गर्मी, वर्षा मे हम मैदान के अट्टहास है।

"हमे खाने को नही मिलता। हँसी आती है। हममे से कितने नही पाते। हम ईश्वर के समकक्ष है, हम भाग्य के नियामक है। हमने उत्सुक तगडे हाथो मे इस जीवन की पतवार पकड रक्खी हैं। हमे मालूम है कि हम कहा जा रहे हैं। हर समय हमारे पाल के लिए हवा रहती है, यदि कभी अन्यथा हो तो जानिये कि यह क्षणिक विलास है। हम अपने भाग्य को लेकर बीच-बीच मे खेलते है।

"यदि मेरी कोई रात नारी के केश के गुच्छो मे मदिर मोह के स्वप्न मे कैदी हो, तो फिर दिन मे काम के आगन मे मुझे पसीने से तर हँसी की आड मे पाओगे। यदि किसी दिन मुझे शाल वृक्ष के सिर पर मृदु वायु से हिलते देखो और मुझे नक्षत्र की टिमटिमाती धीमी रोशनी मे चुप बैठे देखो तो मुझे बुलाना मत, मैं उस समय विधाता के साथ बातें करता हू।"

यह देखने की बात है कि इस कविता मे देश की पराधीनता का कोई जिक्र नही है, यद्यपि यौवन-धर्म उन दिनो यदि कोई था तो उसका सबसे पहला कर्तव्य इसी ग्लानि के विरुद्ध सग्राम करना था। आधुनिक कविता यहीपर अति-आधुनिक नही हो पाई, क्या इसकी वजह डर था? कवि लोगो को इसपर सोचना चाहिए।

महीउद्दीन

कवि महीउद्दीन आधुनिक की सबसे बडी विशेषता को 'बुभुक्षा' कहकर व्याख्या करते है। उनकी आखो मे रूप-दृष्टि-तृष्णा है और हृदय मे तृप्तिहीन अनन्त बुभुक्षा है। उनकी समस्त इन्द्रिया रोकर दिन-रात कहती है कि वे भूखी है, भूखी है। वह कहते है—

जडेर जडता त्यजि जीव आमि जन्म कवे लभिलाम भवे
अनन्त सृष्टिर माझे भूमानन्दे ज्योतिष्केर आलोक आहवे
इत्यादि

—"जड की जडता त्यागकर मै जीव इस दुनिया मे पैदा हुआ। मैंने कहा, मैं जड हू, जग गया हू, सीमाहीन शून्य को व्याप्त कर प्रतिध्वनि बन जगा हू, जगा हू। निर्विकार निद्रा-जगत् मे मै न मालूम थका हुआ मुसाफिर कबसे चूर होकर सो रहा था और मैं अपनी उन्मत्त गति का नृत्य-ताल भूल गया था। मैंने इस विश्व की सराय मे पुकारा—भाई मैं वासना का भिखारी हू, रोशनी चाहता हू। छाया चाहता हू, आनन्द से पुलकित महाप्राण चाहता हू।

"जगल काटकर मैंने सोने की नगरी बसाई है। हिमालय की ड्योढी की ओर यात्रा की है, अगाध जलधि के बीच से मोती निकाला है। धन और रत्न से विपुल भडार भर लिया है। अपने ही परिश्रम से मैंने इस भोग के विशाल ससार की सृष्टि की है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रो के रहस्य की मैंने ही खोज की है, पाताल मे राज्य फैलाया, काव्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान की सृष्टि की। मैंने वचित मानव के लिए साम्य, मैत्री, स्वाधीनता के गीत गाये हैं। मैंने भूख से व्याकुल-पीडित मानव के भूखे जठर के गीत गाये हैं, मैंने निर्यातित निर्वासित के लिए फासी का फन्दा गले मे डालकर गीत गाये है।" इत्यादि।

अरुणकुमार मित्र

तरुण कवि अरुणकुमार ने 'लाल पर्चा' शीर्षक एक कविता लिखी है—

प्राचीर पत्रे पडोनि पडोनि इस्ताहार
लाल अक्षरे आगुनेर हलकाय
झलसावे काल जानो ?

इत्यादि

—"क्यो जी तुमने दीवार पर चिपका हुआ लाल-पर्चा नही पढा ? उसके लाल अक्षर आग की तरह रग लायेंगे। (आकाश मे विरोध का उत्ताप घनीभूत होता है। पुरानी बातो की धार मुथरी हो गई है) युगान्त उत्कर्ण है। पढो जी, जरा लाल पर्चे को तो पढो।

"भीड मे भिडकर खोजो तो सही, फौज तैयार है, हथियार से लैस। कडी

मुट्ठियो से जबर्दस्ती स्वर्ग छीन लेना है । क्या देवता भी इसे रोक सकते है ?"

यह कविता बहुत लम्बी है, इसको हम यही समाप्त करते है ।

फुटकर कवियो की कविता

आगे हम कवि को विशेष महत्व न देकर यह दिखायेगे कि कैसे-कैसे विषय पर अमूल्य चट्टोपाध्याय नामक एक कवि किस प्रकार की उपमा का व्यवहार कर रहे है । देखिये, बगला के पुराने दिवगत कवि इस कविता को पढते तो शायद बहुत परेशान होते ।

मध्यरात्रे मिडल रोडे नैशब्दय झुलछे
गरुर मासेर मतो ।
नि शब्द, नि शब्द रात्रि घन मेघे ।

पहले तो बडी देर तक कविता मेरी समझ मे नही आई, फिर मैंने सोचा कि इसका अग्रेजी मे अनुवाद करू तो शायद समझ मे आये, क्योकि मैं जानता था कि आजकल के बहुत-से कवि अग्रेजी मे सोचते है ।

अग्रेजी मे सोचना इसलिए कहा गया कि, 'साइलेस' (नि शब्दता) हैग्स (झूलती) है । 'हैग' शब्द हम समझ जाते है, किन्तु हिन्दी मे 'नि शब्दता झूल रही है' यह उतना समझ मे नही आता । यहा गोमास के साथ तुलना देकर कवि ने रात्रि की निस्तब्धता की बीभत्सता दिखलाई, इसलिए इस कविता की वाक्यरचनाशैली अग्रेजी की होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है, क्योकि गोमास का बडा टुकडा एक अग्रेज की आखो मे बीभत्स नही, बल्कि रुचिकर है।

सजय भट्टाचार्य 'उह्य' नामक कविता मे धर्म को भी पू जीपतियो का साथी बतलाते है

तोमादेर तलोयार
झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे;
झलमल करियाछे
तोमादेर मिनारेर चूडा ।
तादेर अनेक घाम
अनेक चोखेर जल
बहु रक्त

शुकायेछे पृथिवीर रोद,
तोमादर इतिहासे
कोनो स्मृति आसे नाइ तार
शुधु ऐसे गेछे बार बार
मिनारेर चुडा आर
झलमल बाका तलोयार।

—"तुम्हारी तलवारो मे तथा तुम्हारे मन्दिरो की चूडाग्रो मे पृथ्वी की धूप से चार चाद लगे है, किन्तु उनका पसीना, आसू तथा खून को इस पृथ्वी की धूप ने सुखाया ही है। तुम्हारे इतिहासो मे इनकी इन बातो का कुछ पता नही है, केवल तुम्हारी मीनारो की चूडा और चमकती हुई बाकी तलवारो का ही बार-बार उनमे आना-जाना हुआ है। स्वर्ग मे जो देवता आये वे भी बडे कीमती थे। वे यदि कभी कृपा कर इस पृथ्वी पर आते हैं तो तुम लोगो की स्वार्थसिद्धि के लिए। उनकी भूख की तडप, अपमृत्यु तथा मिट्टी की देह देवताओ के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरो की ड्योढी मे उनका कोई चिह्न तक नही है, उनके लिए तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर है।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया पलायनवाद, अरण्य मे लौट चलो या हम फिर से वर्बर हो जाय इन बातो मे हुआ है।

सन्तोषकुमार घोष कहते हैं—

तार चेये चलो कोनो खर्जुर-कुजे
जेथा ओडे शुधु सादा बालि धू धू प्रान्ते
सार्थवाहीरा उष्ट्रेर पिठे चलेछे
पाये आका पथ दूर दिगन्ते पालालो ?

—"इससे चलो, बल्कि कही खजूरो की कुज मे चले, जहा केवल सफेद बालू वीरानो मे उडता है, कारवा चले जा रहे है, पदचिह्न से अकित पथ जहा निरन्तर क्षितिज मे भाग जाता है।"

उकि देवेनाको से खाने कखनो दैनिक
युद्धे कलाख चीना सैनिक मरेछे
साहाइ-एते साघातिक की घटलो
मालती, से सब जेने आमादेर लाभ कि ?

—"वहापर दैनिक अखबार झाक भी नही सकते। वहा यह नही सुनना पडेगा कि कितने लाख चीनी सैनिक मरे है, शघाई मे साघातिक क्या-क्या घटना हो रही है। मालती, यह सब जानकर हम लोगो को क्या लाभ है ?"

शहरेर पथे कोथाय मिछिल चलेछे
धर्मघटिरा कोथाय गुलि खेये मरलो
ना हय हलोई आश्रयहीन इहूदी
आमादेर नीड़ थाकलेई हलो अटूट

—"शहर मे कहा मजदूरो का जुलूस निकला, कहा हडतालियो पर गोली चली, इनसे मेरा क्या वास्ता ? सारी दुनिया के यहूदी चाहे आश्रयहीन हो जाय, हमारा घोसला बना रहे तो बस।

"वहा पथ चलते-चलते उन्मन बेकार युवक धनियो की मोटरो के नीचे छुट्टी नही पाते, फिर, हे मालती, कारखानो की चिमनी के धुए से तुम्हारी चादनी मैली भी नही होगी।

"बनियो और धनियो की लोभाग्नि, अन्याय तथा बारूद से हवा भर गई है, उधर जापान...है, न मालूम कब क्या गुल खिलावे। चलो, इससे खजूरो की कुज मे चलो, जापान की साधु-चेष्टा सार्थक होने दो। हम एक-दूसरे को लेकर सुखी होगे, भागे हुए के प्राण मे बारूद भला क्या असर करेगा।"

सच बात कही जाय तो यह प्रतिक्रिया है। आधुनिक के जीवन मे जो सैकडो समस्याए है, उनसे घबराकर पलायनवाद का आश्रय लेना या बीते हुए स्वर्ण युग को लौटा लाने का स्वप्न देखना कोई आश्चर्य की बात नही है। ससार मे अन्याय है, किन्तु वह जबर्दस्त है, उससे लडना मुश्किल है। लडने पर खतरे है, जेल, कालापानी, फासी। ऐसी हालत मे इन काल्पनिक तथा बेखबर मतवादो के बालू मे शुतुरमुर्ग की तरह मुह छिपाकर बैठना आश्चर्यजनक नही। आज मध्यम श्रेणी के अच्छे-से-अच्छे बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार की अकर्मण्यता मे अपना जीवन खो रहे है। इसीको कहते है।विराट विश्वासघात। पढे-लिखे लोग सब-कुछ समझकर भी खतरो के कारण असली काम से जी चुराते है, यही विराट विश्वासघात का स्वरूप है।

सुभाषचन्द्र मुखोपाध्याय की एक कविता और देखिये। इसमे जमीदार के फटे हाल का वर्णन है। कैसे वह एक तरफ किसान तथा दूसरी ओर पूजीवाद

की चक्की के दो पाट के बीच पिसकर खतम होते जा रहे है, उसको दिखलाया है।

कविता का नाम है 'अत पर'। इस कविता मे छन्द का कही पता नही। हा, सीढी की तरह लिखी गई है। कविता यो है

"सम्पादक को मिले

"महाशय—इधर-उधर मेरी कुछ जमीदारी है, लेकिन इस बुरे समय मे उसे बचाना कठिन है। वश-परम्परा के अनुसार किंकर्तव्यविमूढ होकर जैसा ईश्वर चलाते है, वैसा ही चलता हू। बरकन्दाज तावेदार है, लगान वसूल करने की सब तरकीबे उन्हे याद है, फिर भी तीन साल से लगान कम वसूल हुआ। अदालत मे जाओ, कुछ होता नही। थोडी आय है सो भी रहन के फसाद मे है। पता नही, अन्त मे भीख मागना बदा है या। बेटा कलकते मे विद्या सीखते है, बोतल से उनका प्रेम है, यह पैतृक है। विपत्ति एक ही नही, कुछ सच्चरित्र किन्तु बुद्धिहीन नौजवान निरक्षर किसानो को लेक्चर से मुग्ध करते है, इधर हम लोगो को काटो तो खून नही। क्या ये ही साम्यवादी है ? फिर भी शायद अदृष्ट का चक्का घूम जाय। अग्रेज प्रभुओ का हाल बुरा है, हमारे हाथ मे राज्य-भार आयेगा, कोई ताज्जुब नही। पूजीपतियो का पौबारह है। विशेषकर भारतवर्ष के इकलौते नेता है गाधी। जितना रुपया लगता है, सब पूजीपति देते है। क्यो न दे, सोचते है, इसका नतीजा भविष्य मे अच्छा होगा। महाशय, जमीदारी जाय तो जाय। बनिये की मौलिक प्रतिभा देश के शिल्प मे मुक्ति पायगी। इस विषय मे पत्रपाठ (फौरन) मुक्ति चाहता हू।

निवेदक बगचन्द्र पाल, ढाका"

मुझे डर है, बहुत-से लोग इसे कविता मानने को तैयार न होगे, किन्तु जो कुछ भी हो, यह भी एक धारा है।

रूस बहुत समय से एक बहुत ही बडे वाद-विवाद का विषय है। रूस बहुतो के लिए एक भयावह भूत-सा है। उसीपर श्री सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने एक कविता लिखी थी—

लाल जुजु एलो ऐ, हुशियार
दुनियार खोकाखुकु चेचामिचि कोरोनाको

चोख कान बुजे सब चुप करे शुये थाको
हुशियार

—इत्यादि

—"वह देखो लाल भूत आ रहा। हुशियार! दुनिया के बच्चो, चिल्लाओ मत, आख-कान बन्दकर चुपकर सो रहो, हुशियार। हिटलर, मुसोलिनी, जापानी नोगुचि सब कहते है हुशियार। अग्रेज, फासीसी सावधान होकर घूरते है, बच्चो को पकडने का झोला लेकर वह आया लाल भूत। हुशियार। बच्चो, सो जाओ, देर न करो, देखो वह विपत्तिसूचक लाल बत्ती। हुशियार। सफेद, काले, पीले सब बच्चे पडकर सो रहो। यहूदी भगाना है, ईसामसीह भी आर्य हो गये, स्वस्तिक ध्वजाधारी शान्ति-सेना पुकार रही है, वह आया लाल भूत, हुशियार।"

इस प्रकार आधुनिक कविता केवल नारी की पूजा मे या देवताओ की प्रशसा मे सीमाबद्ध न रहकर मनुष्य के सभी क्षेत्रो मे सभी दिलचस्पियो मे अपने लिए रास्ता बना रही थी। शायद इस कारण आलकारिको की दृष्टि मे अब वह उतनी हद तक कविता नही रही, किन्तु अब वह जीवन के हरेक रन्ध्र मे अपनी जड को प्रविष्ट कराकर अपनेको सजीव बनाना चाहती है, साथ ही जीवन की मिट्टी को वह अधिक सामजस्यपूर्ण तथा उसको एक-दूसरे से सम्बन्धयुक्त बनाना चाहती है। यही इस युग की कविता की विशेषता है। हा, कही-कही इसमे अति हो रही है, यह मानता हू, किन्तु कोई भी बाढ जब आती है तो वह निकल जाती है। जब बाढ का पानी चला जाता है तो वह ऐसी मिट्टी छोड जाती है, उसीमे सोना फलता है।

२४

आधुनिक बंगला उपन्यास

रवीन्द्रनाथ तथा शरच्चन्द्र के जीवन-काल मे ही यह आन्दोलन तो शुरू हो गया था कि बगला-उपन्यास को इन दो महारथियो की प्रतिभा के क्षेत्र से मुक्त करके बाहर लाया जाय। इस सम्बन्ध मे भाषा तथा रचना दोनो दृष्टियो से नवीन प्रयोग शुरू हो गये थे। फिर भी एक तो प्रतिभा के इन वरद-

पुत्रो की जकड से उपन्यास-साहित्य को मुक्त करना टेढी खीर थी, और दूसरे जिन लोगो ने इस काम को उठाया, उन्होने यूरोपियन, विशेषकर नार्वेजियन उपन्यासकारो का अनुकरण किया। इसलिए इनके प्रयासो से तत्काल ही कोई युगान्तरकारी नतीजे नही निकले। रवीन्द्रनाथ के उपन्यास मुख्यत विल्कुल रूढिवादी तो नही, पर नैतिक वातावरण को लेकर चलते थे। शरच्चन्द्र मे ऐसा कोई वन्धन नही था, फिर भी ऊपर से वह बन्धनहीन होने पर भी भीतर से प्राचीन मान्यताओ को सम्मान की दृष्टि से देखते थे, इसमे कोई सन्देह नही।

पर इन नये उपन्यासकारो ने प्रयोग शुरू किये। उन्होने इब्सन, क्नुट हैमसुन, चेखाफ, डोस्टोईएयफस्की, तुर्गनेव आदि लेखको को आदर्श मानकर एक नवीन शैली की सृष्टि करनी चाही। इनके प्रयास किसी भी क्षेत्र मे पूरे तरीके से सफल नही हुए, पर इस असफलता मे ही उन्हे कई तरह की नई शैली सृष्टि करने की सफलता मिली और वगला-उपन्यास-साहित्य मे एक नवीनता का सचार हुआ।

वगला साहित्य के क्षेत्र मे कुछ पत्रिकाओ ने साहित्य-निर्माण और युग को ढालने मे इतना अधिक कार्य किया है कि थोडे समय वाद लुप्त हो जाने पर भी वगला साहित्य मे उनका नाम अमर रहेगा। ऐसी पत्रिकाओ मे वकिमचन्द्र का 'वगदर्शन', सुरेशचन्द्र समाजपति का 'साहित्य', रामानन्द चट्टोपाध्याय का 'प्रवासी', रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'विचित्रा' वहुत उल्लेखनीय है, पर इन सवसे महत्वपूर्ण श्री दिनेशरजनदास और गोकुल नाग द्वारा सम्पादित 'कल्लोल' है।

इस पत्रिका का जीवन-काल केवल सात वर्ष तक सीमित रहा, फिर भी इसको वगला साहित्य मे इस कारण महत्व प्राप्त हुआ कि रवीन्द्रोत्तर सारे वगला साहित्य का यह केन्द्र वन गया।

यद्यपि कवीन्द्र रवीन्द्र ने वगला साहित्य के भण्डार को दोनो हाथो से हीरो और मोतियो से भर दिया और उसके किसी भी अग को खाली नही रक्खा, फिर भी रवीन्द्र-साहित्य को अगले युग का प्रतीक नही कहा जा सकता था। कम-से-कम कुछ शक्तिशाली और कर्मठ लोग ऐसा समझते थे। रवीन्द्रनाथ सारे वगला साहित्य पर छा गये थे, इन लोगो के अनुसार वुरी तरह छा गये थे, इस कारण ये समझते थे कि इसे रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त कर आधुनिक जीवन के कलकलमय कल्लोल मे लाने की आवश्यकता है।

रवीन्द्रनाथ तक इनकी खवर पहुचती रहती थी और वह परेशान थे कि ये

नवीन लेखक अपने कर्तव्य को समझ भी रहे है या नही। मानो इसी घबराहट, चिंता तथा एक प्रकार मे पथ-प्रदर्शन के लिए रवीन्द्रनाथ ने इन्ही दिनो 'शेषर कविता' नामक उपन्यास लिख डाला। यह उपन्यास इन आधुनिक लेखको को मानो चुनौती देकर यह कह रहा था कि तुम्हे इस काम को इस ढग से करना है तो यो करो। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि एक बार उल्टी गगा बही और कल्लोल-गुट के लोगो का रवीन्द्रनाथ पर असर पडा। इस उपन्यास का कल्लोट-गुट के लोगो पर यह असर पडा कि वे अवाक् होकर कह उठे, "अरे, हम ऐसे ही तो लिखना चाहते थे।" इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने फिर एक बार अपने इन विद्रोही शिष्यो को अपने जाल मे डालकर समेट लिया। तथ्य तो यह है कि केवल इसी मामले मे नही, इसके बाद भी रवीन्द्रनाथ जबतक जीवित रहे, वे दूसरो के हर नये प्रयोग को अपनाकर इन प्रयोगो के प्रवर्त्तको के आगे रहने की चेष्टा करते रहे, और इसमे वह सफल भी रहे।

यहा कही कुछ गलतफहमी न हो जाय, इसलिए यह बता दिया जाय कि 'कल्लोल' से बहुत पहले ही शरत्चन्द्र का आविर्भाव हो चुका था। यद्यपि शरत्-बाबू ने स्वयं ऐसा कभी नही कहा, तथापि इस बात को बगला साहित्य के बाहर भी लोग जानते है कि शरच्चन्द्र हर तरीके मे रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रभावित होने पर भी उनका साहित्य रवीन्द्र-साहित्य के अन्तर्गत नही था, और यह कहा जा सकता है कि बगला साहित्य को पहली बार कवीन्द्र रवीन्द्र से मुक्ति उन्हीके हाथो द्वारा हुई। फिर भी शरच्चन्द्र इस अर्थ मे आधुनिक होते हुए भी और उनके साहित्य के आधुनिक जीवन की कुछ समस्याओ के समाधान की ओर साहस-पूर्वक हाथ बढाने पर भी आधुनिक जीवन की कई ऐसी समस्याए थी, जिनको वह बहुत कम छू पाये।

इन्ही बातो को लेकर 'कल्लोल' की स्थापना हुई। बगला के अन्यतम शक्ति-शाली लेखक अचित्यकुमार सेनगुप्त, जो इस कल्लोल-परिवार के सदस्य है, इस सबध मे क्या लिखते है, यह सुनने लायक है। 'कल्लोल' के साथ-साथ 'सहति' नाम से उन्ही दिनो मजदूरो की एक पत्रिका भी निकली थी। यह बगला सन् १३३० की बात है।

अचित्यकुमार लिखते है—"सोचने पर आश्चर्य होता है कि दोनो मासिक पत्र एक ही सन् मे और एक ही महीने मे पहले-पहल प्रकाशित हुए। १३३०

के वैशाख महीने मे ये पत्र निकले। 'कल्लोल' कोई सात वर्ष चला, पर 'सहति' पत्र दो साल चलने के पहले वन्द हो गया। 'कल्लोल' कहने पर ही समझ मे आता है कि वह क्या है। उद्धत यौवन की झाग देती हुई उद्दामता, समस्त वाधाओ और वधनो के विरुद्ध मुक्त विद्रोह, स्थविर समाज को उखाड फेंकने का आन्दोलन। पर 'सहति' क्या है? 'सहति' तो कठिनीकृत शक्ति है। सघ, समूह, गणशक्ति, यही 'सहति' है। जिस गुण के लिए समधर्मी परमाणु एक होते है, वही 'सहति' है। यह नाम आश्चर्यजनक था, और उसका तात्पर्य भी आश्चर्यजनक था। एक तरफ वेग वल था। एक तरफ तोडना था और दूसरी तरफ सगठन और एकीकरण था।

"आज वहुत-से लोग शायद नही जानते कि यही 'सहति' वगाल मे मजदूरो का पहला मुखपत्र और उनकी पहली मासिक पत्रिका थी। वह दुवली-पतली स्वल्पायु मासिक पत्रिका ही वगाल मे गण-जययात्रा की पहली मशालची थी। इसके वाद तो कई पत्रिकाए निकली, जैसे 'गणवाणी', 'गणशक्ति', 'लागल' या 'हल'। 'सहति' ही अग्रणी थी।"

रवीन्द्र और शरत्चन्द्र के वाद वगाल के सभी ऊचे दर्जे के साहित्यिक इसी 'कल्लोल' से किसी-न-किसी प्रकार सम्वद्ध थे। उनमे से कुछके नाम इस प्रकार है—ताराशकर, प्रवोध सान्याल, वुद्धदेव वसु, अन्नदाशकर, नजरुल इस्लाम, जीवनानन्द दास, नृपेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय, पवित्र गगोपाध्याय, जसीमुद्दीन, प्रेमेन्द्र मित्र, विश्वपति चौधरी, विष्णु दे, गोकुल नाग, माणिक वन्द्योपाध्याय, यतीन्द्रसेन गुप्त, शिवराम चक्रवर्ती, यतीन्द्र वागची, राधारानी देवी, शैलजानन्द, मुखोपाध्याय, सरोज राय चौधरी, सुनिर्मल वसु, सुधीर चौधरी, हुमायू कवीर इत्यादि।

इस प्रकार वगला के सब आधुनिक लेखक 'कल्लोल' के इर्द-गिर्द एकत्र हुए। यहापर 'कल्लोल'-सवधित कुछ थोडे-से लेखको का ही परिचय दिया जायगा।

इनमे से करीव-करीव सभी लेखको के साथ हिन्दी-जगत् थोडा वहुत परिचित है। इलाहावाद से प्रकाशित होनेवाली 'माया' और 'मनोहर कहानिया' नामक कहानी पत्रिकाओ की वदौलत इनमे से जो लोग कहानीकार है, उनकी कहानिया हिन्दी-जगत् के सम्मुख समय-समय पर आती रही है, पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने पर इन लेखको को कोई विशेष ख्याति प्राप्त नही

हुई। एक तो अक्सर अनुवाद बहुत बुरा हुआ, और दूसरे किसी कारण से हो, साहित्य के क्षेत्र मे मासिक पत्रो की रचनाओ को कोई विशेष मर्यादा प्राप्त नही होती। फिर भी यह मानना पडेगा कि हिन्दी पत्रो ने इस दिशा मे बहुत अच्छी सेवा की है। अच्छा होता, यदि कहानियो को परोसने मे अनुवाद की उत्तमता की ओर भी ध्यान दिया जाता।

ताराशकर के कई उपन्यास हिन्दी मे प्रकाशित हो चुके है, और जल्दी ही शायद उनके बाकी उपन्यास भी हिन्दी मे प्रकाशित हो। इस प्रकार ताराशकर से तो हिन्दी-जगत् काफी अच्छी तरह परिचित है।

ताराशकर हिन्दी मे जितनी अच्छी तरह जाने जाते है, उतना बगला का कोई जीवित लेखक नही जाना जाता। हा, काजी नजरुल इस्लाम भी बगला के बाहर कुछ प्रख्यात है, पर उनकी सारी रचनाए कविता मे होने के कारण उनकी कृतियो से हिन्दी-जगत् अधिक परिचित नही है। 'कल्लोल' के सम्पादक श्री गोकुल-चन्द्र नाग की असामयिक मृत्यु पर कवि नजरुल ने 'गोकुल नाग' नाम से जो कविता लिखी थी, उसकी कुछ पक्तियो का अर्थ नीचे दिया जाता है। इन पक्तियो से यह भी ज्ञात हो जायगा कि कल्लोल-गुट के लेखक किन विचारो से परिचालित थे

"सुन्दर की तपस्या मे ध्यान मे विभोर दरिद्रता के दर्प और तेज़ को लेकर जो लोग आये, जो लोग चिर सर्वहारा है, जो लोग आत्मदान करके सृजन करते है, निर्माण नही करते, हे कवि, इस स्मृति-दिवस मे उन शारदापुत्रो के आडम्बर-हीन सहज जीवन को स्वीकार कर लेना, जैसा कि तुमने जीवन मे उन्हे ग्रहण किया था।"

इसी कविता मे अन्यत्र वह लिखते है—"जो लोग ऊची-ऊची अटारिया बनवाते है, उन्हीकी इज्जत और सम्मान है, पर उनका यह निर्माण दो दिन का है, जल्दी ही टूटकर गिर पडता है, पर जो लोग विधाता की तरह कही चुपचाप सृजन करते रहते है, जाति को बनाते है, इन्सान को बनाते है, वे अपरिचित रह जाते है।"

हमने इन पक्तियो को नजरुल की कवित्वशक्ति दिखाने के लिए नही, बल्कि किन विचारो को लेकर कल्लोल-गुट चला, उनके स्पष्टीकरण के लिए चुना। नज़रुल पर हम पहले ही विस्तार के साथ लिख चुके है। वह उस समय भी

ऊचा स्थान प्राप्त कर चुके थे जब रवीन्द्रनाथ जीवित थे।

यहा हम श्री गोकुल नाग का परिचय थोडे मे देगे। वह कल्लोल-गुट के मध्य-मणि थे। उनका उपन्यास 'पथिक' बहुत प्रसिद्ध हुआ और उनकी अकाल मृत्यु के बावजूद इसी एक उपन्यास के कारण उनकी ख्याति बगला साहित्य मे अमर है। इस उपन्यास को पढकर बगला के प्राचीन-पथी विद्वान् और आलोचक डा० दिनेश सेन इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होने लिखा था—"इस प्रकार की कृतियो से प्राचीन समाज की नीव ढह जायगी, बल्कि बगाली दुनिया के पर्दे पर से मिट जाय, यह अच्छा है, पर वे सस्कारो की चक्की मे पिसकर निकम्मे होकर बने रहे, इसकी क्या जरूरत है? ऐसे जीने से मरना अच्छा है। जो वीर हमारे दरवाज़े खोलकर घर मे ताजी हवा पहुचाने के लिए कमर कस चुके है, उनमे 'कल्लोल' के लेखक सबसे तरुण और शक्तिशाली है। प्राचीन पोगापथी समाज के साथ समझौता करके चलने की दीनता से ये मुक्त हो चुके है। ये लोग घिसे-पिटे रास्ते को रास्ता नही मानते। जो सुन्दर है, स्वाभाविक है, जो वास्तविक रूप से मनुष्यता है, आत्मा के उस स्वप्रकाशित सत्य को वे वेद और कुरान से बडा समझते हैं। इन बलदर्पित लेखको के पदचाप से प्राचीन जराजीर्ण समाज की हड्डी-पसली हिल उठी है। पर मैं इनकी रचनाओ को पढकर बहुत खुश हुआ हू। हमे ऐसा मालूम होता है कि नाली छोडकर हम जाह्नवी की पवित्र धारा मे आ गये, जैसे कागज के फूलो की दुनिया से नन्दन कानन मे आ गये।"

डा० दिनेश सेन के मुह से यह प्रशसा बहुत अधिक महत्व रखती थी।

श्री गोकुल नाग के अतिरिक्त जिन लेखको ने 'कल्लोल' को बनाया, उनमे प्रबोध सान्याल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पहले ही साल उनकी रचना 'कल्लोल' मे प्रकाशित हुई। इस समय उनके बहुत-से उपन्यास हैं, जिनमे कई उच्चकोटि के है।

अचिंत्यकुमार कवि और उपन्यासकार है। 'कल्लोल' की प्रथम सख्या मे ही इनकी एक कहानी 'मा' नाम से प्रकाशित हुई थी। इनके भी बहुत-से उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री बुद्धदेव बसु बगला के प्रमुख कथाकारो मे हैं। पहले 'प्रगति' नाम से वह एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे। जब श्री गोकुलचन्द्र नाग मरे, उस समय ढाका से इन्होने एक छोटी-सी कविता लिख भेजी थी, जिसमे इन्होंने श्री गोकुल-

चन्द्र नाग को 'यौवन-पथिक' सम्बोधित करते हुए लिखा था—"तुम नव वसत के सुरभित दक्षिण वायु हो। तुम क्षणभर के लिए वाणी के कानन को विकम्पित कर गये।" उन दिनो बुद्धदेव वसु को कोई नही जानता था। वाद को 'कल्लोल' के वह प्रमुख लेखको मे हो गये। उपन्यासो, कहानियो और कविताओ मे सर्वत्र वह चमके। उनकी रचनाओ की सख्या वहुत अधिक है। वे अग्रेजी मे भी लिखते है। उनके उपन्यासो और कहानियो मे अग्रेजी शिक्षा-प्राप्त वगाली-समाज का चित्रण है।

अन्नदाशकर भी 'कल्लोल' के साथ सम्बद्ध थे। अचिंत्यकुमार के अनुसार वह ऐसे लेखको मे हैं, जिनमे मन, प्राण और आत्मा का महामिलन हुआ है। उनके अनुसार, "आत्मा के साथ जव आत्मा की वातचीत होती है, तभी महान् कला का जन्म होता है। अन्नदाशकर उसी महान् कला के अन्वेषक है। उनके साहित्य का आदर्श इतना ऊचा है कि जो वात उनकी पहुच के अन्दर आ जाती है, जिस-पर वह दखल प्राप्त कर लेते है, उससे वह तृप्त नही होते। वह जीवन मे स्वस्थ और शान्त भले ही हो, पर सृजन मे वह अपरितृप्त है।" अन्नदाशकर के वहुत-से उपन्यास प्रकाशित हुए है, जो उच्चकोटि के है।

वगला के अन्यतम शक्तिशाली लेखक श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय भी 'कल्लोल' के लेखको मे थे। विभूतिवावू जव-तव लिखते थे, ऐसी बात नही, वह नियमित रूप से 'कल्लोल' मे लिखा करते थे। उनके भी वहुत-से उपन्यास है।

जसीमुद्दीन भी कल्लोल के लेखको मे थे। इन दिनो वह पूर्व पाकिस्तान मे करीव-करीव राजकवि है, पर उन दिनो उनकी कैसी हालत थी, यह अचिंत्यकुमार की जवानी सुनिये—"एकदम सीधे-सादे, भोले-भाले थे ये कवि जसमुद्दीन। कघी से वालो का कोई खास सम्बन्ध नही। शायद अभाव से कही वढकर उदासीनता थी। मानो उनके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द सरल श्यामल गाव का वातावरण था। उनकी कविताओ मे भी गाव की ओर सकेत था। गाव के किसान, खेत और खलिहान, नदी-नालो की तरफ उनकी दृष्टि थी। उनका सुझाव उनकी असा-धारण साधारणता की ओर था। जो दु ख सर्वहारा का होकर भी सर्वमय था, वही उनका उपजीव्य था। उनमे किसी तरह की शिल्पीसुलभ कृत्रिमता नही थी, कोई प्रसाधन का ढकोसला नही था। एकदम सीधे-साधे हृदय स्पर्श करने की व्याकुलता थी। उनकी बाते किसी वाद के साचे मे ढली न होने के कारण

भले ही कुछ लोगो को नापसन्द रही हो, पर वे वहुत सुन्दर थी।"

जसीमुद्दीन को वगाल के गावो का प्रतीक कवि कहा जा सकता है और इस दृष्टि से वगला साहित्य मे उनका स्थान अद्वितीय माना जा सकता है। यो तो रवीन्द्रनाथ से लेकर सभी वगला कवियो ने वगाल के गावो की प्रशस्ति गाई है, पर जिस चुभते हुए पैने ढग से जसीमुद्दीन ने कविताए लिखी है, वह विल्कुल उन्ही तक सीमित रहा।

जीवनानन्द दास भी 'कल्लोल' के ससपर्श मे आये। वह पहले बरीसाल मे थे, वाद मे कलकत्ते मे आये। जीवनानन्द को 'कल्लोल' वालो ने खीचा, पर वह उसमे अधिक रम नही पाये। वह सिटी कालेज मे अध्यापक थे। अश्लीलता का दोष लगाकर उन्हे नौकरी से अलग कर दिया गया। अश्लीलता भी किस प्रकार की थी, यह भी देखने लायक हे। उन्होने किसी कविता मे शायद ऐसा लिखा कि खडी फसल के अग्रभाग को देखकर उन्हे स्तन का श्याममुख स्मरण हो आता है। कहना न होगा कि इतनी छोटी-सी वात पर जव जीवनानन्द को निकाल दिया गया तो कालेज के अधिकारियो के हाथो मे शेक्सपियर और कालिदास की कैसी दशा होती ?

'कल्लोल'-गुट से अलग मनीन्द्रलाल वोस एक अजीव शैली का प्रवर्त्तन तथा प्रयोग करते रहे। उनकी रचना का सवसे महत्वपूर्ण अग उनकी अलसाई-सी, धीर-मथर राजहस की चालवाली मसालेदार भाषा है। उन्होने दो ही तीन उपन्यास लिखे है। इनमे भाषा के अतिरिक्त शायद ही कुछ है, फिर भी इनके उपन्यास वहुत ही पठनीय हे, और जो लोग 'कादम्वरी' की शैली की चीज को रस ले-लेकर पढने के आदी है, याने कुछ देर पढा और फिर आखे वन्द करके सोचते रहे, उन्हें वहुत पसन्द आयगे। स्वाभाविक रूप से मनीन्द्रलाल ने अपने उपन्यासो मे कथानक भी ऐसा रक्खा है, जिसमे दीर्घकाल तक सोचने और चितन करने की गुजाइश हो। इसीलिए उनके कथानको मे तपेदिक-ग्रस्त व्यक्तियो की भरमार है, जो पडे-पडे न मालूम किस-किस स्वप्न-जगत् मे चले जाते है।

यह पहले ही कहा जा चुका कि वगला के उपन्यासकारो मे इस समय सवसे प्रमुख नाम श्री ताराशकर वद्योपाध्याय का है। उन्होने वहुत अच्छा भी लिखा और वहुत अधिक भी लिखा। यह तो कहना कठिन है कि वह रवीन्द्रनाथ या शरच्चन्द्र की तुलना मे कैसे है, पर इतना कहा जा सकता है कि उनके

साहित्य मे आधुनिक वगाल तथा एक हद तक भारत मूर्त्त हुआ है। उनका साहित्य केवल पारिवारिक जीवन को लेकर ही नही चलता, उसमे युगमन का प्रतिफलन सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उनका प्रथम उपन्यास 'चेताली घूर्णि' १९३२ के अक्तूवर मे प्रकाशित हुआ। उनका 'गण देवता' तथा 'पचग्राम' नामक उपन्यास गायद उनकी सवसे उत्कृष्ट रचनाए है। पर इधर १९४७ की जुलाई मे उन्होने 'हासुली वाकेर उपकथा' नाम से एक उपन्यास लिखा है, जिसकी वहुत प्रशसा हुई है। उनके अन्य उपन्यासो मे 'धात्री देवता', 'कवि' और 'कालिन्दी' वहुत ही उच्चकोटि के उपन्यास है। 'धात्री देवता' १९३९ के अक्तूवर मे प्रकाशित हुआ। 'कालिन्दी', 'कवि', 'गण देवता', 'पचग्राम', 'मन्वतर', क्रमश अक्तूवर १९४०, मई १९४१, अक्तूवर १९४२, फरवरी १९४४ तथा १९४४ मे प्रकाशित हुए। उनके उपन्यास 'मन्वतर' का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। यह एक आश्चर्य की वात है कि वर्तमान वगाल के सवसे प्रसिद्ध लेखक ने मुख्यत गावो के सम्बन्ध मे ही लिखा है। उनके उपन्यास 'आरोग्य निकेतन' को उनकी सर्वोत्तम कृति माना गया है।

दरभगा-निवासी श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय वगला के वहुत प्रमुख उपन्यासकारो मे है। उनका प्रथम कहानी-सकलन 'रानू का प्रथम भाग' मई १९३७ के करीव प्रकाशित हुआ। उन्होने उपन्यास, नाटक, कहानी सभी कुछ लिखा है, और वडी योग्यता से लिखा है। उनका 'गरीयसी' नामक उपन्यास तीन भागो मे प्रकाशित हुआ और उसकी वडी प्रशसा हुई। इनकी रचनाओ मे चित्रण की अद्भुत शक्ति है।

श्री वुद्धदेव वसु का नाम हम इससे पूर्व कई वार ले चुके है। उनका प्रथम उपन्यास 'साडा' पुस्तकाकार मे १९३० मे प्रकाशित हुआ। उनके उपन्यासो का विवरण इस प्रकार है—'साडा' १९३०, 'जेदिन फुटलोकमल' १९३३, 'धूसर गोधुली' १९३३, 'कालोहावा' १९४२, 'विशाखा' १९४६, 'तिथिडोर' १९४९। 'अन्यकोनखाने' नाम से उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उनकी रचना मे शृगार-रस की कही-कही अधिकता है और प्रगतिशील लोग उन्हे प्रतिक्रियावादी लेखक मानते है। उन्होने अग्रेजी मे वगला के आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध मे भी एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'एन एकर आफ ग्रीन ग्रास'।

इस समय के प्रमुख वगला-उपन्यासकारो मे श्री अन्नदाशकर राय का भी

नाम लिया जा सकता है। उनके जीवन का बहुत-सा भाग यूरोप मे बीता है, इस कारण वह अपने उपन्यासो मे यूरोपीय वातावरण बहुत ले आते है। उनकी पहली रचना रवीन्द्रनाथ की देख-रेख मे निकलनेवाली 'विचित्रा' नामक पत्रिका मे धारावाहिक रूप से १९२७ से १९३० तक प्रकाशित हुई। इसका नाम था 'पथेप्रवासे'। उनकी पुस्तकाकार मे प्रकाशित प्रथम रचना 'तारुराय' १९२८ मे प्रकाशित हुई। 'पथेप्रवासे' भ्रमण की पुस्तक थी, पर वह इतने दिलचस्प रूप मे लिखी गई थी कि इसीसे बगला-साहित्य मे उनकी ख्याति हो गई। इन्होने 'सत्यासत्य' नाम से ६ उपन्यासो की एक माला लिखी, जिसके भागो के नाम हिन्दी मे अनूदित होने पर यो है—१ 'जार जेथा देश' या 'जिसका जहा देश', २ 'अज्ञातवास', ३ 'कलकवती', ४ 'दु खमोचने', ५ 'मर्त्येर स्वर्ग' या 'मर्त्य का स्वर्ग', ६ 'अपसरण'। उनकी अन्य पुस्तको मे, 'मन पवन' भी बहुत प्रसिद्ध है। अन्नदाबाबू हमारे सामने एक नई ही दुनिया रख देते है। वह अग्रेज़ी-साहित्य के बहुत बडे ज्ञाता होने के साथ ही भारतीय वैष्णव साहित्य तथा रवीन्द्रनाथ के समान रूप से ज्ञाता हैं। साथ ही वह कवि भी है। इस कारण उनके साहित्य मे ऐसे रस की उत्पत्ति हुई है, जो रवीन्द्र, शरत् आदि से सम्पूर्ण रूप से पृथक् जगत् की सृष्टि करता है।

श्री अचिंत्यकुमार सेनगुप्त बगला के बहुत ही शक्तिशाली उपन्यासकारो मे है। वह नार्वेजियन साहित्य से बहुत प्रभावित हुए और क्नुटहाससुन की एक पुस्तक के अनुवाद से उन्होंने साहित्य-जगत् मे प्रवेश किया। उनका पहला उपन्यास 'बेटे' या 'बहू' क्नुटहाससुन की शैली पर ही लिखा गया था। यह १९२७ मे प्रकाशित हुआ। उनके उपन्थासो तथा कहानियो की सख्या बहुत अधिक है।

उन्होंने अपने उपन्यासो मे कुछ नवीन प्रयोग किये, और ऐसा कहने मे कोई हिचकिचाहट नही है कि वह इन प्रयोगो मे बहुत-कुछ सफल हुए। बाद को चलकर हाल मे उन्होने 'जायजेदिजाक' याने 'जाये तो जाये' नाम से एक उपन्यास लिखा था, जिसके कारण उनकी ख्याति मे बहुत वृद्धि हुई थी। इस पुस्तक मे बगाली मध्यवित्त परिवार पर युद्ध तथा दुर्भिक्ष का परिणाम दिखलाया गया है। इसमे सन्देह नही कि भारतीय साहित्य मे यह एक बहुत ही शक्तिशाली दान है।

भागलपुर-निवासी डाक्टर बलाईचाद मुखोपाध्याय या वनफूल ने बहुत-से

उपन्यास, कहानिया तथा एकाकी लिखे हैं। उनकी रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह बहुत अच्छी कहानी गढ लेते है, और उनमे मौलिकता बहुत अधिक है। विशेष विचारधारा के वह कायल नही हैं, और इधर उनको प्रगतिशील लेखको ने कई एक रचनाओ के कारण प्रतिक्रियावादी बताया है। उनका प्रथम उपन्यास 'तृण-खड' 'शनिवारेर चिठी' की तरफ से प्रकाशित हुआ था। उनके सभी उपन्यास और कहानी-सग्रह शीघ्र ही हिन्दी मे प्रकाशित होने जा रहे है। 'कुछ क्षण' नाम से उनका एक छोटा-सा उपन्यास पहले हिन्दी मे प्रकाशित हो चुका था, पर अनुवाद अच्छा न था।

श्री विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय भी वगला के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार है। उनके पाच उपन्यास वहुत प्रसिद्ध है, जिनमे से उनका प्रथम उपन्यास 'पथेर पाचाली' तथा उनका द्वितीय भाग 'अपराजिता' सबसे प्रसिद्ध हैं। 'पथेर पाचाली' ससार की श्रेष्ठतम कृतियो मे से माना गया है। इसमे वह रवीन्द्र और शरत् से उच्चस्तर की कला का प्रदर्शन करते है। वगला मे अवतक वह केवल प्रथम श्रेणी के माने जाते थे, पर अव लोग उनकी कद्र समझने लगे हैं। उन्होने भी ग्राम-जीवन को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया है। उनके अन्य उपन्यासो के नाम इस प्रकार है—१ आरण्यक, २ दृष्टि-प्रदीप, ३ देवयान, ४ आदर्श हिन्दू होटल। इसके अतिरिक्त उनके कई कहानी-सकलन प्रकाशित हुए है। दो भ्रमण-सम्वन्धी पुस्तके भी प्रकाशित हुई हैं, जिनमे उपन्यास का मजा आ जाता है।

श्री प्रबोधकुमार सान्याल भी एक शक्तिशाली उपन्यासकार हैं। वह गद्य के इतने सुन्दर लेखक है कि उनको गद्य का कवि कहना अनुचित न होगा। उनके उपन्यास डिकेन्स की तरह बहुत सगठित नही है, पर वे इतनी नई चीज़े पाठक के सामने ला देते है कि पाठक मुग्ध हो जाता है। उन्होने कई उपन्यास तथा कहानियो के कई सग्रह प्रकाशित किये है। वह भ्रमण की कहानिया लिखने मे सिद्धहस्त है। 'देवात्मा हिमालय' नाम से एक पुस्तक निकली है, जिसकी भूमिका श्री नेहरू ने लिखी है।

श्री शैलजानन्द मुखोपाध्याय कई सुन्दर उपन्यास लिख चुके है और उन सबका केन्द्र कोयले की खानो का जीवन है। ऐसा मालूम होता है कि उन्होने कोयले की खानो का सुन्दर अध्ययन किया है। यह एक ऐसा विषय है, जिसे अन्य लेखको के द्वारा करीब-करीब अछूता होने के कारण, वगला के उपन्यास-

साहित्य मे एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। उनकी 'कयला कुटी' या 'कोयले की खान' की वगला मे वहुत प्रशसा हुई। उनकी 'अनाथ आश्रम' नामक पुस्तक और उनकी कुछ कहानिया भी हिन्दी मे अनूदित हो चुकी हे। वह सर्वदा अपनी कहानियो तथा उपन्यासो मे अस्वाभाविक और असाधारण को लेकर चलते है। श्री माणिक वन्द्योपाध्याय वगला-उपन्यास के क्षेत्र मे कभी इतने चमके थे कि उनके सम्वन्ध मे समझा जाता था, वह ही शरत्वावू का रिक्त स्थान ले लेगे। उनका 'पद्मा नदी का माझी' नामक उपन्यास पद्मा के किनारे के ग्राम-वासियो को लेकर लिखा गया है। यह एक वहुत ही शक्तिशाली कृति है, और सव तरह के समालोचको ने इसकी वडी प्रशसा की है। वहुत ही साधारण मल्लाह के जीवन को लेकर इतना वडा उपन्यास लिख देना यह उनकी शक्ति का परिचायक है। पर माणिकवावू को न मालूम क्या हो गया, वाद को वह कुछ अश्लीलता की तरफ वढे और मनोविश्लेषण के विषय ही उनकी कहानियो तथा उपन्यासो के उपजीव्य वन गये। अवश्य इससे यह न समझा जाय कि उनके लिखने की शक्ति मे कोई फर्क आया, पर उसका सामाजिक मूल्य घट गया, इसमे सन्देह नही।

श्री परिमल गोस्वामी ने 'ब्लैक मार्केट' नामक एक उच्चकोटि का गल्प-सकलन प्रकाशित किया है। उनमे व्यग्य तथा विद्रूप की अपूर्व प्रतिभा है।

इधर के अत्यन्त शक्तिशाली लेखको मे श्री नारायण गागुली का नाम वहुत ही प्रमुख है। उनका 'उपनिवेश' नामक उपन्यास तथा इसके वाद भी उनकी जो कहानिया आदि प्रकाशित हुई है, वे महान् प्रतिभा की सूचक है। गोपाल हालदार ने वगला-उपन्यास मे कम्युनिस्ट धारा का प्रतिपादन किया है और उनका उपन्यास 'एकदा' इलिया एहरनवुर्ग की शैली का वहुत शक्तिशाली उपन्यास है।

अन्त मे मैं कुछ अति-आधुनिक लेखको का उल्लेख करूगा, जिनसे वगला-उपन्यास-साहित्य को वडी आशाए हैं। उल्लिखित नारायण गगोपाध्याय ने तो वगला-साहित्य मे जोर-शोर से पदार्पण किया। उनके पास कथानको का जैसे एक ढेर-सा है। वहुत थोडे समय मे ही वह वगला-साहित्य मे छा गये। सृष्टि-शक्ति की विपुलता की दृष्टि से उनका नम्वर इस समय ताराशकर के वाद ही है। उनके प्रत्येक उपन्यास मे नवीनता के साथ एक दृढ विचारधारा का पुट है। 'उपनिवेश' के अलावा 'स्वर्णसीता' 'सूर्य सारथी' आदि कृतिया वहुत प्रसिद्ध हुईं।

अन्य अति प्रतिभाशाली आधुनिक लेखको मे समरसेन और सुभाष मुखोपाध्याय शक्तिशाली ज्ञात होते है। सुबोध घोष ने भी असाधारण कथानको को लेकर कई अच्छे उपन्यास लिखे है, उनके कथानको की असाधारणता उनकी काल्पनिकता मे नही, वल्कि अल्प परिचित या अपरिचित स्थानो के लोगो को पात्र बनाने मे है। इस समय की उपन्यास-लेखिकाओ मे प्रतिभा वसु, आशापूर्णा देवी तथा वाणी राय को गिनाया जा सकता है। पर इनमे से कोई भी साहित्य को कोई नई दिशा देने जा रही है, ऐसा नही ज्ञात होता। इनके पहले के युग की लेखिकाए-अनुरूपादेवी, स्वर्णकुमारी देवी तथा निरुपमादेवी आदि शायद उपन्यासकार की दृष्टि से अधिक सफल थी। पर इन सवसे तथा अन्य लेखिकाओ से यह आशा की जा सकती है कि आज के जीवन के थपेडे उन्हे उन बातो को सिखा सकेगे जो वे अन्यथा नही सीख पायेगी।

अव मैं केवल एक और उपन्यासकार नही, वल्कि उपन्यास का उल्लेख करूगा। इस उपन्यास का नाम 'जागरी' है तथा इसके लेखक का नाम सतीनाथ भादूरी है। पता नही, यह लेखक कहा साधना कर रहा था, पर इन्होने जव 'जागरी' को लेकर एकाएक साहित्य मे पदार्पण किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये। इस उपन्यास मे एक घटनापूर्ण रात्रि का वर्णन है। इस उपन्यास के मुख्य नायक वीलू को एक राजनैतिक मुकदमे मे सजा की फासी सुनाई जा चुकी है। वह जेल मे वन्द है और उसे अगले दिन सवेरे फासी होनेवाली है। उसके मा और बाप को भी उसकी तरह क्रान्तिकारी मामले मे नही, वल्कि १९४२ के आन्दोलन मे कुछ सजा हुई है और वे भी उसी जेल मे बन्द है। वीलू का छोटा भाई नीलू जेल के फाटक पर है, और उसके सम्बन्ध मे विशेष वात यह है कि अपने राजनैतिक विचारो मे पक्का होने के कारण उसने अपने वडे भाई के विरुद्ध गवाही दी है। पर राजनैतिक कारण से गवाही देने का अर्थ यह नही है कि उसके मन मे वीलू के प्रति प्रेम नही है। सच तो यह है कि वहुत अधिक प्रेम है। अव ये चारो व्यक्ति अपनी-अपनी जगह पर सोच रहे है। यही उपन्यास का मुख्य उपजीव्य है। इसके साथ ही इस उपन्यास मे राजनैतिक लोगो की भलाई-वुराई इस खूवी से आती है कि देखकर दग रह जाना पडता है। इसमे सन्देह नही कि 'जागरी' एक वहुत ही शक्तिशाली उपन्यास है।

वगला साहित्य मे 'जागरी' के लेखक की तरह एक वार और भी एकाएक

ख्याति-प्राप्ति हो चुकी थी, जब 'यायावर' ने दिल्ली के जीवन पर एक अमर-पुस्तक 'दृष्टिपात' लिखी थी।

इसी कोटि मे बाद के उपन्यासो मे विमल मित्र का 'साहव, वीवी, गुलाम' की वात कह दी जाय। इसमे वडे सुन्दर रूप से बगाल मे सामन्तवादी युग के अन्त के साथ-साथ पूजीवाद का प्रारम्भ दिखाया गया। यह उपन्यास अत्यन्त उच्चकोटि का है। युगचित्रण के अतिरिक्त एक-एक चरित्र सजीव है और स्मृति-पटल पर अमिट प्रभाव छोड जाता है। इसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

बगला के अति-आधुनिक साहित्य मे जनवादी तरीके से चीजो को देखने की परिपाटी प्रवल हो रही है। अव शरत् की पारिवारिक तथा प्रेम-सम्वन्धी गुत्थियो मे वह उलझा हुआ नही रह सकता। अवश्य अव भी उपन्यासकारो का सवसे वडा उपजीव्य प्रेम ही है, पर इसके साथ-साथ जीवन के अन्य पहलू भी, विशेषकर आर्थिक पहलू, वहुत जोर पकड रहे है। यह द्रष्टव्य है कि आधुनिक बगला-साहित्य मे ग्राम-जीवन को ही अधिक महत्व दिया गया है। इधर की अन्य उल्लेख-योग्य कृतियो मे दीपक चौधुरी का 'पाताले एक ऋतु' (पाताल मे एक ऋतु) और 'शख विष', रमापद चौधुरी का 'प्रथम पहर', वरेन वसु का 'रगरूट'। कहानी-साहित्य मे विशेषकर नरेन्द्र मित्र, कामाक्षीप्रसाद चट्टोपाध्याय, स्वर्णकमल भट्टाचार्य, शिवराम चक्रवर्ती, सुशील जाना, ननी भौमिक उल्लेखयोग्य है।

: २५ :

अतिआधुनिक बंगला कविता

नजरुल पर हम कुछ कह चुके है, पर उन्हीसे यदि अतिआधुनिक कविता का आरभ माना जाय तो असगत न होगा। कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन-काल मे ही उनकी वाणी रवीन्द्र के मेघमन्द्रस्वर से पृथक् और स्पष्ट सुनाई पडती थी। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के वाद जव वह वगला साहित्य के क्षेत्र मे आये तो उनके हाथो मे उस युग की आधुनिकता की अग्निवीणा थी। वह साहित्य के गगन मे एक धूमकेतु की तरह प्राचीन के विनाश की वाणी को लेकर उद्भूत हुए। जो नवीन आने-वाला था, उसकी रूप-रेखा उनके निकट अभी स्पष्ट नही थी। विद्रोह तो था,

पर विद्रोह के सफल होने के वाद के निर्माण का नक्शा स्पष्ट नही था। यह हालत केवल उनकी कविता की नही थी, राजनीति मे भी स्वराज्य शब्द की अभी परिभाषा नही हुई थी। उन्होने उस युग मे न केवल राजनैतिक विद्रोह का नारा दिया था, वल्कि भगवान् के विरुद्ध भी विद्रोह खडा किया था। उन्होने अग्नि-वीणा मे जिस रूप मे जो कुछ कहा था, वह एक ऐसी वाणी थी, और इस रूप मे कही गई थी, जो कवीन्द्र रवीन्द्र के लिए अस्वाभाविक होती। यद्यपि नजरुल ने साहित्य के क्षेत्र मे एक विद्रोही कवि के रूप मे प्रवेश किया फिर भी प्रेम, विरह आदि विषयो मे वहुत-से गीत लिखे, जो वगला साहित्य की अमर सपदाए है। प्रेम-सवधी उनकी कविताओ के अनुवाद मे वहुत-कुछ नाश हो जाता है, क्योकि इस विषय की उनकी कविताए अत्यत गीत-धर्मी है, और भाषा मे ही उनकी प्रधान खूवी है। अरवी, फारसी, उर्दू के साथ-साथ वगला के वैष्णव कवियो से उन्होने वहुत-कुछ लिया, फिर भी नजरुल नजरुल ही है। यद्यपि उनकी प्रेम-कविताए अनुवाद मे वहुत-कुछ खो देगी, फिर भी एक कविता यो —

प्रदीप निभाये दाओ उठियाछे चाद।
वाहुर डोर आछे, मालाय कि साध?
फुल आनिओ न भवने
केशेर सुवास तव घनाक मने
हृदयेर लागि मोर हृदय काँदे
चन्दन लागे विस्वाद।
खोलो गुण्ठन, फेले दाओ आभरण
हाते राखो हात, तोलो आनत नयन।
वाहिरे वोहुक वातास
वक्षे लागुक मोर तव घन श्वास,
चम्पार डाले वसे मोदेर देखे
कुहु आर पापियाय कोरुक विवाद।

—"वत्ती वुझा दो, क्योकि चाद निकल आया। माला की क्या जरूरत, जवकि वाहु का वधन है। कमरे मे फूल न लाओ, अपने केशो की गध को ही मन मे हिलोरे लेने दो। यहा तो हृदय हृदय के लिए रो रहा हे, इसलिए चदन मे कोई रस नही मिलता। घूघट के पट खोल दो, गहने दूर फेको, हाथ पर हाथ रक्खो,

झुकी हुई आखो को ऊपर उठाओ। बाहर तो हवा चले, और मेरे सीने पर तुम्हारी जल्दी-जल्दी ली हुई सास आकर वार करे। चपा की डाल पर बैठकर हम लोगो को देखकर कोयल और पपीहा आपस मे झगडे।"

इसी प्रकार वह एक अन्य गीत मे इसके लिए अपनी प्रेमिका से माफी माग रहे है कि यदि गलती से प्रेम कर लिया तो उसके लिए माफी दी जाय। असहाय मन मे प्रेम करने की इच्छा भला क्यो जगी ? वह कहते है—

भूल कोरे यदि भालोबेसे फेलि
क्षमियो से अपराध
असहाय मने कैनो जेगेछिलो
भालो बासिबार साध।
कतोजन आसे तव फुलवन
मलय भ्रमर चादेर किरण
तेमति आमिओ आसि अकारण
अपरूप उन्माद।

अर्थात्—

तुम्हारे उद्यान मे न मालूम कितने आते-जाते है,
मलयवायु, भौंरे, चाद की किरणें,
उसी प्रकार मै भी अकारण आया हू
एक अद्भुत पागल
तुम्हारे हृदयरूपी महाशून्य मे सैकडो रवि, शशि, तारे जल रहे हैं।
उन्हीके बीच मे एक धूमकेतु की तरह
भटक कर आया था।

इस समय भी वगला के साहित्य-क्षेत्र मे वहुत-से ऐसे कवि है, जो कवीन्द्र-रवीन्द्र के युग मे ही विख्यात हो चुके थे। ऐसे कवियो मे कालिदास राय, कुमुद मल्लिक, यतीन्द्र वागची आदि कई सुपरिचित कवि है। उनकी कविताए वरावर प्रकाशित होती रही, पर वे कभी विशेष चमक नही पाये। यह फिर भी द्रष्टव्य है कि यद्यपि ये कवि वहुत-कुछ क्लासिक इस अर्थ मे हो गये थे कि ये उन्ही घिसे-पिटे रास्तो पर चलते थे, फिर भी पिछले कुछ वर्षो मे इनपर

वह तो शहीद हो गये। आगे कवि कहते है—

यही हैं हम साढे सोलह आने, यही हमारा देश
वातो से ही जीते हैं वातो से ही मरते है
वातें ही वातें हैं सारी
देशप्रेम का यही है स्वरूप, यही है रूप,
सुभाष की व्यथा इससे अधिक नही
वातो तक ही सीमित है हमारी परेशानिया।

इस प्रकार पुराने ढर्रे के एक अन्य कवि श्री कुमुदरजन मल्लिक है। मै एक वात यहापर साफ कर दू कि कवीन्द्र के व्यक्तित्व के कारण उनके समसामयिक वहुत-से कवि अपनी प्राप्य मर्यादा या सम्मान प्राप्त न कर सके। यदि रवीन्द्रनाथ वगला मे पैदा न होते तो कुमुदरजन मल्लिक, कालिदास राय, यतीन्द्र वागची आदि ही कितने कवि वहुत अधिक सम्मानित होते और वगाल के वाहर उनका नाम सुनाई पडता। पहले ही हम श्री द्विजेन्द्रलाल उर्फ डी० एल० राय का उल्लेख कर चुके है, जो वहुतो के अनुसार रवीन्द्रनाथ के अभाव मे वगाल के सवसे वडे कवि माने जाते। अपने नाटको के कारण वह हिन्दी-जगत् मे सुपरिचित है। हम श्री सत्येन्द्र दत्त का भी उल्लेख कर चुके है, जो अरवी, फारसी, अग्रेजी, चीनी, जापानी कविताओ के वगला कविता मे अनुवाद के क्षेत्र मे इतना काम कर चुके है कि वह उसीके लिए अमर हो गये। इसके अतिरिक्त उनका मौलिक कार्य भी है। वगला कविता का क्षेत्र यथेष्ट विशाल हो चुका है।

हा, तो कुमुदरजन मल्लिक अपने क्षेत्र के एक अच्छे कवि माने गये है। वह भी इस नये युग मे कमर सीधी रखकर चलनेवाली ग्रामवधू की ओर से दृष्टि हटाकर दूसरी वातो पर लिखने लगे हैं, फिर भी उनका इस तरह मोड वदलना वहुत आशिक है।

इसके वाद हम उन कवियो पर आते हैं, जो सचमुच ही नये है। ये नये कवि अपनेको रवीन्द्रनाथ के विद्रोही घोषित करके सामने आये है, पर प्रश्न तो यह है कि क्या वे सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त हो सके है? इसका उत्तर हा और ना दोनो मे देना पडेगा। ये कवि रवीन्द्रनाथ के दर्शन, जीवन के प्रति दृष्टिकोण से अक्सर सम्पूर्ण रूप से मुक्त हो चुके है, इनका आवेदन वहुत-कुछ जनवादी है, फिर भी वे रवीन्द्र की जादूभरी भाषा और शैली से सम्पूर्ण रूप से

मुक्त नही हो सके। इस भूमिका के वाद अतिआधुनिक कवियो के सम्वन्ध मे कुछ बताया जाता है। इस सक्षिप्त आलोचना मे वहुत-से महत्वपूर्ण कवि छूट जायगे, पर जहातक हो सकेगा, सव धाराओ के प्रति न्याय करने चेष्टा की जायगी।

रवीन्द्रोत्तर युग पर आते हुए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल के अन्तिम दिनो के तथा रवीन्द्रोत्तर युग के कवि कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रभाव से मुक्त हो चुके है? इसका उत्तर एक वाक्य मे देना सम्भव नही है। हमने पहले ही वताया कि जिस समय कवीन्द्र रवीन्द्र वगला के साहित्याकाश मे पूरी प्रतिभा के साथ चमक रहे थे, और ऐसे वह अन्त तक चमके, उस समय भी अच्छे-अच्छे कवि अपने लिये स्वतन्त्र दिशाओ मे क्षेत्र का निर्माण कर रहे थे। ऐसा न समझा जाय कि इस प्रभाव-मुक्ति का आन्दोलन सम्पूर्ण रूप से सज्ञानकृत था, या उसमे और कोई प्रभाव काम कर रहा था। चाहे रवीन्द्रनाथ के जीवनकाल मे हो या उनकी मृत्यु के वाद हो, किसी भी वगला कवि के सम्वन्ध मे यह कहना सम्भव नही है कि वह सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त हो गया है, यहातक कि जिन लोगो ने इस वात को अच्छी तरह से समझ लिया कि किसी भी हालत मे कविता की नदी को उस जमीन पर वहाना नही है, जिसपर रवीन्द्रनाथ ने वहाया, वे भी उनके दर्शन से सम्पूर्ण रूप से मुक्त रहते हुए भी उनकी जादूभरी भाषा और शैली से पूर्ण मुक्ति नही प्राप्त कर सके। ऐसा कहना सही नही होगा कि कोई भी वगला-लेखक या कवि सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त हो गया।

फिर भी यह तथ्य भी उतनी ही दृढता के साथ मानना पडेगा कि वरावर उनसे मुक्ति का प्रयास हुआ और अतिआधुनिक कवियो के क्षेत्र मे यह मानना ही पडेगा कि वे केवल परोक्ष रूप से ही रवीन्द्र-प्रभाव से प्रभावित माने जा सकते हैं।

हम पहले ही वता चुके है कि अतिआधुनिक कवियो के सम्बन्ध मे कुछ ब्यौरे-वार तरीके से कहना सम्भव नही है। जीवनानन्द दास को अतिआधुनिक कवि कहा जा सकता है। उनके सम्वन्ध मे यह कहा गया है कि उनकी कविता कुछ धु धली होती है। क्या यह धु धलापन आधुनिकता का कोई अनिवार्य गुण है? नही, ऐसा तो नही मालूम होता, क्योकि कई अतिआधुनिक कवि ऐसे है, जिनकी

वाते वहुत अच्छी तरह समझ मे आती है, पर जीवनानन्द दास की भाषा वडी प्रखर और तेजस्वी ज्ञान होने पर भी, ऐसा मालूम होता है कि कवि जो कुछ कह रहा है, उसकी सारी वाते हमारे पल्ले नही पड रही है । ऐसा मालूम होता है कि जव हम धु धलेपन से ऊवने से लगते है, तव दो-एक पक्तिया ऐसी आ जाती है जो हमारी समझ मे आ जाती है, पर फिर वही वात होती है । श्री बुद्धदेव वसु का कहना है कि जीवनानन्द इतने जिद्दी तरीके से अपने-आपमे समाये हुए है कि वे परम्परा के स्वदेश को त्यागकर एक ऐसे किन्नरो के देश को अपनाते है जिसमे वे ही वे है । उनकी दुनिया उलझी हुई छायाओ तथा टेढे-मेढे जलाशयो चूहा, उल्लू, चमगादड, चादनी छिटके हुए जगलो मे फुदकते हुए हिरणो, प्रभात तथा अन्धकार, वर्फ को तरह ठण्डी मत्स्य कन्याओ और महान् मीठे समुद्र की दुनिया है । जीवनानन्द प्रकृति को किस रूप मे लेते है, इस सम्वन्ध मे श्री बुद्धदेव वसु कहते है—"एक अर्थ मे सभी कवि प्रकृति के कवि होते है, पर जीवनानन्द एक विशेष अर्थ मे ही ऐसे है । वह प्रकृति मे, भौतिक प्रकृति मे, और उसके कुछ विशेष पहलुओ मे डूवे हुए है । वह प्रकृति-पूजक है, पर किसी भी अर्थ मे अफलातूनवादी या वेदान्ती नही है, वल्कि वह प्राक्सभ्यता के युग के एक ऐसे व्यक्ति है, जो प्रकृति की वस्तुओ से इन्द्रियो की सतह पर प्रेम रखते है और ऐसा वह पूर्णता के चिह्न प्रतीक या नमूने के रूप मे नही करते, वल्कि वह उनसे जो वह है, उसी होने के लिए प्रेम करते है । वे केवल देखने से सन्तुष्ट न रहकर प्रकृति को स्पर्श और गन्ध की उलझी हुई जगली वृत्तियो के माध्यम से प्राप्त करने की चेष्टा करते है । उन्हे चिडियो के परो की गन्ध से तथा जिस पानी मे चावल अभी धोया गया है, उससे प्रेम है, और वह चाहते है कि वह किसी महान् श्यामल तृणमाता के गहरे मीठे गर्भ से घास के रूप मे उत्पन्न होते । उन्हे अव यहातक कि किंभूतकिमाकार वस्तु से प्रेम है, पर वह जिस वातावरण को उत्पन्न करते है वह किसी प्रकार अपार्थिव नही है, और न उससे किसी प्रकार भय उत्पन्न होता है ।" फिर भी श्री वसु यह मानते है कि वह वगला कविता के लिए वहुत महत्वपूर्ण इसलिए है कि उन्होने वगाल की जनता को एक नये सुर वल्कि स्वर-लहरी का अभ्यस्त कर दिया है। वह शायद अपनी कविता मे, पढे-लिखे पर अपनी नाव अपने-आप खेने मे असमर्थ वहुत-से आदर्शो की हवा मे कभी इधर वहते

हुए कभी उधर वहते हुए, बगाली मध्यवित्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। उन्होने अक्सर प्रेम-सम्बन्धी कविताए भी लिखी है। एक कविता का अश यो है—

जनान्तिके
तोमा के देखार मत चोख नेइ—तबु
गभीर विस्मये आमि टेर पाइ—तुमि
आजो एइ पृथिवीते 'रये गेछ,
कोथाओ सान्त्वना,नेइ पृथिवीते आज,
बहुदिन थेके शान्ति नेइ।
नीड नेइ
पाखिर मतन कोनो हृदयेर तरे।
पाखि नेइ।
मानुषेर हृदयके न जागाले ताके
मोर, पाखि, अथवा वसन्तकाल बोले
आज तार मानवके कि करे चेनाते पारे केउ।
चारिदिके अगणन मेशिन ओ मेशिनेर देवतार काछे
निजेके स्वाधीन बोले मने करे निते गिये तबु
मानुष एखनओ विशृंखल।
दिनेर आलोर दिके ताकालेइ देखा जाय लोक
केवलि आहत हये मृत हये स्तब्ध हय
ए छाड़ा निर्मल कोनो जननीति नेइ
ये मानुष—से जेइ देश टिके थाके सेइ
व्यवित हय—राज्य गढे-साम्राज्येर मत कोनो भूमा
चाय। व्यक्तिर दाविते ताइ साम्राज्य केवलि भेंगे गिये
तारइ पिपासाय
गडे ओठे
ए छाडा अमल कोनो राजनीति पेते हले तबे
उज्ज्वल समय स्रोते चले जेते हय।
सेइ स्रोत आजो एइ शताब्दीर तरे नय।

सकलेर तरे नय।
पशपालेर मत मानुषेरा चरे
झरे पडे।

अर्थात्—

तुमको देखने योग्य आख नही है, फिर भी
अत्यन्त गहरे विस्मय से मुझे ज्ञात होता है कि तुम
आज भी इस पृथ्वी पर रह गये हो।
आज पृथ्वी मे कही भी सान्त्वना नहीं है,
बहुत दिनो से शान्ति नही है
नीड नहीं है चिडिया की तरह किसी हृदय के लिए,
चिडिया नहीं है।
मनुष्य के हृदय को न जगाने पर उसे
सवेरा, चिडिया या वसन्तकाल कहकर
आज उसके मानव को कैसे कौन परिचित करवा सकता है।
चारो ओर
अनगिनत मशीन और मशीनो के देवताओ के निकट
अपनेको स्वतन्त्र करके
समझने पर भी
मनुष्य है अब भी विशृ खल।
दिन की रोशनी की तरफ ताकने
पर ही देखा जाता हे कि लोग
बराबर आहत होकर, मृत होकर, स्तब्ध हो जाते हैं,
इसके अलावा नही है निर्मल कोई जननीति।
जो मनुष्य और जो देश टिक जाते हैं,
वे ही क्रमश व्यक्ति बनते हैं और राज्य बन जाते हैं,
साम्राज्य की तरह
किसी भूमा को
चाहते हैं।
इसीलिए व्यक्ति के दावे के कारण साम्राज्य टूटकर

फिर उसीकी पिपासा से
निर्मित हो जाते है ।
इसके अतिरिक्त कोई निर्मल राजनीति पाना हो तो
उज्ज्वल समय स्रोत मे चला जाना पडता है ।
वह स्रोत आज भी इस शताब्दी के लिए नही है,
सबके लिये नही है ।
टिड्डी दल की तरह मनुष्य चरते है,
फिर झर पडते है ।

यह स्पष्ट है कि इस कविता मे, जैसा कि बताया जा चुका है, बडी-बडी भावनाए झाकी-सी लेते रहने पर भी किसी स्थान पर सुगठित होकर स्पष्टता के साथ आगे नही आ पाती । इसमे पहले वे चारो तरफ फैली हुई विश्रृखलता का इगित करते है, कुछ मशीन और मशीन के देवताओ के विषय मे इस प्रकार की बात कहते है कि मनुष्य अपनेको स्वतन्त्र समझने पर भी अब भी विश्रृखल है । फिर वह कहते है कि कोई निर्मल जननीति नही है । जो मनुष्य और जो देश टिक जाते हैं, वे ही क्रमश व्यक्ति बनते है और राज्य बन जाते है। फिर कहते है कि व्यक्ति के दावे के कारण साम्राज्य टूटकर फिर उसीकी पिपासा से निर्मित हो जाते है । अब यह कहा जाय कि कुछ भी समझ मे नही आता तो ऐसी बात नही, पर क्या समझ मे आता है, इसे कहना टेढी खीर है ।

जीवनानन्द प्रेम के भी कवि है। उनकी कविता 'वनलता सेन' पढे-लिखे लोगो मे उतनी ही प्रसिद्ध हो चुकी है, जितनी कि कोई कविता हो सकती है । हिन्दी मे भी कई बार इसका अनुवाद आ चुका है । इस कारण मै यहापर 'आकाश लीना' नामक एक कविता प्रस्तुत करूगा । उसके पहले यह बता दिया जाय कि जीवनानन्द दास उस धारा के प्रतीक है, जिसे हिन्दी मे नई कविता कहते है और जिसके सम्बन्ध मे हिन्दी मे अभी तक बहुत तर्क-वितर्क जारी है । बगला मे यह कथित नई कविता इस प्रकार से रगमच पर आई कि किसीको अखरी नही । स्वय रवीन्द्रनाथ ने उसका आवाहान किया था । बगला मे नई कविता-वालो ने यह दावा भी नही किया कि वह पुरानी कविता को समाप्त करने के लिए उदित हुई है ।

जो हो, 'आकाशलीना' इस प्रकार है—

सुरजना, वहा पर तुम मत जाओ,
उस युवक के साथ बतकही न करो,
लौट जाओ हे सुरजना,
नक्षत्र की रुपहली भरी रात मे
लौट आओ इस मैदान मे, तरगो मे,
लौट आओ मेरे हृदय मे।
दूर से दूर—और दूर
युवक के साथ तुम और न जाओ।
उसके साथ कैसी बातें ? उसके साथ ?
आकाश की आड मे, आकाश मे,
मिट्टी की तरह हो तुम आज
उसका प्रेम घास होकर उगता है।
सुरजना,
तुम्हारा हृदय आज घास है,
बतास के ऊपर बतास
औ' आकाश के उस पार आकाश है।

दूसरी कविता 'आरूढ भणिता' हे, जिसमे कवि ने, मालूम होता है, अरसिक आलोचको की खबर ली है। वह इस प्रकार है।

मैने मलिन हँसी हँसकर कहा,
"तो बल्कि आप ही एक कविता क्यो न लिख डालें।"
पर छायापिड ने कोई उत्तर नही दिया।
समझ गया कि वह कवि तो नहीं,
सिर पर चढाई हुई बतकही मात्र है।
पाडुलिपि, भाष्य, टीका, स्याही और कलम पर
बैठा है वह सिहासन मे।
वह कवि नहीं, वह अजर अक्षर अध्यापक है,
उसके दांत नहीं हैं, उसकी आखो मे अक्षय कीचड़ है,
पगार हजार रुपये महीना है,

और डेढ एक हजार वह मरे हुए कवियो का
गोश्त और उसके कोडो को खोटकर बना लेता है।
यद्यपि उन सब कवियो की भख ने
प्रेम-अग्नि की सेक चाही थी,
पर मुह बाए घडियाल की तरंगो मे
वे लोट-पोट हुए थे।

रात्रि को कवि जिस रूप मे देखते है, उसका कुछ वर्णन इस प्रकार है—

सार्वजनिक नलके को खोलकर
कोढी चाट लेता है पानी।
या वह नलका फस गया था।
अब दोपहर सुप्त नगरी पर
गिरोह बांध कर छा जाता है।
एक मोटरकार भेड की तरह खास गई
अस्थिर पेट्रोल झाड कर,
निरन्तर सतर्क रहने पर भी कोई शायद
भयानक रूप से पानी मे गिर पडा है।
तीन रिक्शे दौडकर मिल गए अन्तिम
गेस बत्ती मे, मायावी की तरह जादू से।
मै भी फियरलेन छोडकर हठवश
मील पर मील चलकर, दीवार से सटकर
जा पहुचा बेंटिक स्ट्रीट मे, टेरिटी बाजार मे
मूगफली की तरह सूखी बतास मे।
अलसाई हुई रोशनी की गर्मी कपोल को
चूमती है
चीड बक्स की लकड़ी, लाख, टाट, चमड़े की बू
डायनेमो की गूज के साथ मिलकर
धनुष की डोरी को तान रखते है।

अपने सम्बन्ध मे कवि एक कविता मे कहते है—

हे नर, हे नारी !
मैने तुम्हारी धरती को किसी दिन
पहचाना नही,
फिर भी मै किसी दूसरे नक्षत्र का जीव नही हू ।
जहा स्पन्दन, सघर्ष, गति, उद्यम, चिन्ता, कार्य,
वही सूर्य, धरती, वृहस्पति, कालपुरुष, अनन्त आकाश,
ग्रन्थिया,
सैकडो सुअरो का चीत्कार वहा है,
सैकडो सुअरियो की प्रसव-वेदना का आडम्बर है,
यह सब भयानक आरती है ।
गभार अन्धकार की नीद के जायके मे
मेरी आत्मा का लालन हुआ है,
मुझे भला जगाना क्यो चाहते हो ?
हे समय ग्रन्थि, हे सूर्य, हे माघनिशीथ की कोयल,
हे स्मृति, हे हिमवायु, मुझे भला क्यो जगाना चाहती हो ?

अन्त मे वह कहते है कि मैं किसी दिन नही जागूगा । इस कविता से आधुनिक मध्यवित्त वर्ग के मन की कुछ थाह मिलती है या यह कहा जाय कि उसमे व्याप्त गडबडियो और विभ्रमो का पता लगता हे और थाह मिलने की रही-सही आशा दूर हो जाती है ?

जीवनानन्द दास इस युग मे फैली हुई उद्भ्रान्तता तथा गुमराही का अच्छा चित्रण करते है। यदि वह इसमे से कोई रोशनी की रेखा नही निकाल पाते तो उसके लिए उन्हे दोष देना व्यर्थ है । वह क्रान्ति के कवि नही हे । उनकी कविता मे क्रान्ति का विगुल नही सुनाई देता । फिर भी उसे महत्व प्राप्त है, क्योकि वह एक मुकुर हे, जिसमे हम आधुनिक युग के भारतीय पढे-लिखे वर्ग के हृदय-स्पदन को अच्छी तरह प्रतिफलित देखते है । यह हृदय क्लान्त है, इसे पथ का कोई पता नही है, पर सौन्दर्य के प्रति इसकी आखे खुली हुई हे । उसे प्रकृति से प्यार हे । यह इतना विदग्ध है कि जब किसी वस्तु को प्रत्यक्ष करता है तो वह उसके साथ-साथ बहुत-सी और वस्तुओ को भी देखता है । वह कभी किसी वस्तु को विना कविता के नही देख पाता, फिर भी वह भ्रान्त और उद्भ्रान्त हे ।

जीवनानन्द इसी उद्भ्रान्ति श्रौर सौन्दर्य-वोध के प्रतीक है ।

श्रब हम इस युग के दूसरे कवि सुभाष मुखोपाध्याय को लेते है, जो खुलकर यह कहते है कि वह किसान श्रौर मजदूरो के कवि हैं । उनकी कविता की वक्तव्य-वस्तु जीवनानन्द दास की तरह श्रस्पष्ट नही है, पर इसीको वहुत-से लोगो ने दोष वताया है । सुप्रसिद्ध श्रालोचक श्री वुद्धदेव वसु का यह कहना है कि सुभाष तो कविताश्रो मे व्याख्यान-से देते दृष्टिगोचर होते है, श्रौर वह कविता के क्षेत्र से उतरकर भर्त्सनाए देने, तरह-तरह के मुह वनाने श्रौर सन्देश देने मे पड गये है । उनकी एक छोटी-सी कविता इस प्रकार है—

केजाये ?
श्रामरा ।
श्रामरा गागेर
श्रामरा शहरेर
हाड़काली मनुषा
चलेछि मिछिले ।
हाते कि ?
निशान ।
कोथाय जाश्रो ?
दमन राजार
दरवारे
थामो ।
ना ।
वाधा दिलेंश्रो—
ना ।
संगीन बिधलेश्रो
ना ।
रास्ता दाश्रो ।
श्रामादेर जेतेइ हवे
मिछिले ।

श्रर्थात्—

कौन जा रहा है ?
हम ।
हम गाव के है,
हम शहर के हैं
काली हड्डी वाले मनुष्य ।
हम जलूस मे चल रहे हैं ।
हाथ मे क्या है ?
झण्डा ।
कहा जा रहे हो ?
दमन राजा के दरबार मे ।
रुको ।
नही ।
बाधा देने पर भी ..।
नहीं ।
सगीन से छिदने पर भी .।
नहीं ।
रास्ता छोड दो
हम लोगो को जाना ही है
जलूस मे ।

ऊपर जो कविता दी गई है, वह साम्यवादियो के बगला दैनिक 'स्वाधीनता' मे छपी थी, इसलिए स्वाभाविक रूप से उसमे प्रचार का अश अधिक है। पर यह न समझा जाय कि सुभाप मुखोपाध्याय की सभी कविताए ऐसी है। सुभाष अपने पूर्ववर्ती दशक के कवि प्रेमेन्द्र मित्र से बहुत-कुछ मिलते है, पर जैसा कि कहा गया है, प्रेमेन्द्र मित्र ने भी यद्यपि अपना जीवन यह कहकर शुरू किया कि वह कुलियो और दलितो के कवि है, फिर भी बाद को वह उससे हट गए, पर कम-से-कम वही उनका एकमात्र रूप नही रहा, पर सुभाप ने जो बाना पहन लिया, वह उसीको निभाते रहे।

सुभाष मुखोपाध्याय न केवल अपनी धारा के एक विशिष्ट कवि हुए, बल्कि वह एक हद तक समरसेन के साथ इस धारा के अग्रणी माने गये। सुप्रसिद्ध

आलोचक अबूसईद अयूव ने अपनी आधुनिक बगला कविता-सम्बन्धी पुस्तक मे यह कहा था कि समरसेन और सुभाप मुखोपाध्याय मे प्रचुर सम्भावनाए है, पर बाद को दूसरे समालोचको ने उनमे उन सम्भावनाओ को फलते-फूलते नही देखा। यहापर चलते हुए यह बता दिया जाय कि समरसेन उन कवियो मे से है, जिन्होने केवल गद्य-काव्य के ढग की चीजे लिखी है। उनकी कविताए गद्य-काव्य के रूप मे होने पर भी गीतधर्मी है, कम-से-कम यही आभास मिलता है। श्री बुद्धदेव वसु का यह विचार है कि उनकी कविताए एक ऐसी वाला की तरह है, जो हिलने-डुलने मे बल खाती है, साथ ही बडी चुस्त है। पहले सुभाष राजनीति से सम्बद्ध नही थे, पर बाद को वह राजनैतिक कविताए लिखने लगे।

सुभाप के सम्बन्ध मे बल्कि यह भी कहा गया कि जिन लोगो ने साम्यवादी ढग की कविताए लिखी, वे भी सुभाप मुखोपाध्याय द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर नही चले। जहा सुभाष मुखोपाध्याय मे प्रचलित समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध मे सन्देह और व्यग का वातावरण है और जहा उनकी कविता मे केवल कोडे लगाने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है, वहा इसी प्रकार के दूसरे कवियो मे वर्तमान को बदल डालने के लिए अधिक-से-अधिक आग्रह के साथ जीवन के प्रति गहरी श्रद्धा और मनुष्य के प्रति प्रेम की भावना अधिक है। यह कहा जा सकता है कि बगला कविता ने निपट राजनैतिक मार्ग को छोडकर जीवन की समस्याओ को, जिसमे राजनीति भी आ जाती है, एक ऊची सतह पर अपनाकर अपने लिए अच्छा ही किया। श्री अबूसईद अयूव ने यह जो लिखा था कि आधुनिक बगला कविता से रोमान्टिक भावधारा लुप्त होती जा रही है, वह बात सत्य प्रमाणित नही हुई। सच्ची बात यह है कि रोमाटिकता ने एक क्रान्तिकारी दिशा अपनाई, या यो कह लीजिये कि क्रान्तिकारी भावनाओ ने रोमाटिकता का बाना पहन लिया, जिससे शायद दोनो को फायदा हुआ।

फिर भी, कही ऊपर सुभाष मुखोपाध्याय की जो कविता दी गई है, उससे यह भावना किसीके मन मे न बैठ जाय कि प्रगतिवादी कवियो ने केवल प्रचार-कार्य को ही अपनाया। यह सही है कि राजनीति प्रगतिशील कवियो की एक प्रधान उपजीव्य रही, यह तो स्वाभाविक था, क्योकि आज सभी क्षेत्रो की अन्तिम लडाइया राजनीति मे लडी जाती है, और उसमे जैसा निर्णय होता है, उसीके अनुसार कला, साहित्य, सगीत, सवका भाग्य-निर्णय एक बडी हद तक

होता है। विमलचन्द्र घोष ऐसे अन्यथा शक्तिशाली कवि की 'बाजपाखी' या बाज पक्षी नाम के कविता के कुछ अश का अनुवाद प्रस्तुत करेगे। इसमे प्रचार-कार्य है, अमरीका के विरुद्ध विद्वेष है, शायद इस कारण कुछ लोगो को यह पसन्द न आवे, पर साथ-ही-साथ यह मानना पडेगा कि इसमे कविता के उपादान भी हैं। मै केवल थोडे-से अश का ही अनुवाद दूगा।

अब्राहम लिकन के हृदपिण्ड को चोच से दबाकर
विश्व लोभी बाज उडता है।
वह धूसर पीला मृत्युदूत है,
उसके गिद्ध ऐसे टेढे नाखूनो मे गणतन्त्र खून के आसू रो रहा है।
मूर्त अमगल कुटिल बर्बर पक्षी उडता है
निग्रोघाती दम्भासुर, सभ्यता का यम
शिशु रक्त से सिक्त ओठो को लेकर
यह बाज कोरिया मे उडता है
मचूरिया, फारमोसा मे—
पडती है उसकी अशुभ पीली छाया
वह घृणित बाज यह जानता है
कि पतन तो होकर रहेगा।

—इत्यादि।

इस प्रकार से यह कविता चलती जाती है। यह न समझा जाय कि इसके कवि श्री विमलचन्द्र घोष ने केवल इसी प्रकार की कविताए लिखी है। 'सावित्री' नाम से उनका एक काव्य प्रकाशित हुआ हे, जिसमे वे 'तिलोत्तमा' नामक सर्ग मे यो लिखते हैं—

सहस्र कर्मो के बीच मे स्मृति के एकात दर्पण मे
बार-बार वह मुखडा लरजता रहता है
देव-दैत्य-विजयिनी उस तन्वी की ऋजुता,
दोनो आखो में बिजली का उज्ज्वल भोरा,
उसकी कुन्तल-नागिनी याद पडती हे।
वासना के दुखी लोक मे यौवन पहरेदार है,
काव्य लोक मेघाच्छन्न है।

हे मेरी वन्दिनी नायिका, दुर्गम स्वप्न के दुर्ग मे
अतनु तुमको आज भी वह परिक्रमा कर रहा है ।
सारी रात स्मृति की शिखा से दीप जलाकर
विह्वल आत्मा मे
प्रेम की कविता लिखता हूं,
तिल-तिल करके शोणित के स्वाप्निक अक्षरो मे ।
अयि तिलोत्तमा,
आज भी तुम हृदय के अस्फुट भाषण मे अपलक हो ।

श्री विमल घोष की दोनो कविताओ की विषय-वस्तु की तुलना करने पर यह ज्ञात होगा कि हमने यह क्यो कहा कि यद्यपि बाज पक्षीवाली कविता एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई, फिर भी उसमे कविता की छाप निस्सदेह है ।

अब मैं एक ऐसे कवि सुकान्त भट्टाचार्य पर आता हू, जो बहुत थोडे साल तक ही जीवित रहे, पर बगला-साहित्य पर अपनी छाप छोड गये । उनकी कवित्व-शक्ति उतनी ही नि सदिग्ध है, जितनी कि उनकी प्रगतिशीलता । वह किसी बात को लट्ठमार तरीके से कहने के आदी नही, पर इसके कारण उनकी वक्तव्य-वस्तु न तो किसी दूसरे के मुकावले कम स्पष्ट है और न उसमे कोई गोलमोल बाते ही है । वह ऊची सतह से अपने रावण या कस पर हमला करते है, पर इसके लिए उनका आक्रमण न तो व्यर्थ जाता है, और न उसकी प्रखरता मे ही कोई कमी आती है । स्वय सुभाष मुखोपाध्याय ने सुकान्त भट्टाचार्य की कविताओ के प्रथम सग्रह की भूमिका लिखते हुए यह स्वीकार किया था, "सुकान्त नये युग के सार्थक कवि है । साधारण मनुष्य के साथ ऐसी एकात्मकता, सरल बात को सीधे-सीधे कह सकने की दु साहसी सामर्थ्य सुकान्त के समसामयिक और किसी कवि मे दृष्टिगोचर हुई या नही, इसमे सन्देह है । उम्र मे सबसे छोटे होने पर भी सुकान्त कवित्व-शक्ति मे अग्रगण्यो मे से एक थे । स्कूल मे छात्र रहते समय सारे देश मे इतनी विराट् ख्याति बगला के किसी और कवि को नसीब नही हुई । उसी उम्र मे सुकान्त की एक से अधिक कविताओ का अनुवाद [विदेश मे हुआ और उसकी कविता पर आलोचना भी हुई । जो लोग सुकान्त की कविता पढेगे, वे इस बात को स्वीकार करने के लिए मजबूर

होगे कि सुकान्त की कविता न केवल विराट् सम्भावनाओ के इगित स्वरूप है, वल्कि उसमे महान् परिणति की स्पष्ट ध्वनि है। इसीलिए उनकी 'छाडपत्र' नामक कविता को बगला-साहित्य मे स्थायी आसन प्राप्त हो गया। कविता के विचित्र कला-कौशल मे, छन्द की आश्चर्य-दक्षता मे, शब्द-निर्वाचन की अशेष निपुणता मे इस किशोर कवि ने राजनैतिक विरोधियो को भी अभिभूत कर दिया, पर ऊपरी तामझाम के मोह मे सुकान्त कवि वधे ही नही।"

छाडपत्र

ये शिशु भूमिष्ठ होलो आज रात्रे
तार मुखे खबर पेलुम :
से पेयेछे छाडपत्र एक,
नतुन विश्वेर द्वारे ताइ व्यक्त करे अधिकार
जन्ममात्र सुतीव्र चित्कारे।
खर्वदेह नि सहाय, तबु तार मुष्टिबद्ध हात
उत्तोलित, उद्भासित
की एक दुर्बोध्य प्रतिज्ञाय।
से भाषा बोझे ना केउ,
केउ हासे, केउ करे मृदु तिरस्कार।
आमि किन्तु मने मने बुझेछि से भाषा
पेयेछि नतुन चिठि आसन्न युगेर—
परिचय-पत्र पढि भूमिष्ठ शिशुर
अस्पष्ट कुयाशाभरा चोखे।
एसेछे नतुन शिशु, ताके छेडे दिते हबे स्थान
जीर्ण पृथिवीते व्यर्थ, मृत आर ध्वसस्तूप-पिठे
चले जेते हवे आमादेर।
चले यावो—तवु आज यतक्षण देहे आछे प्राण
प्राणपणे पृथिवीर सरावो जजाल,
ए विश्वके ए शिशुर वासयोग्य करे यावो आमि—
नवजातकेर काछे ए आभार दृढ अगीकार।

अवशेषे सव काज सेरे
आमार देहेर रक्ते नतुन शिशुके
करे यावो आशीर्वाद,
तारपर हवो इतिहास ॥

अर्थात्—
आज रात मे जो बच्चा भूमिष्ठ हुआ,
उसके मुह से यह खबर मिली कि
उसे एक पासपोर्ट मिला,
इस कारण नये विश्व के द्वार मे वह सुतीव्र कोलाहल से
अपने अधिकार को जन्म पाते ही जताता है।
नन्हा-सा शरीर है, फिर भी मुट्ठी वंधी हुई हैं,
उत्तोलित और उद्भासित है
एक दुर्बोध्य प्रतिज्ञा मे।
उस भाषा को कोई नही समझता,
कोई हँसता है, कोई मृदु तिरस्कार करता है।
पर मैने मन-ही-मन उस भाषा को समझ लिया है,
मैने आसन्न युग की नई चिट्ठी पा ली है।
मैने भूमिष्ठ शिशु की अस्पष्ट कोहराभरी आखों में
उसका परिचयपत्र पढ लिया है।
नया शिशु आया है, उसके लिए स्थान छोड देना पडेगा।
इस जीर्ण पृथ्वी पर से व्यर्थ, मृत और खडहरो को पीठ पर
वाधकर
हमें चल देना पडेगा
तो चला जाऊगा, पर जवतक देह में प्राण है,
भरसक पृथ्वी के कूडे को दूर करूगा,
इस नवजात शिशु के निकट यह है मेरी दृढ प्रतिज्ञा कि
इस विश्व को हम इस शिशु के रहने लायक वना जायंगे।
अन्त में सव काम समाप्त कर
अपनी देह के रक्त से नये

शिशु को आशीर्वाद दे जाऊगा,
इसके बाद इतिहास हो जाऊगा ।

आधुनिक कवियो मे विष्णु दे भी महत्वपूर्ण है । उनपर एजरा पाउण्ड और टी० एस० इलियट का प्रभाव पडा है । विष्णु दे के सम्बन्ध मे श्रीअमलेन्दु दास गुप्त का यह कहना है कि उनके प्रयोग बहुत साहसपूर्ण हुए है, पर उनके प्रारम्भिक प्रयासो मे शायद गहरी अभिज्ञता की कमी थी और इसके फलस्वरूप शिल्पगत उच्चता के बावजूद उनमे हृदय को आन्दोलित करने की शक्ति अक्सर नही आती । यत्र-तत्र असदिग्ध सौन्दर्य के टुकडे, सूक्ष्म शहरी व्यग की पक्तिया तथा अनिश्चित भावनात्मक शक्ति है, पर कुल मिलाकर इन कविताओ से यह छाप उत्पन्न नही होती कि उनके पीछे एक सगठित चेतना है, कई अवसर पर तो ऐसा मालूम होता है कि उनकी एकमात्र बडाई इस बात मे है कि शिल्प की दृष्टि से वह बहुत काफी आगे बढी हुई है । उनकी सफल कविताओ मे भी सब ऐसा पाया जाता है, मानो उनकी विचार-प्रवृत्तियो मे जान-बूझकर कडियो को क्रम से नही रक्खा गया है । अवश्य ही दास गुप्त यह भी मानते है कि कवि ने जनता के सामाजिक तथा राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है । विष्णु दे को कुल मिलाकर एक प्रगतिशील कवि माना जाता है ।

एक अन्य कवि श्री अमिय चक्रवर्ती का सम्बन्ध श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर से बहुत अधिक था, फिर भी वे केवल अनुकरणकारी नही रहे है । अमिय चक्रवर्ती ने सारी दुनिया का बार-बार पर्यटन किया है । इस भ्रमण की छाप उनकी कविता पर पडी है । एक मजे की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ ने अपनी भ्रमण-कहानियो के अतिरिक्त अपने भ्रमण का जिक्र बहुत कम किया है, कविता मे तो वह कभी बगाल के बाहर के वातावरण मे शायद ही जाते हो, पर श्री चक्रवर्ती की बात और है । उन्होने बराबर बाहर से अनुप्रेरणा ली है और उनकी कविताओ मे हमे अजीब देशो, चेहरो तथा भाषाओ से साबका पडता है । यदि अन्तर्गत वस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो रवीन्द्रनाथ की कविता मे विश्ववासी के लिए सर्वत्र आवेदन होते हुए भी उनका पहिनावा भारतीय और बगाली है, पर श्री चक्रवर्ती एक बगाली मन रखते हुए भी उनके मन के लेन्स का मुह बहुत अधिक बगाल के बाहर के लोगो, दृश्यो आदि की ओर निबद्ध है । इस अर्थ मे वह रवीन्द्रनाथ

से अलग ढग का विश्व-आवेदन रखते है।

श्री सुधीन्द्रदत्त भी एक प्रमुख कवि माने जा सकते है। रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल मे ही वह विख्यात हो चले थे और रवीन्द्रनाथ ने उनकी प्रशसा मे कुछ लिखा भी था। सुधीन्द्र कवीन्द्र से वहुत-कुछ लेते है, फिर भी उनकी प्रकृति विल्कुल उन्हीकी अपनी है। सुधीन्द्र ने वरावर यह माना कि वह रवीन्द्र-साहित्य के ऋणी है, और जैसा कि कवीन्द्र ने उनकी प्रशस्ति करते हुए कहा था, उनका यह साहस शक्ति से उत्पन्न है। जिसमे शक्ति होती है, वही बिना किसी प्रकार के लगाव-छिपाव के अपने ऋण को मान लेता है। सुधीन्द्र कुछ अधिक उम्र मे काव्य-क्षेत्र मे आये और यह कहा जा सकता है कि इससे उनको कोई हानि नही हुई क्योकि यौवन के साथ जिस जोश का सम्बन्ध वताया जाता है, उनकी रचनाओ मे उस जोश की कोई कमी नही थी। फिर भी यह मानना ही पडेगा कि सुधीन्द्र की कविताए गत दशक की उतनी नही है, जितनी कि पहले दशको से उनका सम्बन्ध है।

इधर कुछ और भी शक्तिशाली कवि हुए हैं, जिनकी कविताओ का एकाध नमूना ही देखकर हमे सन्तोष करना पडेगा। नये कवियो मे पलायनवादी किस्म की कविताए लिखने का भी रिवाज है, जैसे लीजिये अरुणकुमार सरकार की 'नीद' नामक कविता, जिसमे वह रूखे वर्तमान से अपनेको त्रस्त दिखलाते हुए ही उसे वदलने का कोई प्रयास न कर निद्रा की गोद मे आश्रय लेने मे ही अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझते है। वह कहते है—

> सारा दिन अनात्मीय रूखे वातावरण मे बीत गया,
> हे रात्रि, मेरी विनती सुनो, मित्र हो जाओ, आखें लाल-पीली न करो।
> मुझे सिर्फ नीद दो, मुझे उस अज्ञात लोक मे ले जाओ,
> जहा स्मृति की लाश शुरू से आखिर तक अंधकार से घिरी हुई मोटी
> चादर मे पडी है ढकी
> नहीं, नहीं है, कुछ नही है, नहीं यह देह मन कुछ नहीं है,
> रोजमर्रा की भौंहे चढाना, निरानन्द कुत्ते की पुकार,
> और दूर आकाक्षा की टेढी रेखा एक अप्रतिम नदी है,
> यदि मुझे ऐसी नींद मिले जिसमे मै डूब जाऊ .
> हे रात्रि, मेरी विनती सुनो।

दया करो जो शरणागत है, सिर नवा रहा है उसकी देह को उठा कर पकडो ।

श्री अरुणकुमार एक अन्य कविता मे अपने जीवन-दर्शन को इस प्रकार व्यक्त करते है—

इस अगहन मे नही कोई आनन्द है
कलकत्ते की सन्ध्या मे धूए से धूसर मन मे ।
जो सान्त्वना है तो इतनी है कि तुम हो और मृत्यु है,
इसलिए रात्रि की अस्पष्ट गन्ध मे रक्त उठता है नाच आशा से ।

एक कवि मगलाचरण चट्टोपाध्याय बगाल की किसी किशोरी का वर्णन यो करते हैं—

मै जानता था कि तुम घूघटवाली रजनीगधा हो,
लज्जा पाई हुई ललाई हुई सध्या हो,
बिल्कुल ही गाव की लडकी हो, धान माडने वाली और पानी लाने-वाली और सो भी अपने अनजान मे रास्ते की तरफ ताककर ।

जगन्नाथ चक्रवर्ती की यह कविता कितनी करुण है—

आज भी वही टूटा हुआ बाडा, खाली खेत, मिट्टी खिसका हुआ छप्पर, और कितने दिन ?
हे ईश्वर, उस तरह बीन-बीनकर खाना, बोझ ढोना, दुःख सहना, यह और कितने दिन ?
सूना घर हा-हा कर रहा है ।
खेतो मे फसल नही, बस्तिया निरानन्द, बन्दरगाह मसान बने है
ऐसा मालूम होता है जैसे इस ससार के सारे आगन मे एक निर्दय कब्रिस्तान बिछा हुआ है ।
वे कहते है कि मन्वन्तर समाप्त हो गया
अकाल समाप्त हो गया,
लडाई खत्म हो गई ।
हा ईश्वर, ऐसा ही हो, ऐसा ही हो ।
दोपहर के समय आगन मे बैठकर सूत कातता हू,
मन थका हुआ है, सीना जैसे खाली है ।

बार-बार वही नन्हे मुह याद आ रहे हैं,
डोमो की वह इतनी-सी लडकी जो माड माग-मागकर मर गई,
बशी का जवान लडका पत्नी को छोडकर लडाई मे गया
फिर लौटकर नहीं आया।
रतन सरदार को किसान आन्दोलन मे जेल भेजा गया।
हा ईश्वर, तुम्हारी सरकार मे यह दमन कबतक होता रहेगा ?
आकाश मे रुई की तरह सफेद धूप है,
नीचे जहा गायें कभी रहती थी वहा सूना है,
खेत मे धान नही है
पैबन्द लगे जीवन का छोर खो रहा है।
हाय !
हाय रे माया,
रोने का सौदा लेकर कबतक चलेगा ?
आज चैत्र के अन्त मे एक और वैशाख लौटकर आ गया,
पर जुगाली से क्लान्त डरे मरे हुए जीवन का स्वाद कहा लौटा ?
पुरानी व्यथा की रात का पौ अभी नहीं फटा, घाव नही सूखा।
हाय !
हाय रे माया,
आज भी वही टूटा हुआ बाडा, सूना खेत और मिट्टी खिसका हुआ छप्पर है, और कितने दिन ?

नरेश गुह एक कविता मे अपने हृदय के असन्तोष को यो व्यक्त करते है—

आज रात मे वर्षा उतरी।
मै अकेले बिस्तरे पर
आख मे नीद नहीं है
लेटकर सुनता हू कि हवा पुकार-पुकारकर चली जा रही है।
इस रात मे यहा आने को
कितने दिनो से मेरे रक्त मे किसीके आने का वादा था।
वह शायद मुझे अमर बनाने के मन्त्र को जानता था।
वह अपार्थिव और अनन्त।

वह मानो मेरे लक्ष्यहीन सब गानो का
तट रेखाहीन मुहाना था। क्या वही मेरे उदास प्राण की
चिरप्रतीक्षा थी ?
हाय दुरन्त ! उत्ताल श्रावण, तुम्हारी शिक्षा ने
यही तो किया।
तो क्या अबकी बार पानी ही मे नाम लिखकर
चल देना होगा ? तो फिर मैंने क्या पाया ? तो मैं क्या हुआ ?

एक कविता मे वह आगामी युद्ध की आशका व्यक्त करते है। वह इस तथ्य से सहमे हुए हैं कि यो तो आकाश गहरा नील बना हुआ है, और दिन धान की तरह सुनहले हैं, आम के बौरो की गध से वायु व्याकुल है, इत्यादि, पर कवि को डर है कि न मालूम कब चैत्र के क्षितिज मे हिंस्र हिंसा, उन्मत्त क्रोध फूट पडे।

नये युग के प्रसिद्ध कवि अजीतदत्त एक अन्योक्ति के रूप मे छागल या बकरा नाम की कविता मे कहते है कि बकरा दाढी के कारण गम्भीर और प्राज्ञ ज्ञात होता है, उसके सीगो को देखकर शका होती है कि न मालूम कब टक्कर मारे। उसकी दृष्टि उदासीन है, पर घासो पर ध्यान रहता है। जो पाता है उसे बिना विचार के लुकमे बनाता जाता है। इसके आगे कवि कहते है कि उसे रुचि से कोई सरोकार नही, वह सचय का मूल्य जानता है, उसे फल के रूप मे चर्वित चर्वण मिलता है। इसके बाद कवि कहते हैं—

वह तत्ववेत्ता है, दार्शनिक भी है कि हरी घास मे विश्वरूप निहारता है
उसका अस्थि-मास-मेद-मज्जा, चाहे बोटी के रूप मे हो या कि कीमे के
सब देश और सब कालो मे प्रिय है, चाहे जिस रीति से पके,
धर्म-कर्म मे, उसकी है स्वत सिद्ध राष्ट्रीय महिमा।
अपने चमडे सेव ने नगाडे पर अपनी बलि कीर्ति घोषित करता है,
फिर भी वह कितना सहनशील है, दडाहत सावली सूरत।

अब बताइये कि यह बकरा कौन है ? कही तो मालूम होता है कि यह बकरा उर्दू कविता का नासेहा है या 'बलाका' मे उल्लिखित कवीन्द्र रवीन्द्र वर्णित 'प्रवीण' है, पर आगे चलकर जब उसके मास के खाये जाने तथा पसन्द किये जाने की बात कही जाती है, तब मालूम होता है कि यह जनता है, जिसे तरह-तरह के पुरोहित बलि पर चढाते है। पर यह भी आधुनिक कविता की

एक धारा है, जिसके अश अपने मे बिल्कुल स्पष्ट है, पर उनमे कोई सूत्र नही निकलता।

कहना न होगा कि इस प्रकार से जनता के मन की सब तरह की प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति बराबर कविता मे होती रही है, फिर चाहे वह पलायनवादी हो चाहे अध्यात्मवादी हो, या महज शब्द-विलासी । सभी कवियो की कविताओ से यह ध्वनि किसी-न-किसी रूप मे निकल रही है कि यह जगत् जैसा कि वह है, उसमे सारी सम्भावनाए होते हुए भी, इसमे कोई ऐसी बात है, जिसे दूर करना ज़रूरी है, नही तो इसमे वह आकर्षण नही मालूम देता, जो इसमे होना चाहिए । शायद इन कवियो की वाणी मे उस तरह की प्रतिभा की सुरभि प्राप्त नही है, जैसी कि कवीन्द्र रवीन्द्र मे थी । फिर भी कुल मिलाकर ये कविताए भारत के और बगाल के नव-निर्माण मे सहायक होगी, ऐसी आशा की जा सकती है । साथ ही जैसा कि दिये हुए उदाहरणो से स्पष्ट हो गया होगा, इस समय कविता के कल्पना के स्वर्ग से वास्तविकता के मर्त्य मे उतर आने पर भी उसमे कवित्व-शक्ति का या वास्तविक काव्य-धर्म का अभाव नही रहा है । प्रेम के लिए भी गुजाइश है और सूक्ष्म कविता के लिए भी।